महर्षि वेद व्यास जी कृत

श्री मद्भागवत् महापुराण

सुख सागर

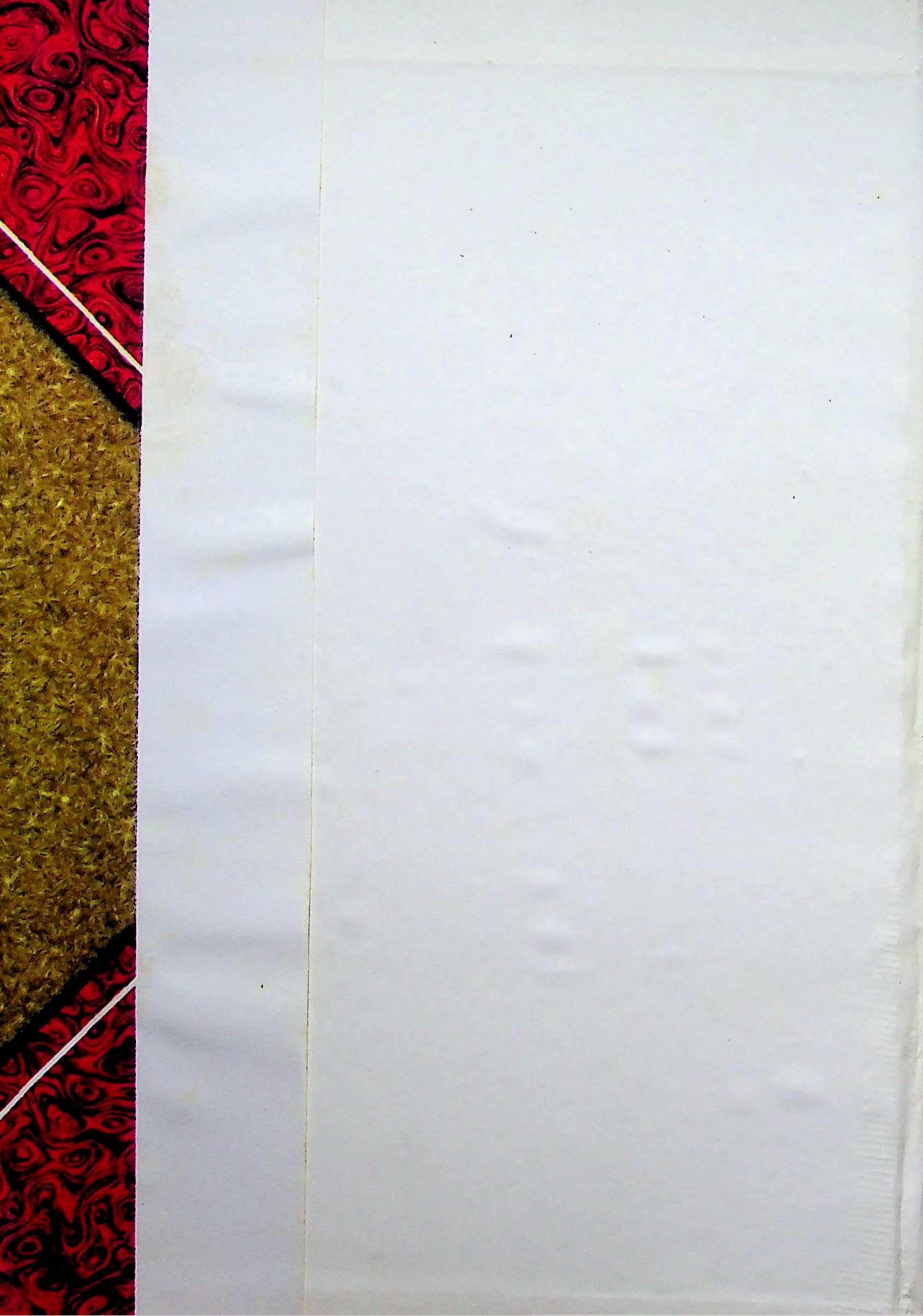
(सरल हिन्दी में)

सम्पूर्ण
बारहों
स्कन्ध

श्री मद्भागवत महापुराण

महर्षि वेद व्यास जी कृत







॥ श्री गणेशाय नमः ॥

श्रीमद्
भागवत महापुराण
अर्थात्
सुखसागर

सर्व श्री मुनि शुकदेव द्वारा राजा परीक्षित
को सुनाई गई भागवत सप्ताह कथा

लेखक

महर्षि वेदव्यास जी

भाषा अनुवाद

पं. मनोहर लाल शर्मा (वशिष्ठ)

मूल्य : एक सौ पच्चीस रुपया

प्रकाशक :

लक्ष्मी प्रकाशन

4734, बल्लीमारान, दिल्ली-110006

दूरभाष : 23917707, 23974978

प्रकाशक : **लक्ष्मी प्रकाशन**
4734, बल्लीमारान, दिल्ली–110006
दूरभाष : 23917707, 23974978

शो–रूम एवं विक्रय केन्द्र : **पृथ्वी पब्लिकेशन**
4736, बल्लीमारान, दिल्ली–110006

पुस्तक : **श्रीमद् भागवत महापुराण अर्थात् सुखसागर**

संस्करण : **नया संस्करण**

मूल्य : **एक सौ पच्चीस रुपया**

मुद्रक : **लक्ष्मी प्रिंटिंग हाऊस**
लाल कुँआ, दिल्ली–110006

शब्द सज्जा : **श्री साईं क्रिएशन्स**
दिल्ली–110006

नोट :

धर्म प्रचार के लिए पुस्तकें बाँटने वाले सज्जन प्रकाशक से सम्पर्क करें। उन्हें पुस्तकें लागत मात्र पर दी जाएँगी।

विषय सूची

प्रथम स्कन्ध

द्वितीय स्कन्ध

तृतीय स्कन्ध

चतुर्थ स्कन्ध

पंचम स्कन्ध

छठा स्कन्ध

सप्तम स्कन्ध

अष्टम स्कन्ध

नवम् स्कन्ध

दशम् स्कन्ध

एकादश स्कन्ध

द्वादश स्कन्ध

*****

॥ श्री ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

वन्दे श्रीकृष्ण देवं मुर नरक भिदं वेद वेदाना वेधं,
लोके भक्ति प्रसिद्धं यदुकुल जलधौ प्रादुरासीदपोर।
यस्यासीद् रूपमेवं त्रिभुवन तरणे भक्ति वच्चस्वतन्त्रं
शास्त्रंरूपं च लोके प्रकटयति मुदायः सनो भूतिहेतुः ॥

श्रीकृष्ण द्वैपायन वेदव्यास जी को नमस्कार
यज्ञे बहुज्ञं परमत्युदारं,
यं द्वीप मद्धे सुत मात्मयोगात।
पराशरात सत्यावती महर्षिऊय,
तस्मै नमो ज्ञान तमोनुदाय॥
पितामहादयं प्रवदन्ति षष्ठं,
महर्षि मार्षेय विभूर्ति युक्तम।
नारायण श्यांशज मेक पुत्रं,
द्वै पायनं वेद महानिधानम्॥



शुकदेव जी को नमस्कार

यंप्रव्रजन्त मनुपेतम पेतकृत्यं
द्वै पायनो विरह कातर आजुहाव।
पुत्रेति तन्मयतया, तरवोऽभिर्नेदु,
स्तं सर्वभूतहृदयं मुनिमान तोडस्मि॥
नारायणं नमस्कृत्य नरश्चैनं नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेतु॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

श्रीमद् भागवत महापुराण का महात्म्य

नारद को भक्ति और ज्ञान वैराग्य उत्पन्न होना

श्री सूत जी कहते हैं— व्यास जी के पुत्र श्री शुकदेव जी ने कलियुग में जीवों के काल रूपी नाग का विनाश करने के लिए श्रीमद् भागवत शास्त्र को सुनाया। एक दिन सनकादि चारों ऋषि सतसंग के लिए विशालपुरी में एकत्र हुए। भ्रमण करते हुए नारद जी भी वहाँ पहुँच गए। नारद जी बोले— अब पृथ्वी पर न कोई ज्ञानी रहा है, न कोई सिद्ध रहा है और न कोई योगी रहा है। कलियुग के दोष देखता हुआ मैं पृथ्वी पर भ्रमण करता रहता हूँ। सुनो! मैंने एक ऐसी युवती को देखा जो बड़ी दुःखी थी। उसकी गोद में दो वृद्ध पुरुष आराम कर रहे थे। उसके पास में दो और युवतियाँ थीं। मैंने उससे पूछा आप कौन हो ? युवती ने बताया मैं भक्ति हूँ और ये दो वृद्ध पुरुष मेरे पुत्र हैं। इनका नाम ज्ञान और वैराग्य है। ये जो दो युवतियाँ खड़ी हैं ये गंगा और यमुना हैं। इन दोनों देवियों द्वारा मेरी सेवा करने पर भी मुझे शान्ति नहीं मिल रही। मेरा जन्म द्रविड़ प्रदेश में हुआ। लालन-पालन कर्नाटक प्रदेश में हुआ तथा महाराष्ट्र में सम्मानित हुई। परन्तु गुजरात प्रदेश में जाने पर मुझे बुढ़ापे ने घेर लिया। परन्तु जब मैं वृन्दावन में गई तब मैं वहाँ नवयुवती बन गई। ये दोनों मेरे पुत्र वृद्ध के वृद्ध ही रह गए।

नारद जी ने भक्ति को उपदेश दिया कि इसका सबसे सरल उपाय यह है कि इन दोनों को श्रीमद् भागवत कथा रूपी अमृत का पान कराइए। इस पर भक्ति ने शौनक आदि मुनीश्वरों से भागवत कथा का रसपान दोनों पुत्रों को कराया। कथा की समाप्ति पर दोनों पुत्र ज्ञान और वैराग्य बुढ़ापे की जगह नवयुवक बन गए। नारद जी ने उपदेश दिया कि यह श्रीमद् भागवत महापुराण का महात्म्य है।



धुन्धुकारी प्रेत और गोकर्ण की कथा

श्री सूत जी कहते हैं— तुंग भद्रा नदी के किनारे एक ब्राह्मण रहता था। उसका नाम आत्मदेव था। वह शास्त्र विद्या में बड़ा निपुण था, परन्तु वह सन्तानहीन था। वह सन्तान प्राप्ति के लिए इधर-उधर आता-जाता रहता था। एक दिन वह एक महात्मा से मिला। महात्मा ने कहा— तुम्हें सन्तान का योग नहीं है। फिर भी मैं तुम्हें एक फल देता हूँ। तुम इसे अपनी पत्नी को खिला देना। ब्राह्मण ने महात्मा जी से फल लेकर अपनी पत्नी धुन्धुली को दे दिया। धुन्धुली के मन में अनेक प्रकार के प्रश्न उठने लगे। इसलिए उसने उस फल को स्वयं न खाकर गाय को खिला दिया। धुन्धुली अपनी बहन के पास गई और उससे बोली— जब तुम्हें पुत्र पैदा हो तब उस पुत्र को मुझे गोद दे देना और प्रतिदिन आकर उसे दूध पिला दिया करना।

कुछ समय बाद उसकी बहन को पुत्र हुआ। उसने अपने पुत्र को अपनी बहन धुन्धुली को दे दिया। उस पुत्र का नाम धुन्धुली ने धुन्धुकारी रखा। दैवयोग से उन्हीं दिनों गाय के बड़े कान वाला बालक पैदा हुआ। ब्राह्मण आत्मदेव को उस बालक को देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने गाय से उत्पन्न बालक का नाम गोकर्ण रखा।

समयानुसार दोनों बालक बड़े हुए। उनमें गोकर्ण बड़ा विद्वान निकला और धुन्धुकारी बड़ा दुष्ट निकला। धुन्धुकारी बचपन से ही चोरी करने लगा था। उसके इन कार्यों से दुखी होकर उसके माँ-बाप शीघ्र ही भगवान को प्यारे हो गए। माँ-बाप की मृत्यु हो जाने से धुन्धुकारी चोरी की बड़ी-बड़ी वारदातें करने लगा। वह वैश्याओं के कोठों पर जाने लगा। वैश्याएँ, उसकी सारी सम्पत्ति हड़प कर जाना चाहती थीं। वैश्याओं ने उसकी हत्या करके ज़मीन में गाढ़ दिया।

इस प्रकार धुन्धुकारी को राक्षस योनि प्राप्त हुई। धुन्धुकारी का दूसरा भाई तीर्थ यात्रा पर गया हुआ था। जब वह तीर्थ यात्रा से लौटा तो उसे धुन्धुकारी नहीं मिला। वह अपनी ज्ञान शक्ति द्वारा धुन्धुकारी की प्रेत योनि से मिला। उसने अपने भाई की समस्त घटना का वर्णन किया। गोकर्ण ने अपने भाई धुन्धुकारी को प्रेत योनि से मुक्ति हेतु एक सप्ताह तक श्रीमद् भागवत महापुराण का पाठ सुनाया। इससे धुन्धुकारी को प्रेत योनि से छूटकारा मिल गया। समय आने पर दोनों भाई

गोकर्ण और धुन्धुकारी विमान में बैठकर गोलोक को प्रस्थान कर गए। यह सब श्रीमद् भागवत महापुराण का महात्म्य है।



सप्ताह पाठ विधि

वर्ष के छः महीनों आषाढ़, श्रावण, भाद्रपद, आश्विन, कार्तिक तथा मार्गशीर्ष में शुभ मुहूर्त निकलवाकर सप्ताह यज्ञ कराना अति उत्तम है। इस बात का विशेष ध्यान रखें कि यज्ञ कराने का स्थान ऐसा हो कि वहाँ अधिक से अधिक व्यक्ति एकत्र हो सकें। स्थान शुद्ध और साफ होना आवश्यक है। उस स्थान पर मण्डप बनाकर कदली के खम्भों तथा बन्दवार से सजाना चाहिए। वेदिका की उत्तर दिशा में सात लीक बनाकर विरक्त ब्राह्मणों को बैठाना चाहिए। यज्ञ में अधिक से अधिक व्यक्तियों को आमंत्रित करना चाहिए। सबको उचित आसन प्रदान करना चाहिए।

वक्ता को उत्तर की ओर मुँह करके ऊँचे स्थान पर बैठना चाहिए जिससे वह समस्त श्रोताओं को दिखाई देता रहे तथा श्रोताओं को पूर्व की ओर मुँह करके बैठना चाहिए अथवा वक्ता पूर्व की ओर मुँह करके तथा श्रोतागण उत्तर की ओर मुँह करके बैठ सकते हैं। वक्ता विद्वान विरक्त द्विज हो तो उसकी सहायता हेतु दूसरे द्विज को बैठाया जाना चाहिए जो विद्वान और

दृष्टान्त देने वाला हो। सब श्रोताओं को दीक्षा लेना भी आवश्यक होता है। गणेश और पितर आदि का पूजन तथा तर्पण करें। मण्डप में भगवान की मूर्ति स्थापित कर षोडश प्रकार से पूजन करना चाहिए। पूजन के बाद वस्त्र आदि भेंट करें। आसन पर बैठकर भागवत पुस्तक का पूजन कर बाद में भागवत कथा प्रारम्भ करें। श्रोताओं का कर्त्तव्य बनता है कि वे प्रेम व भक्ति के साथ श्रवण करें। कथा को सूर्योदय से साढ़े तीन घण्टे सुनने के पश्चात् दो घड़ी विश्राम करें। श्रोताओं को दिन भर में एक बार दूध और चावल का आहार लेना चाहिए।

भागवत सप्ताह की कथा का विधान है कि दीक्षा लेने वाला ही कथा सुनने का अधिकारी है। श्रोता को सात दिन तक ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हुए पृथ्वी पर शयन करना चाहिए। वह न किसी की निन्दा करे और न अपवित्रों से बार्तालाप करे। कथा समाप्ति के पश्चात् उद्यापन करना चाहिए।



प्रथम स्कन्ध

१. श्री सूत जी से ऋषियों का प्रश्न

एक बार भगवान विष्णु और देवताओं के क्षेत्र नैमिषारण्य में शौनक आदि ऋषियों ने भगवत प्राप्ति की इच्छा से एक यज्ञ का आयोजन किया। ऋषियों ने श्री सूत जी का पूजन करके उन्हें ऊँचे आसन पर बैठाया। ऋषियों

ने उनसे कहा— आपने पुराणों और धर्म शास्त्रों का अध्ययन किया है। आप कृपया यह बताइए कि इन शास्त्रों और पुराणों में कलियुग में निवास करने वाले जीवों के परम कल्याण का आसान साधन क्या निश्चित किया गया है? आप अपनी बुद्धि से उनका सार निकालकर प्राणियों के परम कल्याण हेतु हमें बताइए, जिससे अन्तकरण की शुद्धि प्राप्त हो। भगवान अपनी योग माया द्वारा स्वच्छन्द लीलाएँ करते रहते हैं। उन श्रीहरि के अवतारों की कथाओं का वर्णन कीजिए। यह कलियुग अन्तःकरण की पवित्रता और शक्ति का विनाश करता है। हम कलियुग को आया जानकर इस वैष्णव क्षेत्र में श्रीहरि की कथाएँ सुनने के लिए एकत्र हुए हैं।



२. भागवत कथा और भगवद भक्ति का महात्म्य

श्रीसूत ने बताया— श्री शुकदेव जी का अभी यज्ञोपवीत भी नहीं हुआ कि वे सन्यास लेने के लिए घर से चल पड़े। उनके पिता व्यास जी ने कातर स्वर में अपने पुत्र को रोकने का प्रयत्न किया। उस समय तन्मय होने के कारण श्री शुकदेव जी की ओर से वृक्षों के मध्य से आवाज़ आई— यह श्रीमद् भागवत बहुत ही गोपनीय और रहस्यात्मक पुराण है और समस्त वेदों का सार है। इस विश्व और अन्तःकरण के समस्त विकारों

पर विजय प्राप्त करने हेतु श्रीमद् भागवत महापुराण का पाठ करना चाहिए। यह पुराण भगवान श्री कृष्ण से सम्बन्धित है। इसका पाठ भली भांति स्वस्थ चित से करना चाहिए। ऐसा करने से आत्मशुद्धि में सहायता मिलती है। श्रद्धालु, मुनिगणों को भागवत कथा सुनने से प्राप्त ज्ञान, वैराग्यमय भक्ति से हृदय में परमतत्व रूप भगवान का अनुभव प्राप्त होता है। श्रद्धालुओं को एकाग्र मन से भगवान का नित्य निरन्तर ध्यान करना चाहिए तथा कीर्तन करना चाहिए। ऐसा करने से रजोगुण और तमोगुण के भावों से काम, क्रोध और मोह का अन्त हो जाता है।

सत्व, रज और तम प्रकृति के तीन गुण बताए गए हैं। इन तीन गुणों को स्वीकार करके संसार की स्थिति उत्पत्ति और प्रलय के लिए विष्णु, ब्रह्मा और महेश के नाम ग्रहण करके भगवान श्री कृष्ण ने अपनी माया से सर्ग के प्रारम्भ में सृष्टि की रचना की थी। ये सत्व, रज और तम तीनों गुण उसी माया के विलास हैं।



३. भगवान के अवतारों का वर्णन

श्री सूत जी ने बताया कि सृष्टि के प्रारम्भ में भगवान ने लोकों के निर्माण की इच्छा व्यक्त की। भगवान ने महत्तत्व आदि से निष्पन्न पुरुष रूप ग्रहण किया। दस इन्द्रियाँ, एक मन, पाँच भूत कलाएँ थीं।

भगवान ने जल में शयन करते हुए, योग निद्रा का विस्तार नाभी सरोवर से एक कमल प्रकट किया। कमल से ब्रह्माजी प्रकट हुए। भगवान ने विराट रूप के अंग में समस्त लोकों की कल्पना की।

भगवान का यही पुरुष रूप नारायण कहलाया। इसी रूप से उन्होंने पशु-पक्षी और मानव योनियों की सृष्टि की।

अवतार १. — भगवान ने पहले कौमारसर्ग में सनक, सनन्दन, सतातन और सनत्कुमार द्विजों के रूप में अवतार ग्रहण किया।

अवतार २. — रसातल में गई हुई पृथ्वी को निकालने हेतु भगवान ने सूकर का रूप धारण किया। हिरण्याक्ष उनसे लड़ने आया। घमासान युद्ध हुआ। भगवान ने हिरण्याक्ष को मारकर पृथ्वी को ऊपर लाकर जल पर निश्चित स्थान पर स्थापित किया।

अवतार ३. — ऋषियों की सृष्टि में भगवान ने नारद के रूप में तीसरा अवतार ग्रहण किया।

अवतार ४. — धर्मपत्नी मूर्ति के गर्भ से भगवान ने नर-नारायण के रूप में चौथा अवतार ग्रहण किया।

अवतार ५. — भगवान ने सिद्धों के स्वामी कपिलदेव के रूप में अवतार ग्रहण किया।

अवतार ६. — अनुसूया के वर माँगने पर भगवान ने अत्रि की सन्तान दत्तात्रेय के रूप में छठा अवतार ग्रहण किया। प्रहलाद को ब्रह्मज्ञान का उपदेश दिया।

अवतार ७. — रुचि प्रजापति को पत्नी आकूति

के गर्भ से भगवान ने सूयज्ञ के रूप में सातवाँ अवतार ग्रहण किया। अपने पुत्र याम आदि देवताओं के साथ स्वायम्भुव मन्वन्तर की रक्षा की।

अवतार ८. — राजा नाभि की पत्नी मेरुदेवी के गर्भ से ऋषभ देव के रूप में भगवान ने आठवाँ अवतार ग्रहण किया।

अवतार ९. — ऋषियों के प्रार्थना करने पर राजा प्रथु के रूप में भगवान ने नवम् अवतार ग्रहण किया।

अवतार १०. — चाक्षुष मन्वन्तर के अन्त में जब समस्त त्रिलोकी समुद्र में डूब रही थी, तब भगवान ने मत्स्य रूप में दसवाँ अवतार ग्रहण किया था।

अवतार ११. — समुद्र मन्थन के समय भगवान ने कच्छप रूप में ग्यारहवाँ अवतार ग्रहण किया। तब मन्दराचल पर्वत को अपनी पीठ पर धारण करके मन्थन करवाया।

अवतार १२.— भगवान धन्वन्तरि के रूप में बारहवाँ अवतार ग्रहण कर प्रकट हुए।

अवतार १३. — मोहिनी के रूप में भगवान ने तेरहवाँ अवतार ग्रहण किया और अपने हाथों से देवताओं को अमृत पिलाया।

अवतार १४. — नरसिंह रूप में भगवान ने चौदहवाँ अवतार ग्रहण किया। दैत्यराज हिरण्यकशिपु को नाखूनों से फाड़कर भक्त प्रहलाद की रक्षा की थी।

अवतार १५. — वामन रूप में भगवान ने पन्द्रहवाँ अवतार ग्रहण किया था। इस अवतार में उन्होंने दैत्यराज

बलि के यश में जाकर तीन पग भूमि माँगी थी।

अवतार १६. — परशुराम रूप में भगवान ने सोलहवाँ अवतार ग्रहण किया था। राजपूत राजाओं को द्विजों का द्रोही जानकर पृथ्वी को २१ बार क्षत्रियों से शून्य किया था।

अवतार १७. — भगवान ने सत्यवती के गर्भ से पराशर मुनि द्वारा वेदव्यास के रूप में सत्रहवाँ अवतार ग्रहण किया। आपने वेद रूपी वृक्ष की कई शाखाएँ बनाईं। आपने महाभारत ग्रन्थ की रचना की।

अवतार १८. — अठारहवें अवतार में आपने श्री राम के रूप में अवतार ग्रहण किया। रावण और कुम्भकर्ण का वध कर अनेक लीलाएँ कीं।

अवतार १९-२०. — भगवान ने युदवंश में उन्नीसवाँ अवतार श्री कृष्ण के रूप में ग्रहण किया। आपने अत्याचारी कंस को मारा तथा अनेक लीलाएँ कीं। इसके साथ ही बलराम के रूप में बीसवाँ अंश अवतार ग्रहण किया।

अवतार २१. — कलियुग आ जाने के बाद मगध देश (बिहार) में अजय के पुत्र के रूप में अवतार ग्रहण किया।

कलियुग के अन्त में संसार के रक्षक भगवान विष्णु का अवतार यश नाम के द्विज के घर कल्कि के रूप में होगा।



४. व्यास जी का असन्तोष

श्री सूत जी ने बताया— वर्तमान चार युगों के तीसरे युग जिसे द्वापर युग कहते हैं, महर्षि पराशर द्वारा सत्यवती जो वसु कन्या थीं के गर्भ से कला अवतार व्यास जी का जन्म हुआ। महर्षि व्यास जी भूत, भविष्य और वर्तमान के जानकार थे। श्री व्यास जी ने चारों ऋक, यजुः, साम और अथर्व वेदों का उद्धार किया। श्री व्यास जी ने महाभारत ग्रन्थ की रचना की। भगवान वेद व्यास जी ने इसके अतिरिक्त भगवत चरित्र, श्रीमद् भागवत महापुराण की रचना की। नारद जी के जीवन पर उन्हें असन्तोष उत्पन्न हुआ।



५. नारद जी का पूर्व चरित्र व्यास जी का अंसन्तोष दूर

श्री सूत जी ने बताया— एक बार की बात है कि जब श्री वेदव्यास जी वेदों का विभाजन कर रहे थे तो श्री नारद जी वहाँ पधारें। नारद जी को आया देख उनके स्वागत के लिए श्री वेद व्यास जी उठकर खड़े हो गए। उन्होंने देवताओं द्वारा सम्मानित देवर्षि नारद जी की पूजा अर्चना की। व्यास जी बोले— आप ब्रह्मा जी के मानस पुत्र हो और आपको ज्ञान भी अगाध है। आप अपने पूर्व जीवन के सम्बन्ध में बतलाइए। इस प्रकार व्यास जी

और नारद जी ज्ञान शास्त्र और अन्य शास्त्रों के विषय में आपस में वार्तालाप करने लगे।

नारद जी ने व्यास जी को बताया— मैं अपनी अकेली दासी माता के साथ रहता था। समय मिलने पर मैं इधर-उधर खेलता फिरता रहता था तथा ऋषियों के आश्रम में भी चला जाता था। आश्रम में मैं उनके उपदेश सुना करता था और उनका झूठा भोजन खाकर पेट भर लिया करता था। ऋषियों की संगत में रहने के कारण मेरा हृदय भी ज्ञान से प्रकाशित हो गया। कुछ समय बाद मेरी दासी माँ को सर्प ने डस लिया। इससे उनकी मृत्यु हो गई। मैं अकेला ही घूमा करता था। एक दिन सतसंग में मुझे ज्ञान प्राप्त हुआ। मैं तपस्या हेतु उत्तर दिशा में चल गया। एक पीपल के वृक्ष के नीचे बैठकर धीरे-धीरे ध्यान में मग्न हो गया। कुछ समय पश्चात् मुझे भगवान के दर्शन हुए। भगवान ने बताया कि मन की शान्ति और मोक्ष प्राप्त करना कठिन काम है। भगवान के द्वारा बताई क्रियाओं को मैंने अपने जीवन में धारण किया। समय आने पर मेरी मृत्यु हो गई। भगवान की कृपा से मुझे सद्गति प्राप्त हुई।

नारद जी ने व्यास जी को बताया— भगवान जब क्षीर सागर में शयन कर रहे थे तब ब्रह्माजी ने कमल डण्डी का अन्त प्राप्त करने के लिए सम्पूर्ण सृष्टि को समेट कर कमल की डण्डी में प्रवेश करने लगे, तब मैं उनके श्वास के द्वारा उनके हृदय में प्रवेश कर गया। एक हज़ार चतुर्युगी बीत जाने पर ब्रह्माजी की नींद खुली।

उन्होंने सृष्टि की रचना करने की इच्छा प्रकट की। ब्रह्माजी ने निराश होकर अपनी इन्द्रियों से मरीचि आदि ऋषियों के साथ मुझे भी प्रकट किया। तब से मैं तीनों लोकों में बाहर-भीतर बिना किसी रोक-टोक के विचरण करता रहता हूँ।

श्री सूत जी ने बताया कि सरस्वती नदी के पश्चिमी घाट पर श्री व्यास जी का आश्रम था। व्यास जी ने भक्तियोग के द्वारा मन को एकाग्र करके भगवान को तथा उनकी माया को देखा। उसी माया से मोहित होकर श्री वेद व्यास जी ने श्रीमद् भागवत पुराण की रचना की। इसके पश्चात् उन्होंने महाभारत शास्त्र की भी रचना की। उसी के अनुसार महाभारत युद्ध सम्पूर्ण हुआ।



६. अश्वत्थामा द्वारा द्रौपदी के पुत्रों का मारा जाना और अर्जुन द्वारा अश्वत्थामा का मान मर्दन

श्री सूत जी ने बताया कि— महाभारत युद्ध में भीम ने अपनी गदा से दुर्योधन की वह टाँग तोड़ दी जिस पर हाथ मारकर द्रौपदी को बैठने के लिए कहा था। अश्वत्थामा को जब यह पता चला तो वह क्रोध के मारे तिलमिला गया। उसने इसका बदला लेने के लिए द्रौपदी के सोए हुए पुत्रों के सिर काटकर दुर्योधन के पास ले आया। दुर्योधन को यह देखकर बहुत दुख

हुआ और ज़हर का घूँट पीकर चुप रह गया। अश्वत्थामा ने युद्ध में ब्रह्मास्त्र का प्रयोग किया। भगवान श्री कृष्ण के आदेश पर अर्जुन ने भी अपना ब्रह्मास्त्र छोड़ा। दोनों ब्रह्मास्त्र आपस में टकरा गए। इससे चारों ओर अग्नि की लपटें फैल गईं। सब तरफ घोर अन्धकार फैल गया। सब लोग इस अन्धकार से दुःखी होने लगे। इस पर अर्जुन ने दोनों ब्रह्मास्त्रों को वापिस लौटा लिया तथा अश्वत्थामा को झपट कर पकड़ लिया और द्रौपदी के पास बन्दी बनाकर ले आया। द्रौपदी ने उसके सिर पर नृत्य करने का प्रण लिया था परन्तु अपना प्रण पूरा न करके अश्वत्थामा को जीवन दान देकर छोड़ दिया। अर्जुन ने अश्वत्थामा का सिर मूँड कर उसकी मणि सिर से उतार ली। इससे अश्वत्थामा का ब्रह्मतेज समाप्त हो गया। यही द्विज का वध समझा जाता है।



८. भीष्म पितामह का प्राण त्यागना

श्री सूत जी ने बताया कि भगवान श्री कृष्ण के कहने पर स्वयं श्री कृष्ण, युधिष्ठिर और शेष चारों पाण्डव भीष्म पितामह के पास गए जो बाणों की शय्या पर लेटे हुए थे। उनसे मिलने नारद, व्यास, विश्वामित्र, सुदर्शन तथा अन्य ऋषिगण भी गए। भीष्म जी श्री कृष्ण से बोले— मैंने युद्ध में आपका प्रण तोड़ दिया। आपने एक रथ का पहिया लेकर मुझ पर आक्रमण किया।

आपने यह उचित ही किया था। यह कहकर भीष्म पितामह ने प्राण त्याग दिए। इसके बाद सभी ने मिलकर भीष्म पितामह का दाह संस्कार किया। धृतराष्ट्र की आज्ञा और भगवान श्री कृष्ण की अनुमति से युधिष्ठिर के साम्राज्य का अभिषेक किया गया और धर्मपूर्वक शासन करने को कहा। अन्त में भगवान श्री कृष्ण सभी से आज्ञा प्राप्त कर द्वारिकापुरी को चले गए।



८. विदुर जी के उपदेश तथा धृतराष्ट्र और गान्धारी का वन गमन

श्री सूत जी ने बताया कि विदुर जी तीर्थयात्रा में मैंत्रेयजी से आत्मज्ञान की शिक्षा प्राप्त करके हस्तिनापुर लौट आए। उनकी अगवानी के लिए युधिष्ठिर सहित पाँचों पाण्डव, धृतराष्ट्र, कृपाचार्य, युयुत्सु, संजय, गान्धारी, कुन्ती, द्रौपदी, सुभद्रा, उत्तरा, कृपी एवं पाण्डव परिवार गए। यथायोग्य सब ने उन्हें प्रणाम एवं आलिंगन किया। विदुरजी ने अपनी मात्रा का हाल अपने सम्बन्धियों को सुनाया परन्तु युदवंश के विनाश की बात नहीं बताई। विदुर जी साक्षात् धर्मराज थे।

माण्डव्य ऋषि के शाप से विदुर जी सौ वर्ष के लिए शूद्र बन गए थे। इतने समय के लिए यमराज के पद पर अर्य्यमा रहे और पापियों को यथायोग्य दण्ड प्रदान करते रहे। विदुर जी ने अपने भाई धृतराष्ट्र से

कहा— महाराज! अब भयंकर समय आ गया है। यहाँ से झटपट निकल चलिए। सभी के सिर पर काल मँडराने लगा है। उसको टालने का कोई उपाय नहीं है। सभी सगे सम्बन्धी मारे जा चुके हैं और आपकी आयु भी ढल चुकी है। इसी कारण आप भीम का दिया हुआ टुकड़ा खाकर कुत्ते का सा जीवन व्यतीत कर रहे हो। जिन पाण्डवों को आपने आग में जलाने का प्रयत्न किया, विष देकर मारना चाहा, भरी सभा में द्रौपदी को अपमानित किया, उनकी भूमि और सम्पत्ति छीन ली, अब उन्हीं के अन्न से पल रहे प्राणों को रखने से कौन-सा गौरव है? आपके अज्ञान की भी हद है। इसलिए अपने समस्त कुटुम्बियों से छिपकर उत्तराखण्ड चले जाइए। विदुर जी का उपदेश सुनकर ब्राह्मणों को स्वर्ण, अन्न, वस्त्र आदि का दान कर धृतराष्ट्र अपनी पत्नी गान्धारी सहित उत्तराखण्ड चले गए।



ए. श्री कृष्ण का द्वारिका गमन

श्री सूत जी ने बताया— भगवान श्री कृष्ण कुरुवंश को पुनः स्थापित कर और युधिष्ठिर को राज्य सिंहासन पर बैठाकर बहुत खुश हुए। महाराज युधिष्ठिर के शासन में किसी प्राणी को बीमारी या दैविक, भौतिक और आत्मिक क्लेश नाम मात्र को भी नहीं था। भाइयों का शोक दूर करने के लिए एवं बहिन सुभद्रा की प्रसन्नता के

लिए भगवान श्री कृष्ण कई महीनों तक हस्तिनापुर रहे।

जब भगवान श्री कृष्ण ने युधिष्ठिर से द्वारिका जाने की अनुमति माँगी तो युधिष्ठिर ने उन्हें अपने हृदय से लगाकर स्वीकृति प्रदान कर दी। भगवान उनको प्रणाम करके रथ पर आरूढ़ हो गए। उस समय सुभद्रा, द्रौपदी, गान्धारी, कुन्ती, उत्तरा, धृतराष्ट्र, युयुत्सु, कृपाचार्य, धौम्य, सत्यवती, भीमसेन, अर्जुन, नकुल और सहदेव आदि सब मूर्छित से हो गए। श्री कृष्ण के चलते समय नगर की स्त्रियों के नेत्रों में आँसू आ गए। कुरुवंश की स्त्रियाँ अटारियों पर चढ़कर पुष्पों की वर्षा करने लगीं। नगर की स्त्रियाँ इस प्रकार बातचीत कर रहीं थी कि भगवान श्री कृष्ण मन्द-मन्द मुस्कान और प्रेम भरी दृष्टि से उनका अभिनन्दन करते हुए वहाँ से द्वारिकापुरी के लिए चल पड़े। राजा युधिष्ठिर ने उनकी सुरक्षा के लिए साथ में सेना, हाथी, घोड़े तथा अनेक सेवक भेजे।



१०. द्वारिका में श्री कृष्ण का राजोचित्त स्वागत

श्री सूत जी ने बताया— भगवान श्री कृष्ण ने द्वारिका पहुँचकर अपना पाँच जन्य नामक शंख बजाया। शंख की आवाज़ सुनकर सब नगर वासी नगर से बाहर निकल आए। अनेक तरह की भेटों द्वारा प्रजा ने भगवान श्री कृष्ण का स्वागत किया। नगर के फाटक से महल

के दरवाज़ों और सड़कों पर स्वागतार्थ बन्दवनार लगाई गई। स्थान-स्थान पर पताकाएँ लहरा रहीं थी। सड़कें, बाज़ार और चौक सुगन्धित जल से सींचे गए। साम्ब, चारुदेपण, प्रद्युम्न, बलराम, उग्रसेन, अक्रूर और वासुदेव मांगलिक सामग्रियों से सुसज्जित द्विजों को साथ लेकर, रथों पर सवार होकर भगवान की अगवानी करने के लिए चले। बहुत से नाचने-गाने वाले, बिरद बखान करने वाले भाट, नट आदि भगवान श्री कृष्ण के चरित्रों का वर्णन करते हुए चले। भगवान श्री कृष्ण ने बन्धु बान्धवों, नागरिकों और सेवकों को योग्यता के अनुसार अलग-अलग सम्मान दिया।

द्वारिका के राजपथ पर भगवान के ऊपर श्वेत वर्ण का छत्र तना हुआ था। श्वेत चँवर डुलाए जा रहे थे। चारों ओर फूलों की वर्षा हो रही थी। भगवान श्री कृष्ण पीताम्बर और वनमाला धारण किए हुए थे। महल में पहुँचकर पहले भगवान श्री कृष्ण ने माता-पिता के चरणों में सिर झुकाया। आशीर्वाद ग्रहण कर वे रानियों के महलों में गए। भगवान श्री कृष्ण को देखकर सबके हृदयों में आनन्द भर गया।



११. परीक्षित का जन्म

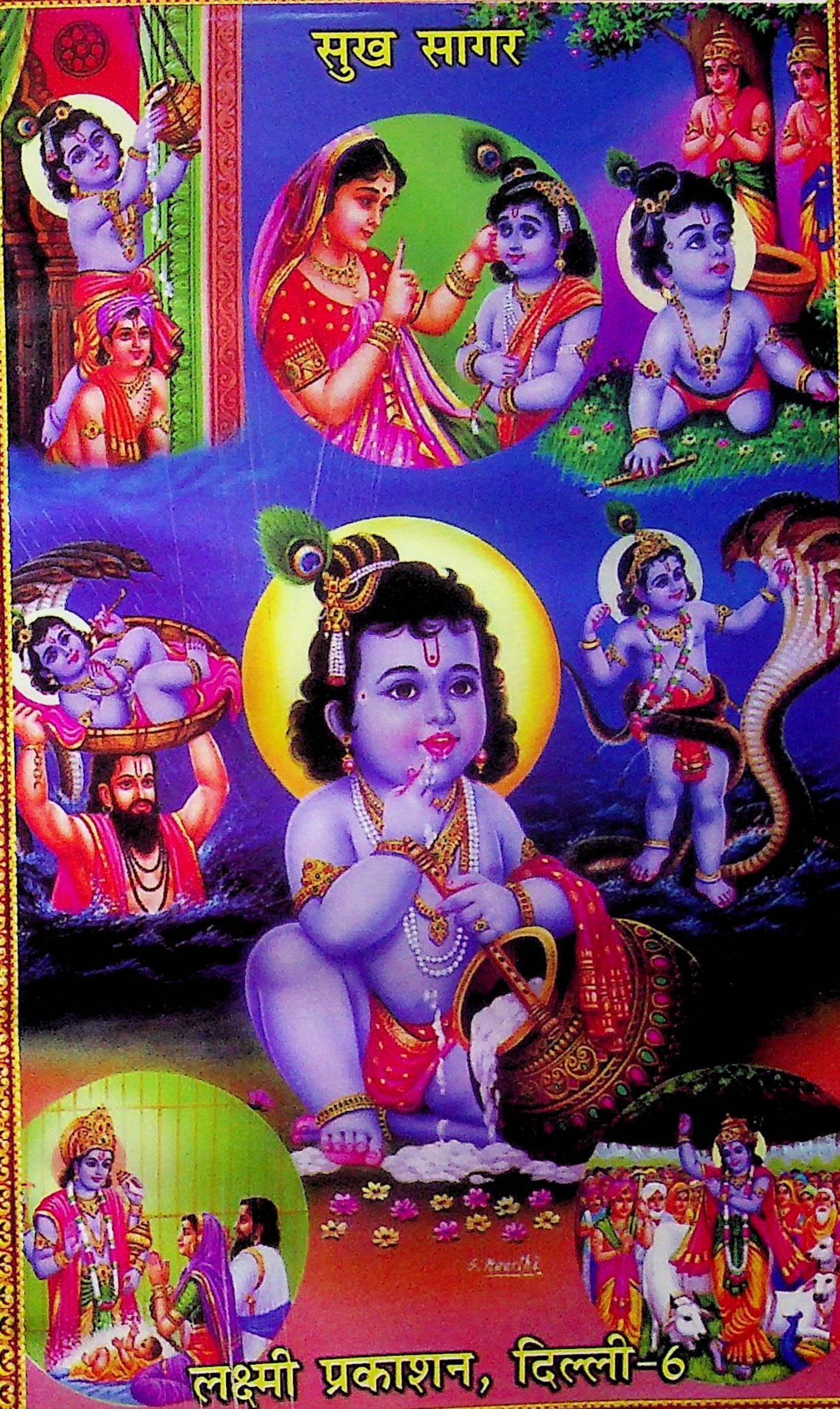
श्री शौनक जी ने कहा— अश्वत्थामा पाण्डवों का वंश नष्ट करने के लिए ब्रह्मास्त्र से उत्तरा के गर्भ में

पल रहे बालक को मारना चाहता था। परन्तु चतुर्भुज भगवान हाथ में गदा लिए गर्भ के अन्दर उसके चारों तरफ घूमकर रक्षा कर रहे थे। भगवान ने अपने कवच से बालक को ढक लिया था। भगवान बालक की सुरक्षा कर स्वयं अन्तर्धान हो गए। कुछ समय बाद निश्चित समय पर बालक का जन्म हुआ। उस बालक का नाम परीक्षित रखा गया।

परीक्षित बड़ा होकर भगवान श्री कृष्ण का बड़ा भक्त बना। भगवान ने महाराज मरुत के यज्ञ का सोना और धन जो बच गया था उसको मँगवाकर परीक्षित से तीन अश्वमेघ यज्ञ कराए। इसके बाद परीक्षित का राज्याभिषेक करा कर उनको राज गद्दी पर बैठाया। भगवान श्री कृष्ण ने इस प्रकार पाण्डवों के वंश को नष्ट होने से बचाया।

भगवान श्री कृष्ण के द्वारिका जाते समय उनकी बहिन सुभद्रा, द्रौपदी, कुन्ती, उत्तरा, गान्धारी, सत्यवती, धृतराष्ट्र, युयुत्सु, धौम्य, कृपाचार्य, भीमसेन, अर्जुन, नकुल सहदेव तथा अन्य वियोग के कारण मूर्छित हो गए। श्री कृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न, साम्ब और अम्ब आदि द्वारिका में थे।

भगवान श्री कृष्ण ने सोचा मैंने अपना कार्य पूरा कर दिया है। उन्होंने द्वारिकापुरी में यदुवंश का विनाश करने की सोची। उन्होंने योगमाया द्वारा उन्हें आपस में ही लड़ाकर एक-दूसरे को समाप्त करा दिया। इस प्रकार उनकी इच्छानुसार यदुवंशियों का विनाश हो गया। विदुर,


सुख सागर
लक्ष्मी प्रकाशन, दिल्ली-6


सुख सागर
लक्ष्मी प्रकाशन, दिल्ली-6

सुख सागर




सुख सागर
लक्ष्मी प्रकाशन, दिल्ली-6

धृतराष्ट्र, गान्धारी, हिमाचल को चले गए। पाण्डव भी उत्तरा के पुत्र परीक्षित को राज्य सौंपकर स्वर्ग को प्रस्थान कर गए। परीक्षित का विवाह उत्तर की पुत्री इरावती से हो गया। परीक्षित के जन्मेजय आदि चार पुत्र हुए।



१३. धर्म और पृथ्वी का संवाद

सूत जी ने बताया— जब परीक्षित अश्वमेघ कर चुके तब उन्होंने देखा कि शूद्र के रूप में कलियुग राजा का रूप धरकर एक गाय और एक बैल के जोड़े को ठोकरों से मार रहा है। इस बैल के तप, दया, पवित्रता और सत्यरूपी चार पैर थे। कलियुग के आने से तप, दया, पवित्रता रूपी तीन पैर टूट गए। सत्य रूपी चौथा पैर ही शेष रह गया। ब्राह्मण वेषधारी कलियुग की ठोकरें खा-खाकर बड़े दुःखी हो रहे थे।

धर्म बैल का रूप रखकर इधर-उधर विचरण कर रहा था। रास्ते में पृथ्वी गाय का रूप रखकर धर्म रूपी बैल से मिली। पृथ्वी (गाय) ने धर्म (बैल) से कहा कि आपके चरणों से युक्त सत्य, दया, पवित्रता, सरलता, सन्तोष, त्याग, क्षमा, तप, दम, शम, उपरित, प्रतिक्षा, समता, वीरता, ऐश्वर्य, वैराग्य, ज्ञान, शास्त्र विचार, स्मृति बल, तेज, क्रान्ति, कौशल, स्वतंत्रता, बल, उत्साह, साहस, कोमलता, धैर्य, गंभीरता, सौभाग्य, शील, विनय, निर्भीकता, गौरव, कीर्ति, आस्तिकता और निरहकारिता

ये ३९ अप्राकृत गुण सदैव सेवा करने के योग्य थे। परन्तु कलियुग ने आपके तीन पैर समाप्त कर दिए। पृथ्वी ने बैल (धर्म) से कहा— मुझे अपने सौभाग्य पर अत्यन्त गर्व हो गया था। भगवान ने मेरे गर्व को चूर-चूर करने के लिए यह दण्ड दिया है और दे रहे हैं।



१३. परीक्षित द्वारा कलियुग का दमन

श्री सूत जी ने बताया कि गाय (पृथ्वी) और बैल (धर्म) आपस में बातचीत इस प्रकार कर रहे थे कि राजा परीक्षित सरस्वती नदी के किनारे पहुँच गए। परीक्षित ने उन दोनों से सब हाल पूछा और देखा कि शूद्र (कलियुग) हाथ में डण्डा पकड़ कर गाय-बैल के जोड़े को पीट रहा था तथा उन्हें ठोकरें भी मार रहा था।

शूद्र (कलियुग) परीक्षित को देखकर अपने असली रूप में प्रकट होकर परीक्षित की शरण में आकर खड़ा हो गया। परीक्षित ने उसको दण्ड न देकर उसके रहने के लिए चार स्थान १. धूर्त-असत्य २. मद्यपान -मद, ३. स्त्रीसंग-आसक्ति, ४. हिंसा-निर्दयता तथा स्वर्ण का एक स्थान और दिया। बैल (धर्म) के तीन पैरों (तपस्या, शौच, दया) को जोड़ दिया। पृथ्वी को उस दुष्ट कलियुग से छुटकारा दिया और शान्तिपूर्वक संसार की सेवा और भरण-पोषण करने के लिए कहा।



१४. परीक्षित को शृंगी ऋषि का श्राप

श्री सूत जी ने बताया— एक दिन परीक्षित शिकार खेलने वन में गए। वे रास्ता भूलकर वन में इधर-उधर भटकते रहे। उन्हें भूख और प्यास ने बेचैन कर दिया। पानी की तलाश में परीक्षित घूमते हुए शमिक ऋषि के आश्रम पर जा पहुँचे। उस समय शमिक ऋषि तपस्या में लीन थे। तपस्या में लीन होने के कारण उन्होंने राजा परीक्षित की बातों पर ध्यान नहीं दिया। इससे राजा परीक्षित शमिक ऋषि पर बहुत नाराज़ हुए और क्रोधित हो गए। उन्होंने वहाँ एक मरा हुआ सर्प देखा। उन्होंने उस सर्प को ऋषि के गले में डाल दिया। इसके बाद वह अपनी राजधानी को लौट गए।

ऋषि के पुत्र ने आकर अपने पिता के गले में मरे हुए सर्प को देखा। इससे वह क्रोधित हो गया और क्रोध में भरकर उसने कौशिकी नदी का जल हाथ में लेकर परीक्षित को श्राप दे डाला कि आज से सातवें दिन राजा परीक्षित की तक्षक सर्प के डसने से मृत्यु हो जाए। इस श्राप को सुनकर शमिक ऋषि को बड़ा कष्ट हुआ और अपने पुत्र से कहा— तूने यह कार्य ठीक नहीं किया है।

जब परीक्षित को श्राप का पता चला तो उन्होंने अनशन व्रत करना शुरू कर दिया। वे इस श्राप से छुटकारा पाने के लिए प्रायश्चित करते रहे।



१५. परीक्षित का अनशन व्रत और श्री शुकदेव जी का आगमन

श्री सूत जी ने बताया कि राजा परीक्षित को अपनी राजधानी पहुँचने पर उन्हें अपने द्वारा किए पाप का पश्चाताप होने लगा। उन्होंने विचार किया कि महात्मा के अपमान करने से घोर विपत्ति आ सकती है। उन्हें पता चला कि ऋषि कुमार के श्राप से उन्हें तक्षक नाग डसेगा। भगवान श्री कृष्ण के चरण कमलों को सर्वश्रेष्ठ मानकर वे गंगा के तट पर बैठकर आमरण अनशन व्रत करने लगे। उसी समय बड़े-बड़े ऋषि-मुनि अपने शिष्यों सहित वहाँ पधारे। बड़े-बड़े ऋषियों को देखकर राजा परीक्षित ने उनका यथायोग्य सत्कार किया और उनके चरणों में अपना सिर रखकर वन्दना करने लगे।

परीक्षित बोले— हे द्विजवरों! मैंने अपने आपको भगवान श्री कृष्ण के चरणों में समर्पित कर दिया है। तक्षक द्वारा डसे जाने की ज़रा सी भी चिन्ता नहीं है। मैंने अपने पुत्र जन्मेजय को राजपाट सौंप दिया है। सब महर्षि बोले— हम तब तक यही रहेंगे जब तक राजा परीक्षित अपने नश्वर शरीर को छोड़कर भगवद्धाम को नहीं चले जाते हैं। उसी समय व्यास नन्दन भगवान श्री शुकदेव जी वहाँ प्रकट हो गए। उनका वेष अवधूत (नग्न) का था। परीक्षित ने श्री शुकदेव जी के चरणों में सिर झुकाकर प्रणाम किया और उनको उचित आसन प्रदान किया।

परीक्षित ने हाथ जोड़ कर कहा कि आपने एक अपराधी क्षत्रिय को तीर्थ के समान पवित्र बना दिया। भगवान श्री कृष्ण मुझ पर प्रसन्न हैं। उन्होंने अपने फुफेरे भाइयों की प्रसन्नता के लिए उन्हीं के कुल में जन्म लिया। मेरे साथ भी अपनेपन का व्यवहार किया है। श्री सूत जी ने कहा— जब राजा परीक्षित ने बड़ी ही मधुर वाणी में प्रश्न किया तब समस्त धर्मों के मर्मज्ञ व्यास नन्दन भगवान श्री शुकदेव जी उत्तर देने के लिए खड़े हो गए।

श्री शुकदेव जी ने बताया— हे परीक्षित! अब तुम्हारे जीवन की अवधि सात दिन की है। इस बीच तुम्हें जो उचित लगे उसे करो। तीर्थों के जल से स्नान करके आसन लगाकर बैठ जाओ। इसके बाद परम पवित्र तीन अक्षर अ,उ,म से निर्मित ऊँ का मन ही मन जाप करते रहो। भगवान के एक-एक अंग का ध्यान करके मन को पूर्ण रूप से भगवान में तल्लीन कर दो। समस्त शास्त्रों का एक यही निर्णय है कि भगवान के नामों का संकीर्तन करते रहो। इसी से मनोकामना पूर्ण होगी।



द्वितीय स्कन्ध

१. भगवान के विराट रूप का वर्णन

श्री शुकदेव जी ने बताया— पुरुषोत्तम भगवान संसार की उत्पत्ति, पालन और प्रलय की लीलाओं को करने हेतु सत्व, रज और तमोगुण रूपी तीन शक्तियों

को स्वीकार कर ब्रह्मा, विष्णु और महेश का रूप धारण करते हैं। पंच महाभूतों से इन शरीरों का निर्माण करके इनमें जीव रूप से शयन करते हैं और पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच प्राण प्राण (प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान) और एक मन, इन सोलह कलाओं से युक्त होकर इनके द्वारा सोलह विषयों का भाग करते हैं।

भगवान ने काल शक्ति को स्वीकार करके और एक साथ महत्तत्व, अहंकार, पंचभूत, पंच तन्मात्राएँ और ग्यारह इन्द्रियों सहित २३ तत्त्वों के समुदाय में प्रविष्ट हो गए।

भगवान की प्रेरणा से उपरोक्त २३ तत्त्वों के समूह के अंश रूप से एक आदि पुरुषविराट रूप भगवान की उत्पत्ति हुई। यह विराट पुरुष रूप ही प्रथम जीव होने के कारण ही भगवान का प्रथम अवतार है। समस्त भूतकाल के समुदाय इसी से प्रकट हुए। दस इन्द्रियों सहित मन अध्यात्म है। इन्द्रियों का विषय अधिभूत है। इन्द्रिय अधिष्ठाता देव, अधिदेव और प्राण, अपान, उदान, समान, कूर्म, नाग, व्यान, मन, देवदत्त, कृकल, तम आदि तीनों गुण जब संगठित नहीं थे, तब तक रहने हेतु, भोगों के साधन रूप शरीर की रचना नहीं हुई थी।

शुकदेव जी ने बताया कि जब भगवान अपनी शक्ति से प्रेरित हुए तो ये तत्त्व परस्पर एक-दूसरे से मिल गए। तब व्यष्टि-समष्टि रूप पिण्ड और ब्रह्माण्ड की रचना की। वह ब्रह्माण्ड रूपी अण्डा एक हज़ार वर्ष तक जल

में पड़ा रहा। इसके बाद काल, कर्म और स्वभाव को स्वीकार करने वाले भगवान ने अण्डे को जीवन प्रदान कर दिया। उस अण्डे को तोड़कर उसके अन्दर से विराट पुरुष भगवान निकले, जिनकी जंघा, भुजाएँ, चरण, नेत्र, मुख और सहस्त्र सिर थे।

कमर से नीचे के अंगों से सातों पाताल और पेडू से ऊपरी अंगों में सातों स्वर्ग की कल्पना की जाती है। उनके मुख से द्विज, भुजाओं से क्षत्रिय, पेडू से वैश्य और पैरों से शूद्र उत्पन्न हुए।

विराट पुरुष के तलवे में पाताल, एड़ियों तथा पंजों में रसातल है। ऐड़ी से ऊपर गांठें महातल, पैर के पिण्ड तलातल, घुटने सूतल, जांघे दोनों वितल और अतल तथा पेडू भूतल है। नाभी रूपी सरोवर आकाश है। छाती को स्वर्गलोक, गले को महर्लोक, मुख को जनलोक, ललाट को तपलोक और मस्तक को सत्यलोक कहा गया है। भुजाएँ-देवता, कान-दिशाएँ, शब्द श्रवणेन्द्रियाँ हैं। नाक के दोनों छिद्र ही दोनों अश्विनी कुमार, गन्ध घ्राणेन्द्रिय, धधकती हुई आग मुख और नेत्र अंतरिक्ष कहे गए हैं। देखने की शक्ति सूर्य, पलकें रात और दिन हैं। भ्रुविलास ब्रह्मलोक, तालुवा जल, जीभ रस, यम को दाढ़ें और दाँतों को स्नेह कहा गया है। जगमोहिनी माया को मुस्कान कहते हैं। ऊपर का होंठ लज्जा, नीचे का होंठ लोभ, स्तन धर्म और पीठ को अधर्म माना गया है। मूत्रेन्द्रिय प्रजापति है। मित्रावरुण अण्ड कोष, कोख समुद्र, हड्डियाँ पर्वत हैं।

नाड़ियाँ पेड़, रोम वृक्ष, वायु श्वास, चाल काल, गुणों का चक्कर कर्म, केश बादल, अनन्त का वस्त्र ही संध्या, सब विकारों का खज़ाना ही मन कहा गया है। नख घोड़े, हाथी, ऊँट और खच्चर हैं। मृग, पशु, पक्षी, सब कटि प्रदेश हैं। स्वायम्भुव मनु उसकी बुद्धि है। वीर्य दैत्य है।

विराट भगवान के स्थूल शरीर का यही स्वरूप है



३. भगवान के अन्य गुण और शक्तियाँ

भगवान की माया ने स्वयं के काल, कर्म और स्वभाव को स्वीकार किया है। काल के तीन गुणों में क्षोभ पैदा हुआ। स्वभाव ने उन्हें रूपान्तर कर दिया। कर्म ने महत्तत्व को जन्म दिया। रजोगुण तमोगुण की वृद्धि होने पर महत्तत्व का विकार हुआ।

इससे क्रिया, ज्ञान और द्रव्य रूपत्त्व, त्तम का प्रधान विकार हुआ। वह अहंकार कहलाया और विकार को प्राप्त होकर तीन प्रकार का हो गया। उनके निम्नलिखित भेद हैं :—

१. वैकारिक, २. तैजस, ३. तामस

उनकी क्रमशः ज्ञानशक्ति, क्रियाशक्ति और द्रव्यशक्ति प्रधान है।

जब पंच महाभूतों के कारण तामस रूप में विकास हुआ, तब इससे आकाश की उत्पत्ति हुई। आकाश के

तनमात्रा और गुण दो शब्द हैं।

इन शब्दों से द्रष्टा और दृश्य का बोध हुआ। जब आकाश में विकार हुआ तो वायु उत्पत्ति हुई। इस वायु का गुण स्पर्श है। वायु की उत्पत्ति काल, कर्म और स्वभाव से हुई है।

इससे तेज की उत्पत्ति हुई। इसका प्रधान गुण रूप है। तेज के विकास से जल की उत्पत्ति हुई, इसका गुण रस है। जल के विकार से पृथ्वी की उत्पत्ति हुई।

वैकारिक अहंकार से मन और इन्द्रियों के दस अधिष्ठातृ देवताओं की उत्पत्ति हुई, जिनके नाम निम्नलिखित हैं :—

१. सूर्य, २. वायु, ३. दिशा, ४. अग्नि, ५. अश्विनी कुमार, ६. वरुण, ७. मित्र, ८. विष्णु, ९. प्रजापति, १०. शिव

तैजस अहंकार से नेत्र, त्वचा, श्रोत, प्राण और जिह्वा ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं। गुदा, पाद, हस्त, वाक और जनेन्द्रियाँ ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं। तैजस से ज्ञान शक्ति, रूप बुद्धि और क्रिया शक्ति रूप प्राण भी उत्पन्न हुए।



३. ब्रह्मा के मुख से विराट स्वरूप की विभूति का वर्णन

विराट पुरुष के मुख से वाणी तथा अग्नि का जन्म हुआ। उनकी जिह्वा से अन्न, रस, वरुण का जन्म हुआ।

नासिका छिद्रों से उपान, व्यान, अपान, प्राण और समान उत्पन्न हुए तथा पाँचों प्राण और वायु एवं घ्राणेन्द्रियों से अश्विनी कुमार, औषधियाँ, और गन्ध उत्पन्न हुए। केश, दाढ़ी, मूँछ, नखों से मेघ, बिजली तथा भुजाओं से रक्षा करने वाले लोकपाल प्रकट हुए। उनका चलना-फिरना, भूः भुवः स्वः तीनों लोकों का आश्रय है। विराट पुरुष रूप लिंग, जल, वीर्य, सृष्टि, मेघ, प्रजापति का आधार है और जिनेन्द्रियाँ यम मैथुन का उद्‌गम है।

विराट पुरुष रूप से सब यज्ञ की सामग्री एकत्र की। उसी सामग्री से मैंने यज्ञ स्वरूप भगवान का यज्ञ द्वारा यजन किया। उन्हीं की प्रेरणा से सृष्टि की रचना करता हूँ। उन्हीं के आधीन होकर शिव सँहार करते हैं और विष्णु रूप से सृष्टि का पालन करते हैं।



४. भगवान के स्थूल और सूक्ष्म रूपों की धारणा तथा क्रम मुक्ति और सद्योमुक्ति का वर्णन

श्री शुकदेव जी ने बताया कि विद्वान मनुष्य को विविध नाम वाले पदार्थों से केवल उतना ही सम्बन्ध रखना चाहिए जितना प्रयोजनीय हो। यदि संसार के पदार्थ प्रारब्ध वश बिना परिश्रम के ही मिल जाएँ तो उसके लिए प्रयत्न न करें। जैसे ज़मीन पर सोने से काम चल जाए तो पलंग के लिए कोशिश न करें। जब भुजाएँ

हैं तो तकिए की क्या आवश्यकता है? जब अंजली से काम चल सकता है तो कटोरी व गिलास क्यों रखें? वृक्षों की छाल पहिन कर या वस्त्रहीन रहकर काम चल जाए तो वस्त्रों की क्या आवश्यकता है? इसी प्रकार जब भगवान ही अपने शरणागतों की रक्षा करते हैं तो बुद्धिमान मनुष्य क्यों घमंडी व धनवानों की चापलूसी करते हैं? इसी प्रकार विरक्त हो जाने पर हृदय में नित्य विराजमान आत्मस्वरूप और परमसत्य जो अनन्त भगवान है। उनका आनन्द से दृढ़ निश्चय करके भगवान का भजन क्यों करें? साधक भगवान का भजन करने से जन्म- मरण के चक्कर से मुक्त हो जाता है।

साधक को चाहिए कि वह अपने हृदय में भगवान की चार भुजाओं में शंख, चक्र, गदा, और पद्म वाली आकृति का ध्यान करे। कमल के समान जिनके नेत्र हैं, केसर के समान जिन्होंने पीला वस्त्र धारण कर रखा है, भुजाओं में सोने के बाजूबन्द पहन रखे हैं, सिर पर मुकुट और कानों में कुण्डल पहन रखे हैं। उनके चरण कमल हृदय कमल की कर्णिका पर विराजमान हैं। उनके हृदय पर श्री वत्स का चिन्ह अंकित है। गले में कौस्तुभ मणि लटक रही है। कमर में करधनी, अंगुलियों में अंगूठियाँ, चरणों में नुपूर और हाथों में कंगन आदि आभूषण धारण कर रखे हैं। जब तक मन इस धारणा के द्वारा स्थिर न हो जाए, तब तक भगवान को मन में देखते रहने की चेष्टा करते रहना चाहिए। सब कुछ भगवान का ही स्वरूप समझते रहना चाहिए। जब तक

भगवान में अनन्य प्रेमयुक्त भक्ति न हो जाए, तब तक साधक को एकाग्रता से भगवान के उपर्युक्त स्थूल रूप का ही चिन्तन करते रहना चाहिए।

हे परीक्षित! योगी ज्योतिर्मय मार्ग सुषुम्णा के द्वारा जब ब्रह्मलोक के लिए प्रस्थान करता है तो पहले आकाश मार्ग से अग्निलोक में जाता है। वहाँ से ऊपर भगवान श्रीहरि के ज्योतिर्मय चक्र पर पहुँचता है। भगवान का यह ज्योतिर्मय चक्र विश्व ब्रह्माण्ड के भ्रमण का केन्द्र बिन्दु है। वहाँ से वह महर्लोक में जाता है। जब प्रलय का समय आता है, तब नीचे लोकों में शेष नाग के मुँह से निकली हुई आग के द्वारा भस्म होते देखकर जीवन ब्रह्मलोक में चला जाता है। यहाँ पर आयु ब्रह्मा की आयु में समान दो परार्द्ध की मानी गई है। वहाँ पर दुख, बुढ़ापा और मृत्यु का भय नहीं होता है अर्थात् इनमें से कुछ भी नहीं होता।

योगी पंचभूतों को पारकर अहंकार में प्रवेश करता है। वहाँ सूक्ष्म भूतों को तामस अहंकार में, इन्द्रियों को राजस अहंकार में, मन और इन्द्रियों के अधिष्ठाता देवताओं को सात्विक अहंकार में लीन कर देता है। अहंकार की गति द्वारा महत्तत्व में प्रवेश हो प्रकृति रूप आवरण में जा मिलता है। यह सनातन मार्ग सद्योमुक्ति और क्रममुक्ति का वर्णन है।



५. कामनाओं के अनुसार विभिन्न देवताओं की उपासना व भगवद् भक्ति के प्रधान निरूपण

श्री शुकदेव जी ने बताया कि मनुष्य को निम्नलिखित देवताओं की उपासना करनी चाहिए :—

जिस व्यक्ति को ब्रह्मतेज की आवश्यकता हो उसे बृहस्पति जी की उपासना करनी चाहिए। जिस व्यक्ति को सन्तान की इच्छा हो उसे प्रजापतियों की उपासना करनी चाहिए। जिस व्यक्ति को लक्ष्मी की इच्छा हो उसे कुबेर और वरुण की उपासना करनी चाहिए। जिस व्यक्ति को स्वर्ग की इच्छा हो उसे अदिति के पुत्र देवताओं की उपासना करनी चाहिए। जिस प्राणी को राज्य की अभिलाषा हो उसे विश्वदेवों की उपासना करनी चाहिए। जिस व्यक्ति को सबका स्वामी बनने की इच्छा हो उसे ब्रह्माजी की उपासना करनी चाहिए। जिस प्राणी को विद्या प्राप्त करने की इच्छा हो उसे भगवान शंकर की उपासना करनी चाहिए। पति-पत्नी में प्रेम बनाए रखने के लिए पार्वती जी की उपासना करनी चाहिए। धर्म की उपार्जना के लिए विष्णु भगवान की उपासना करनी चाहिए। मोक्ष की प्राप्ति के लिए भक्तियोग द्वारा पुरुषोत्तम भगवान श्रीराम की उपासना करनी चाहिए। भोगों की प्राप्ति के लिए चन्द्रमा की और निष्कामता की प्राप्ति के लिए परम पुरुष नारायण की उपासना करनी चाहिए।

श्री शौनक जी बोले— सूत जी! पाण्डुनन्दन राजा परीक्षित बड़े ही भगवद भक्त थे। बचपन से ही वे श्री कृष्ण लीला का रस लेते रहते थे। श्री शुकदेव जी भी जन्म से ही भगवद् भक्त थे। जिन व्यक्तियों के कानों में भगवान श्री कृष्ण की लीलाओं की झंकार नहीं पड़ी, वे प्राणी नर होते हुए भी कुत्ते, सूअर, ऊँट और गधे आदि पशुओं से भी गए बीते हैं। जिस मनुष्य ने कभी भी भगवान श्री कृष्ण की कथा कभी नहीं सुनी, उसके कान बिल के समान हैं। जो भगवान श्री कृष्ण की लीलाओं का गायन नहीं करता, उसकी जीभ मेंढक की जीभ के समान है। जिस प्राणी के हाथ भगवान की सेवा पूजा नहीं करते, उसके हाथ मुर्दे के हाथ के समान हैं। जो सिर कभी भगवान के चरणों में नहीं झुकते वह केवल बोझ मात्र है। जो आँखें कभी भगवान के दर्शन तीर्थ और पवित्र गंगा, यमुना आदि पवित्र नदियों के दर्शन नहीं करतीं, वह आँखें मोर के पंख में बनी आँख के समान हैं। जिस मनुष्य ने तीर्थ स्थानों के दर्शन नहीं किए और भगवत प्रेमी सन्तों के चरणों की धूल कभी सिर पर नहीं चढ़ाई, वह व्यक्ति जीवित होते हुए भी मुर्दे के समान है।

सूत जी! वह हृदय नहीं लोहा है, जो भगवान के नामों का श्रवण करने पर भी नहीं पिघलता और उसकी आँखों से आँसुओं की धारा नहीं बहती। जब हृदय पिघल जाता है, उस समय आँखों में अश्रु छलकने लगते हैं और रोम-रोम खिल उठता है।

६. भगवान की लीला अवतारों की कथाएँ

ब्रह्माजी ने बताया कि भगवान नारायण के पास सत्व, रज और तम तीन शक्तियाँ हैं। उन्होंने पृथ्वी को जल से ऊपर लाने के लिए वराह का शरीर धारण किया। जब हिरण्याक्ष आदि देव भगवान से युद्ध करने आया तो उन्होंने अपनी दाढ़ी से उसके टुकड़े-टुकड़े करके मार गिराया। भगवान ने रुचि नाम के प्रजापति की स्त्री आकूति के गर्भ से सुयज्ञ के रूप में अवतार ग्रहण किया। इस अवतार में दक्षिणा नाम की स्त्री से सुयम नाम के देवता को उत्पन्न किया। स्वायम्भुव मनु ने उन्हें हरि के नाम से पुकारा।

प्रजापति कर्दम के घर पर देवहुति के गर्भ से नौ बहिनों के साथ कपिल भगवान ने अवतार ग्रहण किया। कपिल भगवान ने अपनी माता देवहुति को आत्मज्ञान का उपदेश दिया। महर्षि अत्रि भगवान को अपने पुत्र के रूप में देखना चाहते थे। भगवान ने महर्षि अत्रि को तथास्तु का वरदान देकर उनके यहाँ दत्तात्रेय के नाम से अवतार ग्रहण किया। यदु और सहस्त्रार्जुन ने दत्तात्रेय द्वारा योग और मोक्ष दोनों सिद्धियाँ प्राप्त कीं।

भगवान ने सृष्टि के आरम्भ में तपस्या की। उस तपस्या से भगवान ने तप अर्थ वाले "सन" नाम से युक्त होकर सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार के रूप में अवतार ग्रहण किया।

भगवान ने धर्म की पत्नी दक्ष कन्या मूर्ति के गर्भ से

नर नारायण के रूप में अवतार लिया। इनके तप का प्रभाव भगवान जैसा ही था। इन्द्र की भेजी हुई काम की सेना व अप्सराएँ नर नारायण के सामने आते ही अपना स्वभाव खो बैठीं तथा उनकी तपस्या में विघ्न नहीं डाल सकीं।

राजा उत्तानपाद के पास बैठे हुए पाँच वर्षीय पुत्र ध्रुव को उसकी सौतेली माता सुरुचि ने कठोर वचनों द्वारा उसके हृदय को बेध दिया। दुःखित हृदय अपनी माता के कहने पर बालक ध्रुव वन में तपस्या करने चला गया। उसकी तपस्या से प्रसन्न होकर भगवान ने स्वयं प्रकट होकर बालक ध्रुव को दर्शन दिए तथा ध्रुव को ध्रुव पद का वरदान दिया।

कुमार गामी बेन का ऐश्वर्य और पौरुष नरक में गिरने लगा। ऋषियों के आग्रह पर भगवान ने उसके शरीर का मन्थन करके प्रथु के रूप में अवतार ग्रहण किया और उसे नरक से उबारा। इस प्रकार पुत्र शब्द को चरितार्थ किया। उसी अवतार में पृथ्वी को गाय बनाकर जगत के लिए औषधियों का दोहन किया।

राजा नाभि की स्त्री सुदेवी के गर्भ से भगवान ने ॠषभ देव के रूप में जन्म ग्रहण किया। स्वयं उन्हीं यज्ञ पुरुष ने भरे यज्ञ में स्वर्ण के समान कान्ति वाले हयग्रीव के रूप में अवतार लिया। उन्हीं की नासिका से श्वास रूप में वेद वाणी प्रकट हुई।

चाक्षुष मन्वन्तर के अन्त में भावी मनु सत्यव्रत ने मत्स्य रूप में भगवान को प्राप्त किया। प्रलय के समय

वेदों को लेकर भयंकर जल में विहार करते रहे।

दानव और देवता अमृत प्राप्ति हेतु क्षीर सागर का मन्थन करते रहे। मन्दराचल पर्वत जब पानी में डूबने लगा तो भगवान ने कच्छप का रूप धारण कर मन्दराचल को पीठ पर धारण किया। समुद्र मन्थन से चौदह रत्न प्राप्त हुए। भगवान ने मोहिनी रूप धारण कर देवताओं में अमृत को वितरित किया।

देवताओं का भय दूर करने के लिए नरसिंह का रूप धारण कर अपने भक्त प्रहलाद को जो हिरण्यकशिपु का पुत्र था, हिरण्यकशिपु को मारकर उसकी रक्षा की।

ग्राह ने गजेन्द्र का पैर पकड़ लिया था, तब भगवान ने स्वयं प्रकट होकर गजेन्द्र को छुड़ाया। भगवान ने अपने चक्र से ग्राह का सिर उड़ा दिया। गजेन्द्र के साथ ग्राह को भी मोक्ष प्राप्त हो गया।

भगवान वामन अदिति के पुत्रों में सबसे छोटे पुत्र थे। राजा बलि की यज्ञशाला में गए। उन्होंने तीन पग भूमि राजा बलि से माँगी। भगवान ने दो पग में समस्त पृथ्वी नाप ली। ऐसी स्थिति में राजा बलि ने अपने सिर पर स्वयं वामन भगवान का चरण धारण किया।

भगवान ने धन्वन्तरि के रूप में अवतार ग्रहण किया। औषधियों का प्रचार कर सम्पूर्ण प्रजा की रक्षा की। भगवान धन्वन्तरि अपने नाम से बड़े-बड़े रोगियों के रोग तत्काल नष्ट कर देते थे।

क्षत्रियों का गर्व (घमण्ड) तथा उनके अत्याचार बढ़ जाने पर भगवान ने परशुराम के रूप में अवतार

ग्रहण किया। पृथ्वी को २१ बार क्षत्रियों से रहित कर दिया। इस प्रकार उन्होंने पृथ्वी का भार कम किया।

पृथ्वी का भार कम करने के लिए मायावी भगवान ने अपनी कलाओं से भरत, शत्रुघ्न, और लक्ष्मण के साथ इक्ष्वाकु वंश में राम का अवतार लिया। भगवान राम ने रावण आदि दैत्यों को मार कर पृथ्वी का भार कर किया। पृथ्वी का भार कम करने के लिए भगवान राम ने अपने सफेद और काले बालों से बलराम और श्रीकृष्ण का अवतार ग्रहण किया।

भगवान श्री कृष्ण ने बचपन में पूतना राक्षसी का वध किया। तीन मास की आयु में भारी भरकम छकड़े को अपने पैरों से उलट कर एक राक्षस का वध किया। जब भगवान श्री कृष्ण घुटनों के बल चलने लगे तो यमुलार्जुन वृक्षों के बीच में पहुँचकर उन्हें उखाड़ कर उनका उद्धार किया। भगवान श्री कृष्ण ने बालपन में कालिया नाग के फन पर चढ़ कर नृत्य करते हुए उसका वध कर यमुना से बाहर निकाला। इस प्रकार यमुना जी के जल को पवित्र किया। उसी रात को जब यमुना नदी के तट पर बहुत से व्यक्ति सो रहे थे तो उनकी दावानल अग्नि से रक्षा की।

माता यशोदा द्वारा रस्सी से बाँधे जाते समय रस्सी हर क्षण दो अँगुल छोटी होती जा रही थी। जब माता यशोदा ने भगवान श्री कृष्ण को मिट्टी खाने के लिए मना किया और जब उन्होंने पूछा कि तूने मिट्टी खाई है तो भगवान ने अपना मुँह खोलकर उन्हें चौदह भुवनों

के दर्शन कराए। नन्द बाबा को अजगर के मुख से एवं वरुण पाश से बचाया।

जब मयदानव के बेटे व्योमासुर ने गोपों को पहाड़ की गुफा में बन्द कर दिया तब भगवान श्री कृष्ण ने उसका वध करके गोपों की रक्षा की। उन्होंने सात वर्ष की अवस्था में गोवर्धन पर्वत को सात दिन तक अपनी अँगुली पर उठाए रखकर देवताओं के राजा इन्द्र का गर्व चूर-चूर किया। वृन्दावन में रास की इच्छा से आई हुई सब गोपियों को कुबेर के सेवक शंखचूड ने अपहरण कर लिया, तब भगवान श्री कृष्ण ने शंखचूड के सिर को धड़ से अलग करके गोपियों को स्वतन्त्र कराया।

प्रलम्बासुर, धेनुकासुर, बकासुर, केशी, अरिष्टासुर आदि अनेकों दैत्यों का वध भगवान श्री कृष्ण ने किया। उन्होंने चाणूर आदि पहलवानों और कुवलियापीड हाथी, कंस, कालयवन, भौमासुर, द्विविद, मिथ्यावासुदेव, साल्व, दन्तवक्र, बल्वल, वानर और राजा नग्नजीत के सात बैलों का वध किया। विदुरथ, शम्बरासुर, और रुक्मी आदि राजाओं तथा मत्स्य कैकय, कम्बोज, कुरु और सुञ्जय आदि का वध करके भगवान श्री कृष्ण अपने धाम को सिधार गए।



८. ब्रह्माजी को भगवद्धाम दर्शन और भगवान के द्वारा भगवत का उपदेश

श्री शुकदेव जी ने बताया कि ब्रह्माजी की निष्कपट तपस्या से प्रसन्न होकर आदिदेव भगवान ने उन्हें दर्शन देकर अपना रूप प्रकट किया और आत्मतत्व के ज्ञान के लिए सत्य परमार्थ वस्तु का जो उपदेश दिया उसे सुनो—

ब्रह्माजी ने अपने जन्म स्थान कमल पर बैठकर सृष्टि की रचना करने का विचार किया। तब प्रलय के समुद्र में उन्होंने व्यंजनों के सोलहवें तथा इक्कीसवें अक्षर त तथा प को तप-तप (तप करो) इस प्रकार दोबार सुना। ब्रह्माजी ने यह वाणी बोलने वाले को देखने के लिए चार मुख ग्रहण किए परन्तु उन्हें किसी के दर्शन नहीं हुए। अन्त में ब्रह्मा जी ने अपने मन को तपस्या में लीन कर लिया।

उन्होंने एक हज़ार दिव्य वर्षों तक प्राण, मन, कर्मेन्द्रिय और ज्ञानेन्द्रियों को एकाग्र कर तपस्या की। उनकी तपस्या से प्रसन्न होकर श्रादिदेव भगवान ने उन्हें अपने लोक के दर्शन कराए। ब्रह्माजी ने देखा कि उस लोक में किसी भी प्रकार के क्लेश, मोह या भय नहीं है। वहाँ न काल का दखल है और न माया ही वहाँ प्रवेश कर सकती है। भगवान श्रादिदेव की पूजा देवता और दैत्य दोनों ही करते थे। उस लोक में समस्त भक्तों के रक्षक, यज्ञपति, विश्वपति और लक्ष्मी पति भगवान विराजमान हैं। वक्षस्थल पर एक सुनहरी रेखा के रूप

में श्री लक्ष्मी जी विराजमान हैं। महत्त्व, प्रकृति, पुरुष, मन, अहंकार दस इन्द्रियाँ, शब्दादि पाँच तन्मात्राएँ और पँचभूत ये पच्चीस शक्तियाँ मूर्तिमान होकर चारों ओर उपस्थित हैं। समग्र ऐश्वर्य, श्री, कीर्ति, धर्म, ज्ञान और वैराग्य से छः नित्य सिद्ध स्वरूप भूत शक्तियों से युक्त रहते हैं। उन सबको देखते ही ब्रह्माजी का हृदय आनन्द से लबालब भर गया। भगवान श्रादिदेव ने ब्रह्माजी से हाथ मिलाया और मन्द-मन्द मुस्कान में बोले— तुमने मेरे दर्शन किए बिना ही उस सूने जल में वाणी सुनकर इतनी घोर तपस्या की है। इसी तपस्या के कारण ही मेरी इच्छा से आपको मेरे लोक के दर्शन हुए हैं। तपस्या मेरा हृदय है और मैं स्वयं तपस्या की आत्मा हूँ।

ब्रह्माजी भगवान श्रादिदेव से बोले— आपने एक मित्र के समान मेरा हाथ पकड़कर मुझे अपना मित्र बना लिया है। इसलिए जब मैं सृष्टि की रचना करने लगूँ और सावधानी से सृष्टि के गुण कर्मानुसार जीवों का विभाजन करने लगूँ तब समय-समय पर दर्शन देते रहना। इस कार्य में मुझे आपकी सेवा की आवश्यकता है।

भगवान श्रादिदेव ने कहा— जहाँ यह सृष्टि नहीं है, वहाँ मेरी उपस्थिति समझना और इस सृष्टि के रूप में जो कुछ प्रतीत हो रहा है, वह मैं ही हूँ। तुम अविचल समाधि के द्वारा मेरे इस कथन में पूर्ण निष्ठा कर लो। इससे तुम्हें कल्प-कल्प में विविध प्रकार की सृष्टि रचना करते रहने पर भी कभी माहित नहीं होगे। देखते-देखते भगवान ने अपने उस रूप को समेट लिया।

८. भागवत के दस लक्षण

कल्प में सत्यवती के गर्भ से व्यास के रूप में भगवान ने प्रकट होकर भागवत पुराण की रचना की थी। इसी भागवत पुराण में सर्ग, विसर्ग, स्थान, पोषण, अति, मन्वन्तर, इशानु, निरोध, मुक्ति, आश्रय इन दस विषयों का वर्णन है।

भगवान की प्रेरणा से आकाश, तन्मात्राएँ, पंचभूत, महत्तत्व और अहंकार की उत्पत्ति का नाम सर्ग कहा गया है। विराट पुरुष से सृष्टियों के निर्माण को विसर्ग कहा गया है। प्रति पल नाश की ओर बढ़ने वाले सृष्टि को मर्यादा में स्थिर रहने से भगवान विष्णु की जो श्रेष्ठता सिद्ध होती है, उसे स्थान कहा गया है। भगवान के द्वारा सुरक्षित सृष्टि में भक्तों के ऊपर उनकी जो कृपा रहती है उसे पोषण कहा गया है। मन्वन्तरों के अधिपति जो भगवद् भक्ति और प्रजापालन रूप शुद्ध धर्म का अनुष्ठान करते हैं उसे मन्वन्तर कहा गया है। जीवों की वे वासनाएँ जो कर्म के द्वारा उन्हें बन्धन में डाल देती हैं उसे ऊति कहा गया है। भगवान के विभिन्न अवतारों के और उनके प्रेमी भक्तों की विविध आख्यानों से युक्त कथाएँ ईश कथा कहलाती हैं। जब भगवान योगनिद्रा स्वीकार करके शयन करते हैं, तब इस जीव का अपना वास्तविक स्वरूप परमात्मा में स्थित होना ही मुक्ति है। इस चराचर जगत की उत्पत्ति और प्रलय जिस तत्त्व से प्रकाशित होते हैं वह परब्रह्म ही आश्रय है।

ए. सृष्टि का वर्णन

श्री शुकदेव जी ने बताया कि विराट भगवान जब ब्रह्माण्ड को छेदकर प्रकट हुए तो रहने के लिए स्थान को तलाशने लगे। तब उन्होंने जल की सृष्टि की। विराट पुरुष के नर से उत्पन्न होने के कारण जल का नाम नार पड़ा। एक हज़ार वर्षों तक नगर में रहने के कारण उनका नाम नारायण पड़ा। नारायण ने योग निद्रा से जागकर अपनी माया से अपने स्वर्णमय वीर्य को तीन भागों में बाँटा, जिनके नाम अधिदेव, अध्यात्म और अधिभूत थे।

विराट पुरुष के हिलने-डुलने से उनके शरीर में स्थित आकाश से इन्द्रिय बल, मनोबल और शरीर बल की उत्पत्ति हुई। इन सबका स्वामी प्राण उत्पन्न हुआ। मुख से तालु और तालु से रसनेन्द्रिय प्रकट हुई। बोलने की इच्छा होने पर वाक्इन्द्रिय प्रकट हुई जिसके अधिष्ठाता देवता अग्नि हैं। जिसका विषय बोलना है प्रकट हुई। सूँघने की इच्छा होने पर "नाक" घ्राणेन्द्रिय उत्पन्न हुई। गन्ध को फैलाने हेतु वायुदेव प्रकट हुए। देखने की इच्छा होने पर नेत्रों के छिद्र जिनका अधिष्ठाता सूर्य हैं नेत्रेन्द्रिय प्रकट हुई। इन्हीं से रूप का ग्रहण होने लगा। सुनने की इच्छा होने पर कान प्रकट हुए। उष्णता, शीतलता, कोमलता और भारीपन जानने के लिए शरीर में चर्म प्रकट हुआ। जिसके चारों ओर रोम छिद्र उत्पन्न हुए। त्वचा इन्द्रिय शरीर के चारों ओर लिपट गई। कर्म

करने की इच्छा से हाथ उग आए। ग्रहण करने की शक्ति हस्तेन्द्रिय तथा अधिदेवता इन्द्र प्रकट हुए। ग्रहण रूप कर्म भी प्रकट हुआ। आने-जाने की इच्छा होने पर पैर उग आए। चरणों के साथ ही चरण इन्द्रिय के साथ ही उसके अधिष्ठाता के रूप में वहाँ स्वयं यज्ञ पुरुष भगवान विष्णु स्थित हो गए। उन्हीं से चलना रूप कर्म प्रकट हुआ।

सन्तान, रति और स्वर्ग की कामना हेतु लिंग का निर्माण हुआ। उपस्योन्द्रिय और प्रजापति आदि हुए। मलत्याग की इच्छा होने पर गुदा द्वार का निर्माण हुआ। पायुन्द्रिय और मित्र देवता प्रकट हुए। अपान द्वारा एक शरीर से दूसरे शरीर में जाने की इच्छा से नाभिद्वार प्रकट हुआ। उसी से अपान और मृत्यु देवता प्रकट हुए। इन दोनों के आश्रय से ही प्राण और अपान का विछोह होने से मृत्यु होती है। माया का विचार करने हेतु हृदय की उत्पत्ति हुई।

इसी प्रकार आकाश, जल और वायु इन तीनों से प्राणों की उत्पत्ति हुई। अन्न, जल ग्रहण करने हेतु कोख, आंतों और नाड़ियों का निर्माण हुआ। विराट पुरुष के शरीर में पृथ्वी, जल, तेज से सात धातुएँ-

१. त्वचा, २. चर्म, ३. मांस, ४. हड्डियाँ, ५. मज्जा, ६. मेद, ७. रुधिर प्रकट हुईं।



तृतीय स्कन्ध

१. ब्रह्माजी की उत्पत्ति

श्री मैत्रेयजी ने बताया कि आदिदेव श्री संकर्षण भगवान पाताल लोक में विराजमान थे। सनत्कुमार ऋषियों ने परम पुरुषोत्तम ब्रह्म का तत्व जानना चाहा। उस समय शेष जी अपने आश्रय स्वरूप भगवान की मानसिक पूजा कर रहे थे। जिनका वेद ''वासुदेव'' के नाम से निरूपण करते हैं। उनके कमल रूपी नेत्र बन्द थे। प्रश्न करने पर सनत्कुमार ऋषियों के आनन्द हेतु उन्होंने अधखुले नेत्रों से ऋषियों को देखा।

सनत्कुमारों ने बार-बार प्रेम में विहल वाणी में उनकी लीला का गुणगान किया। भगवान संकर्षण निवृत्ति परायण सनत्कुमार जी को यह भागवत सुनाया था। सनत्कुमार जी ने इसे सांख्यायन मुनि को सुनाया था। श्री सांख्यायन मुनि ने अपने अनुगज शिष्य पराशर जी को और बृहस्पति जी को सुनाया। पुलस्त्य मुनि के कहने पर दयालु श्री पराशर जी ने आदि पुराण को मुझे सुनाया था। वही पुराण अब मैं सुनाता हूँ।

समस्त गुणों को प्रकाशित करने वाले उस सर्वलोकमय कमल पुष्प में विष्णु भगवान ही अन्तर्यामी रूप में प्रविष्ट हो गए। तब बिना पढ़ाए ही स्वयं समस्त वेदों को जानने वाले वेदमूर्ति श्री ब्रह्माजी प्रकट हुए, जिन्हें स्वयं भू कहा जाता है। चारों दिशाओं में दिखने हेतु ब्रह्माजी के चार मुख हो गए। ब्रह्माजी ने आदि देव

भगवान की खोज करने के लिए, कमल की नाल के छिद्र में प्रवेश कर जल में अन्त तक ढूँढा। परन्तु भगवान उन्हें कहीं भी नहीं मिले। ब्रह्माजी ने अपने अधिष्ठान भगवान को खोजने में सौ वर्ष व्यतीत कर दिए। अन्त में ब्रह्माजी ने समाधि लगा ली। इस समाधि द्वारा उन्होंने अपने अधिष्ठान को अपने अन्तःकरण में प्रकाशित होते देखा। उस समय कोई आश्रय है या नहीं, इस सन्देह को कमल नाल के द्वारा उसका मूल खोज रहे थे। तब उस स्वरूप को ब्रह्माजी ने अपने अन्तःकरण में देखा। शेष जी की शैय्या पर पुरुषोत्तम भगवान अकेले लेटे हुए दिखाई दिए। ब्रह्माजी ने पुरुषोत्तम भगवान की स्तुति की। उन्होंने पुरुषोत्तम भगवान से सृष्टि रचना का आदेश प्राप्त किया और कमल के छिद्र से बाहर निकल कर कमल कोष पर विराजमान हो गए। इसके बाद संसार की रचना पर विचार करने लगे।

२. ब्रह्माजी की दस प्रकार की सृष्टि की रचना

ब्रह्माजी ने उस कमल कोष के तीन विभाग भूः भुवः स्वः किए। निष्काम करने वालों को महः तपः जनः सत्यलोक रूप ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है।

दस प्रकार की सृष्टियों के नाम :- १. महत्तत्व की सृष्टि, २. अहंकार की सृष्टि, ३. भूतसर्ग की सृष्टि, ४. इन्द्रियों की सृष्टि, ५. सात्विक सृष्टि, ६. अविद्या की सृष्टि, ७. वैकृत की सृष्टि, ८. तिर्यगयोनि की सृष्टि,

९. मनुष्यों की सृष्टि, १०. देवसर्ग वैकृत की सृष्टि।

१. महत्तत्व की सृष्टि : भगवान की प्रेरणा से सन्त्वादि गुणों में विषमता होना ही इसका गुण है।

२. अहंकार की सृष्टि : इसमें पृथ्वी आदि पंचभूत एवं ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय की उत्पत्ति होती है।

३. भूतसर्ग की सृष्टि : इसमें पंचमहा भूतों को उत्पन्न करने वाला तन्मात्र वर्ग रहता है।

४. इन्द्रियों की सृष्टि : यह ज्ञान और क्रियाशील शक्ति से उत्पन्न होती है।

५. सात्विक सृष्टि : अहंकार से उत्पन्न हुए इन्द्रियाधिष्ठाता देवताओं की सृष्टि है। मन इसी सृष्टि के अन्तर्गत आता है।

६. अविद्या की सृष्टि : इसमें तामिस्त्र, अन्धतामिस्त्र, तम, मोह, माहमोह, पाँच गाठें है।

७. वैकृत की सृष्टि : यह छः प्रकार के स्थावर वृक्षों की है। इनका संचार जड़ से (नीचे) ऊपर की ओर होता है।

८. तिर्यगयोनि की सृष्टि : यह पशु-पक्षियों की सृष्टि है। इनकी २८ प्रकार की योनियाँ मानी गई हैं।

९. मनुष्यों की सृष्टि : इस सृष्टि में आहार का प्रवाह ऊपर मुँह से नीचे की ओर होता है।

१०. देवसर्ग वैकृत की सृष्टि : इनके अतिरिक्त सनत्कुमार आदि ऋषियों का जो कौमार सर्ग है यह प्राकृत वैकृत दोनों है।



३. काल विभाग का वर्णन

श्री मैत्रेय जी ने बताया कि एक अणु में दो परमाणु होते हैं। ३ अणु में से एक त्रसरेणु बनता है। तीन त्रसेरणुओं को पार करने में सूर्य को जितना समय लगता है उस समय को त्रुटि कहते हैं। इससे सौ गुना काल वेध कहलाता है। ३ वेध का एक लव होता है। तीन लव का एक निमेष और ३ निमेष का एक क्षण होता है। पाँच क्षण की एक काष्ठा होती है तथा १५ काष्ठा का एक लघु होता है। १५ लघु की एक नाडिका दण्ड होती है। दो नाडिका का एक मुहूर्त होता है। ६ या ७ नाडिकाओं का एक पहर होता है। यह याम कहलाता है, जो दिन और रात्रि का चौथाई भाग होता है। चार-चार पहर की दिन और रात होती है। १५ दिन और रात का एक पक्ष होता है। १५ दिन का शुक्ल पक्ष और १५ दिन का कृष्ण पक्ष होता है। दोनों पक्षों को मिलाकर एक मास या महीना कहलाता है। चार मास की एक ॠतु होती है। छः माह का एक अयन होता है दो अयनों का एक वर्ष बनता है।

प्रकृति, महत्तत्व, अहंकार और तन्मात्रा, प्रकृतियों के सहित दस इन्द्रियाँ, मन, पाँचभूत इन सोलह विकारों से मिलकर बना हुआ ब्रह्माण्ड कोश है जो अन्दर से पचास करोड़ योजन विस्तार वाला है। इसके बाहर दस गुने सात आवरण हैं। इन प्रधानादि समस्त कारणों का एक कारण अक्षर ब्रह्म कहलाता है। यही पुराण पुरुष परमात्मा श्री विष्णु भगवान का श्रेष्ठ धाम (स्वरूप) है।

४. सृष्टि का विस्तार

श्री मैत्रेयजी ने बताया कि ज्ञान की पाँच वृत्तियाँ- तम (अविद्या), मोह (अस्मित), माहमोह (राग), तामिस्त्र दोष, अन्धतमिस्त्र (अभिनिवेश) हैं।

दूसरी सृष्टि सनक, सन्दन, सनातन, सनत्कुमार तथा निवति प्रणायन, उर्ध्वरेता मुनि पैदा किए। उर्ध्वरेता देवताओं ने सृष्टि रचने से मना कर दिया। तब ब्रह्मा जी के क्रोध ने तत्काल प्रजापति की भौहों के मध्य से एक नीला लोहित (नीला+लाल रंग) बालक पैदा किया। प्रजा उसे रुद्र के नाम से पुकारने लगी। बालक रोता हुआ पैदा हुआ। बालक ने अपने रहने के लिए स्थान माँगा। ब्रह्माजी ने उसके रहने के लिए हृदय, आकाश, इन्द्रिय, वायु, प्राण, चन्द्रमा, सूर्य, पृथ्वी, जल, अग्नि और तप रच दिए। ब्रह्माजी ने कहा कि तुम्हारे नाम महान, काल, महिबस, भव, मन्यु, ॠतुध्वज, मनु, उग्रेता शिव, कामदेव और धृतव्रत होंगे।

रुद्र की पत्नियाँ उमा, उशना, वृति, घी, सुधा, इरावती, अम्बिका, इला, सार्थि, नियुत और दीक्षा नाम की रुद्रानियाँ होंगी। ब्रह्मा जी ने कहा कि इन स्त्रियों को ग्रहण करो और इनके संगम से प्रजापति होने के कारण सृष्टि की रचना करो। आज्ञा पाकर रुद्र ने सृष्टि की रचना आरम्भ की। रुद्र जी के द्वारा उत्पन्न हुई रुद्रों की संख्या यूथ बनकर समस्त संसार का भक्षण करने लगी। ब्रह्मा जी ने कहा— यह सृष्टि तुम्हें, मुझे तथा

दशों दिशाओं को भी खा जाएगी। अतः सृष्टि की रचना करना बन्द करो। तुम संसार के कल्याण के लिए तपस्या करो। आज्ञा पाकर रुद्र शिवजी भगवान संसार के कल्याण के लिए तपस्या करने चले गए।

इसके बाद जब भगवान की शक्ति पैदा कर ब्रह्माजी ने सृष्टि के लिए संकल्प किया। भगवान के आदेश के अनुसार ब्रह्माजी ने दस पुत्र और उत्पन्न किए, जिनके नाम निम्नलिखित थे :—

मरीचि, अंगिरा, अत्रि, पुलह, पुलस्त, वशिष्ठ, भृगु, क्रतु, दक्ष, नारद।

मरीचि ब्रह्माजी के मन से उत्पन्न हुए। अंगिरा ब्रह्माजी के मुख से, अत्रि ब्रह्माजी के नेत्रों से, पुलह उनकी नाभि से, पुलस्त ऋषि उनके कानों से, वशिष्ठ ब्रह्माजी के प्राणों से, भृगु उनकी त्वचा से, क्रतु उनके हाथ से, दक्ष उनके अंगूठे से और नारद की उत्पत्ति ब्रह्माजी की गोद से हुई।

ब्रह्माजी के दाएँ स्तन से धर्म की उत्पत्ति हुई। धर्म की पत्नी मूर्ति से स्वयं नारायण की उत्पत्ति हुई। ब्रह्माजी की पीठ से अधर्म का जन्म हुआ। इससे संसार को भयभीत करने वाली मृत्यु का जन्म हुआ। ब्रह्माजी के हृदय से काम, भौहों से क्रोध, नीचे के हाथों से लाभ, मुख से वाणी जिसकी अधिष्ठात्री देवी सरस्वती हुई। ब्रह्माजी की गुदा से पाप और उनके लिंग से समुद्र की उत्पत्ति हुई। राक्षसों का अधिपति निर्ऋति का स्थान समझा जाता है। उनकी परछाई से देवहुति के पति

भगवान कर्दम की उत्पत्ति हुई। इस प्रकार संसार ब्रह्माजी के शरीर और मन से प्रकट हुआ।

श्री मैत्रेय जी ने बताया— ब्रह्माजी की कन्या परम सुन्दरी थी। ब्रह्माजी की कन्या के लिए स्वयं ब्रह्माजी के मन में काम मोहित हो गया था। आगे-आगे कन्या दौड़ रही थी और पीछे-पीछे ब्रह्माजी दौड़ रहे थे। उनके पुत्रों ने जब यह दृश्य देखा तो वे बोले— पिताश्री! आप काम वासना के वेग को नहीं रोक सके तथा आप पुत्रीगमन जैसे दुस्तर पाप को करने जा रहे हैं। पुत्रों ने ब्रह्माजी को समझाकर रोका। ब्रह्माजी ने इस शरीर का परित्याग कर दिया। इस शरीर त्याग करने से कोहरा उत्पन्न हुआ।

ब्रह्माजी ने दूसरा शरीर धारण किया। ब्रह्माजी ने देखा कि मेरे दस पुत्रों से सृष्टि का विस्तार नहीं हो रहा है। वे इस पर विचार कर ही रहे थे कि उसी समय अचानक उनके शरीर के दो भाग हो गए। एक भाग को ब्रह्मा और दूसरे भाग को काया कहते हैं। उन दोनों भागों से एक स्त्री-पुरुष का जोड़ा उत्पन्न हुआ। पुरुष स्वायम्भुव मनु कहलाए और स्त्री सतरूपा कहलाई। सतरूपा स्वायम्भुव की पत्नी के नाम से प्रसिद्ध हुई। तभी से मिथुन धर्म (स्त्री पुरुष संभोग) से प्रजा की उत्पत्ति होने लगी।

स्वायम्भुव मनु से उनकी पत्नी सतरूपा के पाँच सन्तानें हुईं। जिनमें प्रियव्रत और उत्तानपाद नाम के दो पुत्र थे और आकूति, देवहूति और प्रसूति नाम की तीन पुत्रियाँ थीं।

स्वायम्भुव मनु ने आकूति का विवाह रुचि प्रजापति के साथ किया। देवहूति की शादी कर्दम ऋषि के साथ हुई और प्रसूति दक्ष प्रजापति के साथ विवाही गई।

इन तीनों स्त्रियों की सन्तानों से सृष्टि बढ़ती चली गई।



५. बराह अवतार भगवान की कथा

ब्रह्माजी ने स्वायम्भुव मनु से इच्छा प्रकट थी कि आप अपनी स्त्री सतरूपा से गुणवान सन्तानों की उत्पत्ति कीजिए। स्वायम्भुवव मनु ने कहा— मैं आपकी आज्ञा का पालन अवश्य करूँगा, परन्तु इस संसार में मेरे और मेरी भावी सन्तान के रहने के स्थान का तो प्रबन्ध कीजिए। क्योंकि जीवों के रहने का स्थान तो पृथ्वी है और वह प्रलय के समय से आज तक जल में समायी हुई है। इसलिए पहले आप पृथ्वी को जल से बाहर निकालने का प्रबन्ध कीजिए।

श्री मैत्रेयजी ने बताया कि जब ब्रह्माजी जल में डूबी हुई पृथ्वी को देखकर अपने मन में विचार कर ही रहे कि पृथ्वी को जल से बाहर कैसे निकाला जाए तो उसी समय ब्रह्माजी के नासाछिद्र से अचानक अंगूठे की लम्बाई के बराबर का एक बराह शिशु निकाला। ब्रह्माजी के देखते-देखते क्षण भर में ही वह हाथी के बराबर बड़ा हो गया। ब्रह्माजी विचारने लगे कि इस सूकर के

रूप में यह कौन प्राणी पैदा हुआ है? उन्होंने सोचा कि अवश्य ही यज्ञमूर्ति भगवान हमें मोहित कर रहे हैं। सूकर रूपी भगवान जल को सूँघकर पृथ्वी को खोजने के लिए जल में प्रवेश कर गए। भगवान ने जल में पृथ्वी को देखा तो उन्होंने पृथ्वी को अपनी दाढ़ों पर रखकर रसातल से ऊपर उठाकर लाने लगे तो रास्ते में उन्हें हिरण्याक्ष नाम का एक दैत्य मिला। वह हाथ में गदा लेकर भगवान पर टूट पड़ा। तब यज्ञमूर्ति भगवान ने सुदर्शन चक्र तथा करतल से उस राक्षस का वध कर दिया। हिरण्याक्ष के रक्त से उनकी कनपटी और थूंथनी भीग जाने से वह बहुत ही भयंकर दिखाई देने लगे थे।

भगवान बराह अवतार रूप में अपने दाँतों की नोक पर पृथ्वी को धारण करके जल से बाहर निकले। बराह रूपी भगवान को देखकर ब्रह्मा जी और मरीचि आदि को विश्वास हो गया कि ये भगवान ही हैं। उन्होंने वेद के श्लोंको से भगवान की स्तुति की। यज्ञ मूर्ति बराह रूपी भगवान ने पृथ्वी को जल के ऊपर उचित स्थान पर स्थापित कर दिया। भगवान अपनी योगमाया के सन्तवादि गुणों से यह सारा संसार मोहित कर रहे हैं। आप इसका कल्याण कीजिए। ब्रह्माजी से इतना कहकर वह अन्तर्धान हो गए।



६. दिति का गर्भ धारण

श्री शुकदेव ने बताया कि मरीचि के पुत्र का नाम कश्यप था। कश्यप जी की पत्नी का नाम दिति था। कश्यप जी के तेरह कन्याएँ हुईं जो दक्ष प्रजापति को ब्याही गईं। एक बार दक्ष की पुत्री दिति ने कामदेव से उत्तेजित होकर अपने पति कश्यप जी से सायंकाल के समय पुत्र की इच्छा से कामदेव को शान्त करने के लिए कहा। उस समय कश्यप जी खीर की आहुतियों द्वारा असिजिह्व भगवान यज्ञपति की आराधना कर अग्निशाला में बैठे हुए कर रहे थे। दिति ने कश्यप जी को वैश्याओं की तरह मजबूर किया क्योंकि उनके ऊपर वासना का भूत सवार था। दिति ने उनके कपड़े फाड़ डाले और संभोग के लिए विवश करने लगीं। कश्यप जी ने दिति को बहुत समझाने का प्रयत्न किया और कहा कि यह समय राक्षसों का है। इस समय भगवान शिव अपने गणों के साथ इधर-उधर घूमते रहते हैं। उन्होंने दिति को ज्ञानदृष्टि से बहुत समझाया परन्तु दिति पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। विवश होकर कश्यप जी को दिति के साथ संभोग करना पड़ा। वे अन्त में दिति से बोले— तुम्हारे दो जुड़वाँ राक्षस वृंति वाले बालक होंगे। तुम्हारी कोख में बड़े ही अमंगलकारी और अधर्म बालकों का गर्भ स्थापित हुआ है। ये दोनों बालक बड़े भारी राक्षस बनेंगे। इनके अत्याचारों से कुपित होकर भगवान अवतार लेकर इनका वध करेंगे। इनमें से एक

के चार पुत्र होंगे। आपका उनमें से एक पौत्र भगवान का बड़ा भारी भक्त होगा। उस पौत्र को भगवान श्री हरि प्रत्यक्ष दर्शन देकर कृतार्थ करेंगे। उसका नाम इस सृष्टि में सदैव के लिए अमर हो जाएगा।

दिति ने कश्यप जी के वीर्य को सौ वर्ष तक अपने पेट में रखा। भगवान के दो पार्षदों जय और विजय ने दिति के गर्भ में प्रवेश किया। देवता बहुत घबरा गए और डर के मारे हा-हाकार करते हुए भगवान से प्रार्थना करने लगे। कुछ समय बाद दिति के गर्भ से दो जुड़वाँ भाई पैदा हुए। उनमें से एक का नाम हिरण्यकाशिपु और दूसरे का नाम हिरण्याक्ष रखा गया।



७. ब्रह्मा जी द्वारा अन्य प्रकार की सृष्टि

श्री सूत जी ने बताया कि श्री नारायण देव ने ब्रह्माजी के शरीर में प्रवेश किया। इस पर ब्रह्माजी ने अपने द्वारा निश्चित की हुई नामावली (नाम रूपमयी) के अनुसार लोकों की रचना की। भगवान के कहने पर ब्रह्माजी ने तमोमय काम कलुषित शरीर त्याग दिया। इससे भूख और प्यास की उत्पत्ति हुई। ऐसी रात्रि रूप प्रकट हुई कि जिसको यज्ञ राक्षसों ने ग्रहण किया। वे बोले कि ब्रह्माजी को खा जाओ। यह बोलने वाले यक्ष कहलाए और रक्षा मत करो ऐसा बोलने वाले राक्षस बने। बाल गिरे बोलने वाले वे सब अहि हुए। हाथ पैर

सिकुड़ कर चलने पर सर्प और नाग बने।

ब्रह्माजी के छोड़े हुए शरीर से एक सुन्दर स्त्री पैदा हुई जो सन्ध्या देवी के रूप में बदल गई। उस सुन्दरी को देखकर समस्त असुर सम्मोहित हो गए। सायंकालीन संध्या ने उन्हें मोहित कर दिया। उन मूर्खों ने उसे रमणीरत्न समझकर ग्रहण कर लिया। ब्रह्माजी ने गम्भीर भाव से हँसकर अपनी कान्तिमय मूर्ति से, जो अपने सौन्दर्य का स्वयं ही आस्वादन करती थी, गन्धर्व और अप्सराएँ पैदा कीं। एक बार ब्रह्माजी ने अपना प्रतिबिम्ब देखा, तब अपने को बहुत सुन्दर मानकर, इस प्रतिबिम्ब से किन्नर और किम्पुरुष उत्पन्न किए।



८. जय-विजय को सनक आदि का शाप और पतन

श्री मैत्रेय जी ने बताया कि एक बार सनकादि मुनि श्री हरि भगवान के निवास स्थान बैकुण्ठ में उनसे मिलने के लिए अपनी योगमाया से पहुँचे। भगवान के दर्शनों की इच्छा से वे बैकुण्ठ लोक की ड्योढ़ी पार कर सातवें द्वार पर पहुँचे। वहाँ द्वार पर उन्हें समान आयु वाले दो पार्षद मिले। उन दोनों पार्षदों ने मुनियों को भीतर जाने से रोक दिया। सनकादि बालक पाँच वर्ष के समान मालूम देते थे और वे हमेशा नग्न अवस्था में रहते थे। दोनों पार्षदों का नाम जय और विजय था।

मुनियों ने क्रोधित होकर उन्हें शाप दे दिया कि आप उस पाप योनियों में जाओ जहाँ काम, क्रोध और मोह ये मनुष्य के तीन शत्रु निवास करते हैं।

सनकादि मुनि ड्योढ़ी पार करके बैकुण्ठ धाम पहुँचे। वहाँ भगवान श्री हरि श्री लक्ष्मी सहित विराजमान थे। भगवान श्री हरि ने उन ब्रह्म ऋषियों को आते देखा तो ऋषियों का स्वागत करने के लिए भगवान श्री हरि खड़े हो गए और उन्हें बैठने के लिए आसन प्रदान किया। भगवान श्री हरि को ज्ञात हुआ कि द्वार पर पार्षदों ने मुनियों को अन्दर आने से रोका था जिस कारण मुनियों ने क्रोधित होकर उन्हें शाप दे दिया है। पार्षदों ने अन्दर आकर भगवान श्री हरि से प्रार्थना की। भगवान श्री हरि ने पार्षदों से कहा कि मैं ब्रह्मशाप को हटाने में असमर्थ हूँ। मैं केवल इतना कर सकता हूँ कि श्राप के पूरा होने के पश्चात् मैं शीघ्र ही आपको अपने पास बुला लूँगा।

प्रसन्न हृदय से मुनियों ने बैकुण्ठ धाम के दर्शन किए और भगवान से बहुत कुछ प्राप्त किया। इसके बाद भगवान श्री हरि की परिक्रमा और साष्टाँग दण्डवत् कर भगवान से आज्ञा लेकर अपने धाम को वापिस लौट गए। जय-विजय पार्षद ब्रह्मशाप से ही भगवत धाम में ही श्री हीन हो गए थे। उनका सारा गर्व मलिन हो गया था। जब वे बैकुण्ठ धाम से गिरने लगे तो बैकुण्ठवासियों में हा-हाकार मच गया। भगवान ने उस समय दिति के गर्भ से कश्यप जी का उग्र तेज स्थित

था। उसमें उन पार्षदों को स्थापित कर दिया। उन दोनों असुरों के तेज से ही बैकुण्ठ वासियों का तेज फीका पड़ गया। भगवान की भी यही इच्छा थी।



९. हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष का जन्म

श्री मैत्रेयजी ने बताया कि भगवान कश्यप जी के यहाँ दिति ने दो जुड़वाँ बच्चों को जन्म दिया, जिनके उत्पन्न होते ही सब स्थानों पर लोग भयभीत हो गये। जगह-जगह अपशकुन और उल्कापात होने लगे। बिजली कड़कने लगी और आकाश में गहरा अंधेरा होने लगा। कुत्ते, गीदड़, सियार और उल्लुओं के भयानक स्वर गूंजने लगे।

कुछ ही समय में दोनों दैत्य बालक फौलाद की तरह कठोर शरीर वाले हो गए और भयानक उत्पात करने लगे। पहले बालक का नाम हिरण्यकशिपु और दूसरे बालक का नाम हिरण्याक्ष रखा गया। दोनों ने घोर तपस्या की। हिरण्यकशिपु ने ब्रह्माजी से वरदान माँगा कि मेरी मृत्यु न सुबह हो न शाम को हो। मैं न आकाश में मरूं न पृथ्वी पर। किसी भी प्रकार के शस्त्र से मेरी मृत्यु न हो। मैं न तो घर के बार मरूँ न घर के भीतर। ब्रह्माजी ने उसकी इच्छानुसार 'तथास्तु' कहकर वरदान दे दिया। अब वह बहुत ही उद्दण्ड हो गया। उसने

तीनों लोकों पर विजय प्राप्त कर ली।

एक दिन हिरण्याक्ष हाथ में गदा लेकर युद्ध का अवसर और स्थान ढूँढता हुआ स्वर्ग लोक में जा पहुँचा। महाबली दैत्य हिरण्याक्ष कई वर्षों तक जल में गदा लेकर घूमता रहा। एक दिन वह वरुण की राजधानी विभावपुरी में जा पहुँचा। वह वरुण से बोला— महाराज! मुझे युद्ध की भिक्षा प्रदान कीजिए। वरुण ने उसे समझा-बुझाकर कहा कि भगवान पुराण पुरुष के अतिरिक्त और अन्य कोई तुम्हें युद्ध में सन्तुष्ट नहीं कर सकता। आप वहाँ पहुँच जाओ। भगवान आपकी इच्छा अवश्य पूरी कर देंगे। यह सुनकर हिरण्याक्ष भगवान की खोज में घूमता रहा।

एक दिन बराह रूप धरकर भगवान पृथ्वी को जल से ऊपर ला रहे थे तब हिरण्याक्ष की उनसे मुठभेड़ हो गई। पानी के अन्दर दोनों में घमासान युद्ध होने लगा। बराह भगवान ने गदा तथा सुदर्शन चक्र से उसका वध कर दिया। हिरण्याक्ष को मार कर भगवान ने पृथ्वी को जल के ऊपर निश्चित स्थान पर स्थापित कर दिया। देवताओं का भय जाता रहा। सब देवताओं ने बराह भगवान की पूजा की। इसके बाद भगवान बराह अन्तर्धान हो गए।



१०. कर्दम जी की तपस्या और भगवान का वरदान

श्री मैत्रेयजी ने बताया कि स्वायम्भुव मनु के पुत्र प्रियव्रत और उत्तानपाद ने सातों द्वीपों का धर्मपूर्वक पालन किया। स्वायम्भुव ने अपनी पुत्री देवहुति का कर्दम प्रजापति के साथ विवाह कर दिया। देवहुति के योग लक्षण यमादि से सम्पन्न हुए थे। ब्रह्माजी ने कर्दम जी को आज्ञा दी कि— तुम सृष्टि के लिए सन्तानें उत्पन्न करो। यह सुनकर कर्दम जी तपस्या करने चले गए। उन्होंने दस हज़ार वर्ष तक तपस्या की। तपस्या से लौट कर आने पर भगवान ने कर्दम जी को दर्शन दिए और उनकी खूब प्रशंसा की। भगवान ने कर्दम जी से कहा— प्रियवर! तुम्हारे से मिलने के लिए महाराज स्वायम्भुव मनु अपनी पत्नी शतरूपा के साथ यहाँ आएँगे। उनकी एक कन्या श्याल लोचना जो गुणों से भरपूर है इस समय विवाह के योग्य है। तुम उस कन्या से विवाह कर लेना। वह तुम्हारी खूब सेवा करेगी। उससे तुम्हें नौ कन्याएँ प्राप्त होंगी। तुम्हारी वे पुत्रियाँ मरीचि आदि ऋषिगणों से विवाह करके पुत्र उत्पन्न करेंगी। भगवान ने कहा—महामुने! मैं भी अपने अशं रूप से तुम्हारे वीर्य द्वारा तुम्हारी पत्नी देवहुति के गर्भ से जन्म लेकर सांख्यशास्त्र की रचना करूँगा। इतना कहकर भगवान अन्तर्धान हो गए।

महाराजा स्वायम्भुव मनु महारानी शतरूपा के साथ

स्वर्णजड़ित रथ पर सवार होकर बिन्दु सरोवर पर पहुँचे। कर्दम जी ने उनका स्वागत किया तथा आदरपूर्वक उन्हें बैठने के लिए आसन प्रदान किया।



११. देवहुति के साथ कर्दम प्रजापति का विवाह

महाराजा स्वायम्भुव मनु ने कर्दम जी से कहा— यह मेरी पुत्री देवहुति है जो प्रियव्रत और उत्तानपाद की बहिन है। नारद जी के मुख से आपकी प्रशंसा सुनकर आपको अपना पति बनाने की इच्छा व्यक्त कर चुकी है। हे द्विजवर! मैं श्रद्धापूर्वक आपको अपनी पुत्री समर्पण करना चाहता हूँ। कर्दम जी ने कहा— मेरी एक शर्त है। यदि वह शर्त स्वीकार हो तो मुझे आपकी कन्या स्वीकार है। जब तक इसके सन्तान नहीं होगी तभी तक मैं गृहस्थ आश्रम में रहूँगा। इसके पश्चात् भगवान के द्वारा बताए गए सन्यास प्रधान हिंसा रहित शम-दमादि धर्मों को ही अधिक महत्त्व प्रदान करूँगा। स्वायम्भुव मनु और उनकी पुत्री देवहुति ने कर्दम जी की शर्त स्वीकार कर ली।

तब देवहुति का विवाह कर्दम जी के साथ कर दिया गया और इसके बाद महाराज स्वायम्भुव मनु रथ पर बैठकर बर्हिष्मती नगरी को प्रस्थान कर गए। जहाँ पर पृथ्वी को रसातल से पानी से ऊपर लाने के पश्चात्

बराह भगवान ने शरीर को कम्पाया था। उस समय शरीर के रोम झड़कर पृथ्वी पर गिर पड़े थे। वे रोम ही कुश और कास में बदल गए थे।



१२. कर्दम जी और देवहुति का विहार

श्री मैत्रेय जी ने बताया कि देवहुति अपने पति कर्दम जी की सेवा मे रत रहने लगी। ऐसा करने से वह बहुत कमज़ोर हो गई। कर्दम जी ने देवहुति से कहा कि मैं तुम्हारी सेवा से बड़ा प्रसन्न हूँ। इस सेवा के बदले में मैं तुम्हें दिव्य दृष्टि प्रदान करता हूँ। अपने पतिव्रत धर्म के पालन से ही तुम्हें दिव्य भोग प्राप्त हो गए हैं। तुम उन्हें भोग सकती हो।

देवहुति ने कर्दम जी से कहा— प्रभु! आपने जो प्रतिज्ञा की थी कि गर्भाधान होने तक मैं तुम्हारे साथ गृहस्थ सुख का उपभोग करूँगा, अतः उसकी पूर्ति होनी चाहिए। कर्दम जी ने देवहुति की इच्छा पूर्ति के लिए योग में स्थित होकर एक सुन्दर विमान की रचना की। उस विमान में सभी प्रकार की सामग्री थी। कर्दम जी ने कहा— प्रिये! आप बिन्दु सरोवर में स्नान करके विमान पर सवार हो जाओ। देवहुति को दासियों ने स्नान कराकर सुन्दर-सुन्दर आभूषणों तथा वस्त्रों से सुसज्जित कर विमान पर बैठा दिया। महायोगी कर्दम जी ने देवहुति के साथ सारा भूमण्डल तथा मेरूपर्वत की घाटियों में विहार

किया। फिर अपने आश्रम में लौट आए।

देवहुति को सन्तान प्राप्ति के लिए उत्सुक जानकर तथा भगवान के आदेश को स्मरण कर उन्होंने अपने स्वरूप को नौ विभागों में विभक्त कर लिया। कन्याओं की उत्पत्ति हेतु स्वयं एकाग्रचित से देव हुति के गर्भ से एक साथ नौ कन्याओं को उत्पन्न किया।

अब देवहुति ने सोचा कि पूर्व प्रतिज्ञा के अनुसार पतिदेव मनु को सन्यास ग्रहण कर वन में जाना चाहिए। तब उसको ज्ञान हुआ कि मैं भगवान की माया द्वारा ठगी गई हूँ जो इन जैसे मुक्तिदाता पति को पाकर भी मैंने संसार के बन्धन से छुटकारा पाने का प्रयत्न नहीं किया। उसी समय स्वायम्भुव मनु जी को भी हृदय में ज्ञान उत्पन्न हुआ।



१३. श्री कपिल देव जी का जन्म

श्री मैत्रेयजी ने बताया कि जब देवहुति ने ऐसी बात कही तब कर्दम जी को भगवान विष्णु का कथन स्मरण हो आया कि मेरे द्वारा भगवान विष्णु शीघ्र ही इस पृथ्वी पर पधारेंगे। श्री हरि देवहुति के गर्भ से अवतीर्ण होकर मेरा यश फैलाएँगे। बहुत दिन व्यतीत हो जाने पर भगवान श्री कृष्णा ने कर्दम जी के वीर्य से देवहुति के गर्भ से इस प्रकार प्रकट हुए जैसे लकड़ी से अग्नि प्रकट होती है। उसी समय सरस्वती नदी से घिरे हुए कर्दम जी

के आश्रम में मरीचि आदि मुनियों के साथ ब्रह्माजी पधारे।

ब्रह्मा जी ने कर्दम जी से कहा— तुम्हारी सुन्दर कन्याएँ इस सृष्टि को अनेक प्रकार से बढ़ाएँगी। आप मरीचि आदि मुनिवरों को अपनी कन्याओं के लिए उनके स्वभाव और रुचि के अनुसार चुन लो। अभिष्ट मनोरथ को पूर्ण करने वाले आदि पुरुष श्री नारायण ही अपनी योगमाया से कपिल रूप में भगवान अवतीर्ण हुए हैं। आप सिद्धगणों के स्वामी और संख्याचार्यों के भी माननीय होंगे। सब लोकों में अपनी कीर्ति का विस्तार करेंगे और कपिल मुनि के नाम से विख्यात होंगे।

ब्रह्माजी की आज्ञानुसार कर्दम ऋषि ने अपनी कला नाम की कन्या मरीचि ऋषि को, हविर्भू नाम की कन्या पुलस्य ऋषि को, श्रृद्धा नाम की कन्या अंगिरा ऋषि को, अनुसूइया नाम की कन्या अत्रि मुनि को, ख्याति नाम की कन्या भृगुजी को, साध्वी क्रिया नाम की कन्या क्रतु ऋषि को, गति नाम की कन्या पुलह ऋषि को, अरुन्धती नाम की कन्या वशिष्ठ मुनि को और शांति नाम की कन्या को अर्थवा ऋषि को सौंप दी। भगवान कपिल जी के कहने पर कर्दम जी परिक्रमा कर वन में चले गए। द्वेष रहित, सर्वत्र समबुद्धि और भगवतभक्ति से सम्पन्न होकर श्री कर्दम जी ने भगवान का परमपद प्राप्त कर लिया।



१४. देवहुति के प्रश्न, भगवान कपिल देव द्वारा भक्ति योग

श्री मैत्रेय जी ने बताया कि कर्दम जी के वन में चले जाने पर भगवान कपिल देव जी माता देवहुति को प्रसन्न करने के लिए कुछ दिन बिन्दुसार में ही रहे। देवहुति ने कहा— प्रभु! इन इन्द्रियों की विषय लालसा से मैं बहुत ऊब गई हूँ। इस देह-गेह आदि में जो मैं मेरापन का दुराग्रह है वह भी आपके कारण हुआ है। अतः मेरे इस मोह माया को दूर कीजिए।

कर्मेन्द्रिय एवं ज्ञानेन्द्रिय की जो सत्व मूर्ति श्री हरि के प्रति स्वाभाविक प्रवृत्ति है वहीं ईश्वर की अहैतुकी भक्ति है। यह मेरे से भी बढ़कर है क्योंकि जठरानल अग्नि जिस प्रकार खाए हुए अन्न को पचाती है उसी प्रकार यह भी कर्म संस्कारों के भण्डार रूप लिंग शरीर को तत्काल भस्म कर देती है। मेरी भक्ति न चाहने पर भी उन्हें परम पद की प्राप्ति करा देती है। भगवान के धाम में पहुँचने पर उन्हें ये सब प्रकार की विभूतियाँ स्वयं ही प्राप्त हो जाती हैं। इनका एक मात्र मैं ही प्रिय गुरु, मित्र, पुत्र, आत्मा, इष्टदेव और सुहृदय हूँ।

भक्तजन मेरे बैकुण्ठ धाम पहुँचकर किसी प्रकार भी इन दिव्य भोगों से वंचित नहीं होते और न ही उन्हें मेरा काल चक्र ही डस सकता है। दम्भ, हिंसा, क्रोध का भाव रखकर मुझे प्रेम करता है न ही भक्ति करता है, वह मेरा तामस भक्त हैं। जो मनुष्य ऐश्वर्य, यश और

विषय की कामना से मेरा भेद भाव से पूजन करता है वह राजस भक्त है, जो मनुष्य पापों का क्षय करने के लिए, परमात्मा को अर्पण करने के लिए पूजन करना कर्त्तव्य समझता है, वह सात्विक भक्त है। आत्मदर्शन ही व्यक्ति के मोक्ष का कारण होता है।



१५. भिन्न-भिन्न तत्त्वों की उत्पत्ति

श्री भगवान ने देवहुति से कहा— माताजी! अव्यक्त, त्रिगुणात्मक, नित्य और कार्य कारण रूप है तथा समस्त विशेष धर्मों का आश्रय है। इस प्रधान तत्व को ही प्रकृति कहते हैं। दस इन्द्रियाँ, चार अन्तकरण, पाँच तंमात्रा और पाँच महाभूत इन चौबीस तत्वों के समूह को ज्ञानी पुरुष प्रकृति का कार्य मानते हैं। आकाश, पृथ्वी, जल, वायु और तेज ये पंच महाभूत कहलाते हैं। गन्ध, रूप, स्पर्श, रस और शब्द ये पाँच तन्मात्र कहलाते हैं। रसना चक्षु, त्वचा, श्रोत्र, उपस्थ, पाद, पाणि, काक, नासिका और पायु ये दस इन्द्रियाँ और मन बुद्धि, चित्त और अहंकार इन चार के रूप में एक ही अन्तकरण अपनी संकल्प, चिन्ता, निश्चय और अभिमान रूप में चार प्रकार की वृत्तियों से लक्षित होता है। इस प्रकार तत्व ज्ञानी व्यक्तियों ने चौबीस, तत्त्वों की संख्या बताई है। इनके अतिरिक्त काल पच्चीसवां तत्व है। इस तरह भगवान अपनी माया के द्वारा सब व्यक्तियों के भीतर

रूप में और बाहर काल रूप में व्याप्त हैं। वे भगवान ही पच्चीसवां तत्त्व हैं।

सत्वगुणमय, ज्ञान, स्वच्छ और भगवान की उपलब्धि का स्थान रूप चित्त है। वही महातत्व कहलाता है और उसी को वासुदेव कहते हैं।

अध्यात्म में जिसे चित्त कहते हैं उसी को अधिभूत में महातत्व कहा जाता है। चित्त में अधिष्ठता क्षेत्रज्ञ और उपास्य देव वासुदेव हैं। इसी प्रकार अहंकार में अधिष्ठाता रुद्र और उपास्य देव संकर्षण हैं। उपास्य देव प्रद्युम्न है और बुद्धि अधिष्ठाता ब्रह्म तथा मन अधिष्ठाता चन्द्रमा एवं उपास्य देव अनिरुद्ध हैं। इन्द्रियों के अधिष्ठाता अनिरुद्ध कहलाते हैं।

जब अहंकार, महत्तत्व और पंचभूत ये सात तत्त्व आपस में न मिल सके, अलग ही अलग रह गए, तब संसार के आदिकरण श्री नारायण ने काल, अदृष्ट और सत्त्वादि गुणों के सहित उनमें प्रवेश किया। भगवान के प्रवेश से क्षुब्ध और आपस में मिले हुए उन तत्त्वों से एक जड़ अण्ड उत्पन्न हुआ। उस अण्ड से विराट पुरुष की अभिव्यक्ति हुई। जल में स्थित उस तेजमय अण्ड से उठकर उस विराट पुरुष ने पुनः उसमें प्रवेश किया तथा उसमें फिर कई प्रकार के छेद किए। पहले छिद्र में मुँह प्रकट हुआ। इस तरह उस विराट पुरुष के शरीर के प्रत्येक अंग की रचना हुई। इसके बाद विराट पुरुष का हृदय प्रकट हुआ। हृदय से मन का प्राकट्य हुआ। मन के बाद उसके अभिमानी ब्रह्मा प्रकट हुए। इसके बाद

अहंकार और उसके बाद उसका अभिमानी रुद्र देवता प्रकट हुए। रुद्र देवता का ही नाम शिव पड़ा।

इसके पश्चात चित्त और क्षेत्रज्ञ प्रकट हुए। समस्त देवता उत्पन्न होकर भी विराट पुरुष को उठाने में असमर्थ न हो सके। इसके बाद विराट पुरुष को उठाने के लिए क्रमशः फिर अपने उत्पत्ति स्थानों में प्रविष्ट होने पर भी विराट पुरुष उठा न सके। वे सब क्षेत्रज्ञ मिलकर भी परमात्मा के बिना उठाने में असमर्थ रहे। अन्त में भक्ति, वैराग्य और चित्त की एकाग्रता से प्रकट हुए अर्न्तात्मा स्वरूप क्षेत्रज्ञ से विराट पुरुष उठे।



१६. मनुष्य योनि को प्राप्त हुए जीव की गति का वर्णन

जब जीव मनुष्य योनि में जन्म लेता है तो पुरुष के वीर्य कण स्त्री के उदर में प्रवेश करते हैं। पहले दिन स्त्री के रज से मिलकर एक रूप कलल बनता है। पाँच दिन में यह बुदबुद रूप हो जाता है। दस दिन में बेर के बराबर कठिन हो जाता है। इसके बाद माँसपेशी अंडे के रूप में परिणित हो जाता है। एक महीने में सिर निकल आता है। दो माह में हाथ-पाँव अपना स्थान ग्रहण कर लेते हैं। तीसरे माह में नख, रोम, अस्थि, चर्म, स्त्री-पुरुष के चिन्ह और अन्य छिद्र उत्पन्न हो जाते हैं। चौथे माह में भूख-प्यास लगने लगती है। छठे माह में झिल्ली


सुख सागर
लक्ष्मी प्रकाशन, दिल्ली-6


सुख सागर
लक्ष्मी प्रकाशन, दिल्ली-6

सुख सागर



लक्ष्मी प्रकाशन, दिल्ली-6


सुख सागर
लक्ष्मी प्रकाशन, दिल्ली-6

से लिपटकर वह दाहिनी कोख में घूमने लगता है। माता के खाए हुए अन्न से उसकी सब धातुएँ पुष्ट होने लगती हैं। वह कोमल जीव तो होता ही है, गर्भ के भूखे कीड़े उसके अंग प्रत्यंग नोचते रहते हैं। क्लेश के कारण वह दुःखी रहता है। वह जीव माता के गर्भाशय में झिल्ली से लिपटा और आँतों से घिरा रहता है। उसका सिर पेट की ओर तथा पीठ और गर्दन कुण्डलाकार मुड़े रहते हैं। सातवें माह में ज्ञान शक्ति उत्पन्न होने लगती है। वह हाथ जोड़कर उस प्रभु की स्तुति करता रहता है जिसने माता के गर्भ में डाला है। जठराग्नि से पेट में संतप्त रहता है। दसवें माह में जीव गर्भ से अधोमुख बालक को प्रसवकाल की वायु बाहर आने के लिए धकेल देती है। नीचे सिर करके बड़े कष्ट से बाहर निकलता है। बाहर आने पर उसकी पूर्व स्मृति नष्ट हो जाती है। पृथ्वी पर माता के रुधिर और मूत्र में पड़ा हुआ बालक छटपटाता है। गर्भवास का सारा ज्ञान नष्ट हो जाता है। उसकी त्वचा कोमल होती है। उसे मच्छर, खटमल आदि काटते रहते हैं। रोने के सिवाय वह कुछ नहीं कर सकता।

इसी प्रकार बाल्य और पौगण्ड अवस्थाओं के दुखों को भोगता हुआ वह युवावस्था में प्रवेश करता है। उस समय इच्छित भोग प्राप्त नहीं होता तो वह शोकाकुल हो जाता है। अविद्या और कर्म के सूत्र में बँधा रहने के कारण तरह-तरह के कर्म करता रहता है, जिसमें बँध जाने के कारण बार-बार संसार चक्र में पड़ना होता है। पहले के समान फिर नारी की योनियों में रहना पड़ता

है। जिनके संग से लज्जा, बुद्धि, दया, सत्य, मन, क्षमा, यश और इन्द्रियों के गुण सब नष्ट हो जाते हैं। स्त्रियों के संग होने से मन विचलित हो जाता है। एक बार ब्रह्माजी भी अपनी पुत्री सरस्वती के रूप लावण्य से मोहित हो गए थे। मृग रूप होकर उसके पीछे-पीछे दौड़ने लगे थे। उन्हीं ब्रह्माजी ने मरीचि और कश्यपादि प्राणियों की सृष्टि रची। स्त्री रूपिणी माया तो बड़े-बड़े दिग्विजयी वीरों को पैरों से कुचल देती है। लिंग देह के द्वारा मनुष्य एक लोक से दूसरे लोक में जाता है। अपने कर्मों के कारण भोग भोगता है, फिर उसी के अनुसार उसकी मृत्यु होकर उसके साथ-साथ दूसरी योनि में जन्म लेता है। इसलिए मनुष्य को सदैव भगवान की भक्ति में रम कर जन्म मरण के चक्र से मुक्त होना आवयश्यक है।



चतुर्थ स्कन्ध

१. स्वायम्भुव मनु की कन्याओं का विवरण

श्री मैत्रेय जी ने बताया कि स्वायम्भुव मनु जी ने अपनी कन्या आकूति की शादी रुचि नामक प्रजापति के साथ पुत्रिका धर्म की अनुसार की। रुचि प्रजापति भगवान के अनन्य चिंतन के कारण ब्रह्म तेज से सम्पन्न थे। उन्होंने आकूति के गर्भ से पुरुष स्त्री का जोड़ा

उत्पन्न किया। पुरुष साक्षात् यज्ञस्व रूपधारी भगवान विष्णु स्वयं थे और स्त्री लक्ष्मी जी के अंशस्वरूप दक्षिणा थी। मनु अपनी पुत्री आकूति के परम तेजस्वी पुत्र को अपने घर ले आए क्योंकि मनु जी ने शादी करते समय कह दिया था कि आकूति का पहला बच्चा मैं घर ले आऊँगा।

मनु जी ने अपनी दूसरी पुत्री देवहुति की शादी कर्दम के साथ की और तीसरी पुत्री प्रसूति की शादी ब्रह्माजी के पुत्र दक्ष प्रजापति के साथ की। कर्दम जी की नौ पुत्रियों की शादियाँ नौ ऋषियों के साथ की गई। भगवान यज्ञ पुरुष ने दक्षिणा के साथ शादी की। दक्षिणा के बारह पुत्र हुए। उनके नाम-तोष, प्रतोष, संतोष, भद्र, शांति, इडविडा, इधम, कवि, विभु, स्वह, सुदेव और रोच थे। ये सब पुत्र ही स्वायम्भुव मनवन्तर में तुषित देवता कहलाए। उस मन्वन्तर में मरीचि आदि सप्त ऋषि हुए। भगवान यज्ञ ही देवताओं के अधीश्वर इन्द्र हुए।

कर्दम जी ने अपनी पुत्री कला को मरीचि ऋषि के साथ ब्याह दिया। उसके दो पुत्र कश्यप और पूर्णिमा नाम के उत्पन्न हुए और देवकुल्या नाम की एक पुत्री हुई। यह कन्या दूसरे जन्म में श्री हरि के चरणों के धोवन से देव नदी गंगा रूप में प्रकट हुई, अत्रि की स्त्री अनुसूया से दत्तात्रेय, दुर्वासा और चनुया तीन पुत्र उत्पन्न हुए।

ब्रह्माजी ने महर्षि अत्रि को सृष्टि रचने की आज्ञा दी। आज्ञा पाकर अत्रि जी ऋक्ष नाम के पर्वत पर गए।

वहाँ पर वे सौ वर्ष तक पानी पीकर एक ही पैर पर खड़े रहकर तपस्या में लीन हो गए। अत्रि जी का तेज उनके मस्तक से निकल कर तीनों लोकों को तपा रहा था। इस तप को देखकर तीनों देवता ब्रह्मा, विष्णु और महेश अत्रि जी के आश्रम पर गए। अत्रि जी ने उनसे पूछा— जिसको मैंने बुलाया था वह आप तीनों मे से कौन है? मैंने जगदीश्वर का ध्यान किया था। आप में से जगदीश्वर कौन है? हम तीनों ही जगदीश्वर हैं। उन तीनों ने उत्तर दिया। इसी कारण से हम तीनों आपकी सेवा में उपस्थित हुए हैं।

ब्रह्माजी के अंश से चन्द्रमा, विष्णु जी के अंश से दत्तात्रेय और महादेव जी के अंश से दुर्वासा ऋषि अत्रि जी के यहाँ पुत्र रूप में प्रकट हुए। अंगिरा की स्त्री श्रद्धा से चार पुत्रियाँ और दो पुत्र हुए। पुत्रों के नाम उतथ्य और बृहस्पति थे। पुत्रियों के नाम सिनीवाली, कुहू, राका और अनुमति थे।

पुलस्त्य ऋषि की पत्नी हविर्भू के गर्भ से महर्षि अगस्त्य और विश्रवा नाम के दो पुत्र उत्पन्न हुए। दूसरे जन्म में अगस्त्य जठराग्नि हुए। विश्रवा के दो पत्नियाँ थीं। पहली पत्नी इड़विडा थी, जिससे यक्षराज कुबेर का जन्म हुआ। दूसरी पत्नी का नाम कैकसी था जिसने रावण कुम्भकर्ण और विभीषण को जन्म दिया।

क्रतु ऋषि की पत्नी क्रिया से देदीप्यमान बालखिल्यादि साठ हज़ार ऋषियों का जन्म हुआ था। पुलह ऋषि की पत्नी सध्वगति ने तीन पुत्र कर्मश्रेष्ठ,

वरीमान और सहिष्णु को जन्म दिया।

वशिष्ठ जी की पत्नी अरुन्धती ने सात पुत्र चित्रकेतु, सुरोचि, विरजा, मिश्र, उल्वण, वसुपृध्यान, द्युमान को जन्म दिया।

अथर्वा मुनि की पत्नी चिति ने दधीचि नाम के तपोनिष्ठ पुत्र को जन्म दिया। दधीचि का दूसरा नाम अश्वशिरा भी था।



२. भृगु के वंश का वर्णन

भृगु जी की पत्नी ख्याति ने धाता और विधाता नाम के दो पुत्रों और भगवत्परायण नाम की एक पुत्री को जन्म दिया। धाता का विवाह और विधाता का विवाह मेरु ऋषि की कन्याओं आयति और नियति के साथ सम्पन्न हुआ। इनके मृकण्ड और प्राण नाम के दो पुत्र हुए। मृकण्ड के मार्कण्डेय और प्राण के वेदशिरा नाम के एक-एक पुत्र का जन्म हुआ। भृगुऋषि के कवि नाम का एक पुत्र और भी था। इसके यहाँ भगवान शुक्राचार्य का जन्म हुआ।

ब्रह्माजी के पुत्र दक्ष प्रजापति ने मनु की पुत्री प्रसूति से विवाह किया। प्रसूति ने सोलह पुत्रियों को जन्म दिया। इन सोलह कन्याओं में से तेरह पुत्रियों का विवाह धर्म के साथ हुआ, एक पुत्री का विवाह अग्नि के साथ, एक कन्या का विवाह समस्थ मित्रगण के साथ हुआ

तथा अन्तिम कन्या सती का विवाह भगवान शंकर के साथ हुआ था। धर्म की तेरह पत्नियों के नाम तुष्टि, शांति, दया, मैत्री, श्रद्धा, बुद्धि तितिक्षा, मेघा, उन्नति, क्रिया, पुष्टि, ह्री और मूर्ति थे। तुष्टि ने मोह, शांति ने सुख दया ने अभय, मैत्री ने प्रसाद, श्रद्धा ने शुभ, बुद्धि ने अर्थ, तितिक्ष ने क्षेम, मेघा ने स्मृति, उन्नति ने दर्प, क्रिया ने योग पुष्टि ने अहंकार, ह्री ने प्रश्रय और मूर्ति ने समस्त गुणों की खान नर नारायण ऋषि को जन्म दिया। नर नारायण के उत्पन्न होने से सृष्टि में प्रसन्नता की लहर दौड़ गई।

भगवान श्री हरि के अंश से उत्पन्न नर-नारायण पृथ्वी का भार कम करने के लिए यदुकुल में श्री कृष्ण के रूप में अवतीर्ण हुए और उन्हीं के समान श्याम वर्ण गुरु तिलक अर्जुन के रूप में उत्पन्न हुए। भगवान शंकर का विवाह सती ने साथ हुआ था परन्तु सती ने उन्हें कोई सन्तान प्राप्त नहीं हुई। सती ने युवावस्था में ही क्रोधवश योग के द्वारा अपने पिता दक्ष के यज्ञ में योगाग्नि द्वारा अपना शरीर भस्म कर प्राण त्याग दिए थे।



३. भगवान शिव जी और दक्ष का मन मुटाव

श्री मैत्रेय जी ने बताया कि एक बार प्रजापतियों ने मिलकर यज्ञ किया। उस यज्ञ में दक्ष स्वयं उपस्थित थे।

ब्रह्मा जी और शिव जी के अतिरिक्त सभी देवगणों ने खड़े होकर दक्ष का सम्मान किया। दक्ष को यह देखकर बड़ा क्रोध आया कि शिव जी ने अपने आसन से खड़े होकर उनका स्वागत नहीं किया। वह क्रोध में भर कर बोले कि— मैं एक शिष्टाचार की बात बताता हूँ कि यह निर्लज्ज शिव समस्त लोक पालों की कीर्ति को धूल में मिला रहा है। मैंने ब्रह्माजी के कहने पर भूतों के स्वामी आचरण रहित और दुष्ट प्रकृति वाले को अपनी सीधी-सादी बेटी सती का विवाह इसके साथ कर दिया।

भगवान शिव ने दक्ष की ऐसी अपमान जनक वाणी को सुनकर दक्ष को श्राप देकर उस यज्ञ शाला से उठकर चले गए। इस यज्ञ में श्री हरि ही उपास्यदेव थे। यह यज्ञ एक हज़ार वर्ष में पूरा होने वाला था परन्तु भगवान शिव के चले जाने से उसी समय सब उपस्थित जन अपने-अपने धाम को चले गए। यज्ञ चालू नहीं रह सका।

कुछ समय के बाद ब्रह्माजी ने दक्ष को सब प्रजापतियों का अधिपति बना दिया। दक्ष ने बृहस्पतिसव नामक यज्ञ का आयोजन किया। उस यज्ञ में सम्पूर्ण देवता अपनी-अपनी पत्नियों के साथ पधारे। परन्तु दक्ष ने इस यज्ञ में भगवान शिव को निमंत्रित नहीं किया और न उस यज्ञ में उनका कोई आसन ही रखा। सती को ज्ञात हुआ कि पिता श्री दक्ष ने यज्ञ का आयोजन किया है और देखा कि सब देवता अपनी पत्नियों सहित उस यज्ञ में सम्मिलित होने जा रहे हैं तो उन्होंने अपने पति भगवान शंकर से कहा कि— देखो मेरे पिता ने

यज्ञ का आयोजन किया है। मेरी भी इच्छा है कि मैं भी आपके साथ इस यज्ञ में शामिल होऊँ। इससे वहाँ मैं अपनी बहनों और माता से भी मिल लूँगी।



४. सती जी का पिता के यहाँ यज्ञ में जाना

भगवान शिव जी ने कहा कि बिना आमंत्रित यज्ञ में शामिल होना ठीक नहीं है। इसलिए मैं नहीं जा सकता। तुम बिना बुलाए जाना चाहती हो तो जाओ। परन्तु बिना आमंत्रित किए जाने पर मृत्यु का कारण भी बन सकता है। भगवान शिव ने सती को बहुत समझाया परन्तु सती नहीं मानीं।

शिव जी की इच्छा के बिना ही सती पिता के घर जाने को तैयार हो गईं। इस पर भगवान शंकर ने अपने गणों को उनके साथ रवाना कर दिया। सती जी जब यज्ञशाला में पहुँचीं तो किसी ने भी उनका स्वागत नहीं किया। केवल उनकी माता और बहनों ने ही सती का स्वागत किया। सती ने देखा कि यज्ञशाला में उनके पति महादेव जी का कोई स्थान भी नहीं रखा गया है तो उन्हें बहुत क्रोध आया। सती ने मौन धारण कर उत्तर दिशा में भूमि पर बैठकर आचमन कर पीले वस्त्र ओढ़ लिए। अन्त में वे अपने स्थान से उठीं और यज्ञ की वेदी में कूदकर अपने प्राण त्याग दिए।

इसकी सूचना जब महादेव जी को मिली तब उन्होंने अपनी एक जटा उखाड़ कर पृथ्वी पर पटकर कर मारी। उसी समय एक भयंकर पुरुष प्रकट हुआ जिसका नाम वीरभद्र था। महादेव जी ने वीरभद्र को आदेश दिया कि दक्ष के यहाँ जाकर यज्ञ को नष्ट कर डालो। वीरभद्र ने अन्यगणों को साथ लेकर यज्ञ को नष्ट कर डाला एवं दक्ष के सिर को धड़ से अलग कर दिया और सिर को दक्षिण दिशा में अग्नि में डाल दिया। वीरभद्र ने किसी की दाढ़ी उखाड़ दी तो किसी के हाथ, पैर व आँखें नष्ट कर डालीं। कुल लोग जान बचाकर भाग गए। इसके पश्चात् सब गण कैलाश पर्वत पर लौट गए।



५. ब्रह्मादि देवताओं का कैलाश पर्वत जाकर शिव जी को मनाना

ब्रह्माजी समस्त देवताओं को साथ लेकर कैलाश पर्वत पर शिवजी को मनाने के लिए गए। सबने मिलकर भगवान शिव की प्रार्थना की। ब्रह्माजी ने शिव जी से दक्ष के यज्ञ को पूर्ण करने की प्रार्थना की। वे बोले— आप ही सबके मूल हैं। आप ही सब यज्ञों को पूर्ण करने वाले हैं। यज्ञ का भाग प्राप्त करने का आपको पूरा अधिकार है। अतः आप इस अपूर्ण यज्ञ का पुनःरुद्धार करने की कृपा करें। ऐसा कीजिए कि यजमान दक्ष फिर से जीवित हो जाएँ, भग देवता को

नेत्र मिल जाएँ, भृगु को दाढ़ी मूँछ उत्पन्न हो जाए और पूषा के दाँत निकल आएँ। हे महादेव! अस्त्र शस्त्रों एवं पत्थरों की बौछार से देवगण और ऋत्विज घायल हो गए हैं, वे सब ठीक हो जाएँ। यज्ञ की समाप्ति पर जो शेष बचेगा वह सब आपका ही भाग होगा। उस भाग को ग्रहण करने पर ही यज्ञ सम्पूर्ण माना जाएगा।

ब्रह्माजी की प्रार्थना करने पर भगवान शंकर प्रसन्न हो गए। उन्होंने यज्ञ को शुरू करने का कार्य प्रारम्भ कर दिया। अष्टभुजाधारी भगवान वहाँ पधारे। भगवान को सब देवताओं ने झुककर प्रणाम किया। भगवान के तेज के आगे सबकी कीर्ति मन्द पड़ गई। देवगणों और ऋत्विजों के जो अंग घायल हो गए थे सब स्वस्थ हो गए। दक्ष ने उत्तम पात्रों में पूजन की सामग्री भर कर भगवान का पूजन किया। भगवान ने आशीर्वाद प्रदान कर कहा— मैं ही शंकर, विष्णु और ब्रह्मा हूँ। इतना कहकर भगवान अपने धाम को चले गए।

यज्ञ की समाप्ति पर सब देवता और ऋषि अपने-अपने स्थानों को चले गए। दूसरे जन्म में सती ने हिमाचल की स्त्री मैना के गर्भ से पार्वती के रूप में जन्म लिया। उन्हें अपने पूर्वजन्म का पूरा ज्ञान था। इस जन्म में भी अम्बिका देवी के एक मात्र आश्रम से भगवान शंकर को ही वरण किया।



६. अधर्म का वंश

ब्रह्माजी के एक पुत्र का नाम अधर्म था। उसकी पत्नी का नाम मृषा था। उसके एक पुत्र हुआ जिसका नाम दम्भ था। उसके एक पुत्री भी थी जिसका नाम माया था। दम्भ और माया से लोभ और निकृति (शठता) का जन्म हुआ। उनसे क्रोध और हँसी तथा कलि (कलह) और उसकी बहिन दुरुक्ति (गाली) उत्पन्न हुई। दुरुक्ति से भय और मृत्यु उत्पन्न हुए तथा दोनों के संयोग से यातना और निरथर (नरक) का जोड़ा उत्पन्न हुआ। अधर्म का यह वंश प्रलय का कारण बना।



७. ध्रुव का जन्म व विवरण

स्वायम्भुव व मनु और महारानी शतरूपा के प्रियव्रत और उत्तानपाद नाम के दो पुत्र थे। उत्तानपाद की दो पत्नियाँ थीं जिनके नाम सुनीति और सुरुचि था। सुरुचि राजा की प्रिय पत्नी थी। सुनीति के पुत्र का नाम ध्रुव था। एक दिन राजा उत्तानपाद की गोदी में सुरुचि का पुत्र उत्तम खेल रहा था। उसी समय सुनीति का पुत्र ध्रुव भी वहाँ आ गया। वह भी अपने पिता उत्तानपाद की गोदी में बैठकर खेलना चाहता था परन्तु सुरुचि ने ध्रुव से कहा— बच्चू! तू राज सिंहासन पर बैठने का अधिकारी नहीं है। यदि तू पिता की गोद और राज सिंहासन की इच्छा रखता हो तो वन में जाकर तपस्या करके भगवान

नारायण को प्रसन्न कर। ध्रुव को फटकार कर सुरुचि ने उसे उसकी माता सुनीति के पास भेज दिया। वह रोता हुआ अपनी माता के पास पहुँचा। माता सुनीति ने बालक ध्रुव को अपनी गोद में बैठाकर चुप कराया और कहा— तू श्री हरि के चरणों की आराधना कर। उन्हीं की आराधना करने से तुम्हारे दादा श्री ब्रह्माजी को सर्वश्रेष्ठ पद प्राप्त हुआ था।

कुछ दिन बाद नारद जी वहाँ आए और उन्होंने ध्रुव को भक्ति भाव का ज्ञान देकर समझाया कि 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय नमः' का जप करो। इससे तुम्हारा कल्याण होगा। ध्रुव ने यमुना नदी के किनारे वट वृक्ष के नीचे बैठकर नारद जी द्वारा बताए गए मंत्र 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय नमः' का जाप करना प्रारम्भ कर दिया। इसके कुछ दिन बाद उसने एक पैर पर खड़े रहकर उस मंत्र का जाप किया। इसके बाद फल, फूल, अन्न जल का परित्याग करके घोर तपस्या में लीन हो गया।

बालक ध्रुव की घोर तपस्या से प्रसन्न होकर भगवान श्री हरि ने उसे प्रत्यक्ष दर्शन दिए। भगवान श्री हरि ने ध्रुव को वरदान दिया कि तुम्हें सप्तऋषियों के लोक से भी ऊपर ध्रुवलोक का स्थान प्राप्त होगा। तुम छत्तीस हज़ार वर्ष तक राज्य करने के बाद उस लोक को चले जाओगे। यह कहकर भगवान श्री हरि अन्तर्धान हो गए। ध्रुव तपस्या समाप्त कर घर लौट आए। ध्रुव को घर आया देखकर उत्तानपाद बहुत खुश हुए तथा उसे राज

भवन के अन्दर ले गए। इसके बाद राजा उत्तानपाद ध्रुव को राज्य सौंपकर स्वयं वन में तपस्या करने चले गए।



८. उत्तम का मारा जाना ध्रुव का यक्षों के साथ युद्ध

ध्रुव का विवाह शिशुकुमार की पुत्री भ्रमि के साथ सम्पन्न हुआ। उनके कल्प और वत्सर नाम के दो पुत्र उत्पन्न हुए। ध्रुव की दूसरी पत्नी वायु थी जो इला की पुत्री थी। इला से उल्कल नाम का पुत्र और रत्न नाम की पुत्री हुई। उत्तम शिकार खेलने के लिए हिमाचल पर्वत पर गया। वहाँ उसको यक्षों ने मार डाला। कुछ समय बाद उसकी माता भी परलोक सिधार गई। भाई उत्तम का बदला लेने के लिए ध्रुव हिमाचल की घाटी में यक्षों की नगरी अलकापुरी गया। ध्रुव ने वहाँ पहुँचकर शंखनाद किया। यक्ष शंख की आवाज़ सुनकर हाथों में हथियार धारण कर आए और ध्रुव पर आक्रमण कर दिया। यक्षों की संख्या एक लाख तीस हज़ार थी। यक्षों ने ध्रुव पर पंखदार बाणों से आक्रमण कर दिया। उन बाणों से ध्रुव ढक गया। वह अपनी माया से उन बाणों से बाहर निकल आया। इसके बाद ध्रुव ने यक्षों पर भयंकर बाणों से आक्रमण कर दिया। इससे यक्ष सेना मारी गई और जो बचे वे डर कर भाग गए।

ध्रुव अलकापुरी का निरीक्षण करने को गए। पुरी

के अन्दर पहुँचने से पहले ही यक्षों ने उन पर खून, कफ, पीव, विष्ठा आदि की वर्षा कर दुस्तार माया फैला दी। ध्रुव द्वारा नारायण अस्त्र को अपने धनुष पर चढ़ाते ही यक्षों की माया का प्रभाव नष्ट हो गया। स्वायम्भुव मनु ध्रुव को युद्ध में देखकर और यक्षों को मरते देखकर वहाँ आए और अपने पौत्र ध्रुव को समझाया— बेटा! यक्ष कुबेर के अनुचरों ने तुम्हारे भाई उत्तम को नहीं मारा है। तुम लड़ाई बन्द कर दो। तुम भगवान की भक्ति पर ध्यान लगाओ। तुमने यक्षों का वध करके भगवान शंकर के सखा कुबेर का बहुत बड़ा अपराध किया है। जब तक महापुरुषों का तेज हमारे कुल को आक्रान्त न कर ले उससे पहले ही विनम्र भाषण और विनय के द्वारा शीघ्र ही उन्हें प्रसन्न कर लेना चाहिए और कुबेर से क्षमा याचना कर लेनी चाहिए।

स्वायम्भुव मनु के समझाने पर उनके पौत्र ध्रुव का क्रोध शान्त हो गया। ध्रुव कुबेर के पास गए और हाथ जोड़कर खड़े हो गए। कुबेर ने ध्रुव से कहा— तुमने अपने दादाजी का कहना मानकर दुस्त्यज वैर त्याग दिया। मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हूँ। अब तुम जाओ और समस्त जीवों पर समदृष्टि रखकर सर्वभूतात्मा श्री हरि का पूजन करो। कुबेर ने ध्रुव को आशीर्वाद देकर कहा कि— कुछ माँगो। ध्रुव ने उनसे कहा कि— मुझे श्री हरि की अखण्ड स्मृति बनी रहे, जिससे मनुष्य सहज ही में इस दुस्तर संसार रूपी सागर से पार हो जाता है। कुबेर ने

उन्हें भागवत स्मृति प्रदान की और अन्तर्धान हो गए।

ध्रुव ने ३६,००० वर्ष तक राज्य किया और फिर अपने पुत्र उत्कल को राज्य सौंपकर बद्रीकाश्रम चले गए। वहाँ उन्होंने श्री हरि की तन मन से भक्ति कर भगवान को प्रसन्न करके भगवत् स्मृति प्राप्त की। भगवान के पार्षद विमान लेकर आए और ध्रुव को उसमें बैठाकर ध्रुवलोक को चले गए।



ए. ध्रुव वंश का वर्णन, राजा अंग का चरित्र

ध्रुव के वन में चले जाने के पश्चात् उनके पुत्र उत्कल ने राज सिंहासन को अस्वीकार कर दिया। इस पर कुल के बुजुर्गों ने तथा मंत्रियों ने उनके छोटे भाई भ्रमिपुत्र वत्सर को राज सिंहासन सौंपा। वत्सर की पत्नी स्ववींथि ने पुष्पार्ण, तिग्मकेतु, इष, ऊर्जा, वसु और जय नामक छः पुत्रों को जन्म दिया। पुष्याण के प्रभा और दोषा नाम की दो पत्नियाँ थीं। प्रभा ने प्रातः, मध्यन्दिन और सायं नामक तीन पुत्रों को जन्म दिया। दोषा ने प्रमोद, निशीय और व्युष्ट नामक तीन पुत्रों को जन्म दिया। व्युष्ट की पत्नी पुष्करिणी ने सर्वतेजा नामक पुत्र को जन्म दिया। सर्वतेजा की पत्नी आकूति ने चक्षु नामक पुत्र को जन्म दिया जो चाक्षुष मन्वन्तर में मनु हुआ। चक्षु मनु की पत्नी नड्वला ने पुरु, कुत्स, त्रित,

द्युम्न, सत्यवान, ऋतु, व्रत, अग्निष्टोग, अतिरात्र, प्रद्युम्न, शिवी और उल्मुक नामक बारह पुत्रों को जन्म दिया। उल्मुक की पत्नी पुष्करणी ने अंग, सुमना, ख्याति, क्रतु, अंगिरा और गया नामक छः पुत्रों को जन्म दिया।

अंग की स्त्री सुनीथा ने क्रूरकर्मा वेन को जन्म दिया। वेन की दुष्टता से उद्विग्न होकर राजर्षि अंग नगर छोड़ कर वन में चले गए। कुछ समय पश्चात् वेन की मृत्यु हो गई। वेन की मृत्यु के पश्चात् कोई राजा न रहा। लुटेरों ने कोई राजा न होने के कारण प्रजा को कष्ट देना प्रारम्भ कर दिया। यह देखकर मंत्रियों ने वेन की दाहिनी भुजा का मन्थन किया जिससे भगवान विष्णु के अंशावतार पृथु प्रकट हुए।

१०. राजा वेन की कथा

श्री मैत्रेयजी ने बताया कि राजा अंग के वन में चले जाने से पृथ्वी की रक्षा करने वाला कोई न रहा। मंत्रियों की सहमति न होने पर भी वेन को राजा बनाया गया। वेन ने ढिंढोरा पिटवाकर सारे धर्म कर्म बन्द करवा दिए। उसने घोषण करवा दी कि कोई यज्ञ, हवन, दान न करे। मुनियों ने राजा वेन का समझाया कि राज्य में द्विज यज्ञों का अनुष्ठान करेंगे तब ही पूजा से प्रसन्न होकर भगवान के अंश देवता आपको फल प्रदान करेंगे। आपको यज्ञादि धर्मानुष्ठान बन्द करवाकर देवताओं का तिरस्कार नहीं करना चाहिए।

राजा वेन ने उत्तर दिया कि राजा सर्वदेयमय् होता है और देवता उसके अंश मात्र हैं। इसलिए द्विजों तुम मत्सरता छोड़कर अपने कार्यों द्वारा मेरा ही पूजन करो। मुझे ही बलि समर्पण करो। मेरे अतिरिक्त कोई भी अग्र पूजा का अधिकारी नहीं हो सकता। इस तरह के वेन के अत्याचारों से दुःखी होकर कुछ लोगों ने मिलकर उसके जीवन का अन्त कर दिया। उन्होंने सोचा कि यह जीवित रहेगा तो संसार को अवश्य भस्म कर डालेगा।

वेन की माता सुनीथा मंत्र आदि के बल से अपने मृत पुत्र की रक्षा करने लगी। वेन की मृत्यु हो जाने से चोर, डाकू, लुटेरों की संख्या बढ़ती चली गई। राज्य मे अशान्ति फैल गई। प्रजाजन कहने लगे कि राजर्षि का वंश नष्ट नहीं होना चाहिए। इस कारण ऋषियों ने मृत राजा वेन की जांघ को बड़े जोर से मथा। उसमें से एक बौना पुरुष प्रकट हुआ। वह कौए के समान काला था और भुजाएँ बहुत छोटी थीं। उसके जबड़े बहुत बड़े थे। वह बोला— मैं क्या करूँ ? ऋषियों ने कहा— निषाद बैठ जाओ। इससे वह निषाद कहलाया। जन्म लेते ही उस निषाद ने राजा वेन के पापों को अपने ऊपर ले लिया। उसके वंशधर निषाद की लूट मार व हिंसा से रत रहने लगे। वे गाँवों व नगरों में टिक कर नहीं रहते थे। वे वन और पहाड़ों में रहने लगे।



११. महाराजा पृथु का जन्म और राज्याभिषेक

पुत्र विहीन राजा वेन की भुजाओं का मन्थन ब्राह्मणों ने किया। मन्थन करने से एक स्त्री पुरुष का जोड़ा प्रकट हुआ। भगवान विष्णु विश्वपालिनी कला से प्रकट हुए। उस पुरुष का नाम पृथु रखा गया। भगवान की सेवा में नित्य रहने वाली सहचरी श्री लक्ष्मी के रूप में अर्चि प्रकट हुई। ब्रह्माजी देवताओं और देवश्वरों के साथ वहाँ पधारे। उन्होंने पृथु के दाहिने हाथ में भगवान विष्णु की हस्त रेखाएँ और उनके चरणों में कमल का चिन्ह देखा। पृथु के हाथ में चक्र का चिन्ह देखकर पृथु को श्री हरि का अंश समझा। सबने मिलकर पृथु का राज्याभिषेक किया।

कुबेर ने अपना स्वर्ण का सिंहासन प्रदान किया। वरुण ने श्वेत छत्र, वायु ने दो चँवर, धर्म ने कीर्तिमय माला, इन्द्र ने मुकुट, यम ने दमन करने वाला दण्ड, सरस्वती ने हार, ब्रह्मा ने कवच, विष्णु भगवान ने सुदर्शन चक्र, रुद्र ने दस चक्रदार तलवार, लक्ष्मी जी ने अविचल सम्पत्ति, त्वष्टा ने सुन्दर रथ, चन्द्रमा ने अमृतमय अश्व, अम्बिका देवी ने ढाल, पृथ्वी ने अभीष्ट स्थान तक पहुँचाने वाली पादुकाएँ, सूर्य ने बाण, अग्नि ने बकरों और गायों के सींगों का धनुष, सिद्ध-गन्धर्वादि ने नाचने-गाने बजाने वाली और अन्तर्धान हो जाने वाली शक्तियाँ, समुद्र ने शंख आदि सभी ने कुछ न कुछ भेंट

में दिया। राजा पृथु ने कहा कि आप लोगों को मेरी स्तुति नहीं करनी चाहिए, क्योंकि आप लोग किन गुणों को लेकर मेरी स्तुति करोगे?



१२. पृथ्वी द्वारा पृथु की स्तुति एवं पृथ्वी दोहन

जब राजा पृथु का राज्याभिषेक हुआ उस समय पृथ्वी अन्नहीन हो गई थी। भूख के कारण प्रजा जनों का शरीर सूख कर काँटे के समान हो गया था। महाराज पृथु ने सोचा कि पृथ्वी ने औषधियों और अग्नि को अपने अन्दर छिपा लिया है। ऐसा विचार पैदा होते ही महाराज पृथु ने धनुष बाण से पृथ्वी को लक्ष्य बनाया। यह देखकर पृथ्वी गाय का रूप धारण कर भागने लगी। फिर पृथ्वी लौटकर राजा पृथु के पास पहुँची और बोली— आप मुझे क्यों मारना चाहते हो? आप तो धर्मज्ञ माने जाते हैं फिर अबला स्त्री का वध क्यों करना चाहते हो? एक बार तो आपने मेरा उद्धार करके धराधर नाम रखा था। हे स्वामी! आप अपना क्रोध शान्त कीजिए। मैं हाथ जोड़ कर आपसे प्रार्थना करती हूँ कि जो औषधियाँ मैंने छुपा ली हैं उनको पूर्वाचार्यों के बताए हुए उपाय से आप औषधियों को निकाल सकते हैं। आप मेरे योग्य बछड़ा, दोहन पात्र और दुहने वाले की व्यवस्था करने की कृपा करें। उस बछड़े को स्नेह पूर्वक

मेरे थनों में लगाकर दूध में आपको अभिष्ट वस्तुएँ प्राप्त हो जाएँगी।

महाराज पृथु ने स्वायम्भुव मनु को बछड़ा बनाकर अपने हाथों से ही समस्त धान्यों को दुह लिया। ऋषियों ने बृहस्पति जी को बछड़ा बनाकर इन्द्रिय (बाणी, मन और श्रोत) रूपी पात्र में पृथ्वी देवी से वेदरूपी पवित्र दूध को दुह लिया। देवताओं ने इन्द्र को बछड़ा बनाकर स्वर्णमय पात्र में अमृत, वीर्य और शारीरिक बल रूपी दूध दुह लिया। गन्धर्व और अप्सराओं ने विश्वावसु को बछड़ा बनाकर कमलरूपी पात्र में संगीत और सौन्दर्य रूपी दूध दुह लिया। दैत्य और दानवों ने प्रहलाद जी को वस्त रूपी बछड़ा बनकार लोहे के पात्र में शराब (मदिरा) और आसव (ताड़ी) रूपी दूध प्राप्त कर लिया। पशुओं, कीट पतंगों, वृक्षों और पहाड़ों ने अपने-अपने बछड़े बनाकर पृथ्वी को दूध रूप में दुह लिया। यक्ष, राक्षस और भूत पिशाच आदि ने भूतनाथ शिव को बछड़ा बनाकर मुख रूपी पात्र में विष रूपी दूध को दुहा।

महाराज पृथु से पहले इस पृथ्वी पर ग्रामादि तथा बस्तियाँ नहीं थी। लोग अपनी सुविधा के अनुसार बेखटके इधर-उधर रहने लगते थे। महाराजा पृथु पृथ्वी को अपनी पुत्री के समान प्रेम करने लगे थे। उन्होंने अपने धनुष की नोंक से पर्वतों को तोड़ कर पृथ्वी को समतल बनाया। उन्होंने अनेकों गाँव, कस्बे, नगर, दुर्ग, अहिरों की बस्ती पहाड़ों की तलहटी में बसाए।

१३. महाराज पृथु का अश्वमेघ यज्ञ

महाराजा पृथु ने अश्वमेघ यज्ञ करने की तैयारी प्रारम्भ की। सभी देवतागण उपस्थित हो गए। इन्द्र ने सोचा कि राजा पृथु इस यज्ञ के द्वारा ऊँची पदवी प्राप्त कर लेगा। इस कारण इन्द्र ने यज्ञ का घोड़े चुराने हेतु कपटी रूप से पाखण्ड का वेष धारण किया। इन्द्र घोड़े को चुरा कर आकाश मार्ग से जाने लगे तो ऋषि अत्रि की दृष्टि उन पर पड़ गई। अत्रि जी ने राजा पृथु को बताया कि इन्द्र घोड़ा चुराकर ले जा रहे हैं। पृथु ने अपने महारथी पुत्र को इन्द्र को मारकर घोड़ों को छुड़ाकर लाने के लिए भेजा। उसका महारथी पुत्र इन्द्र पर आक्रमण किए बिना ही वापिस आ गया। यह देखकर ब्रह्माजी ने पृथु को यज्ञ न करने के लिए समझाया। इससे राजा पृथु ने यज्ञ करने का विचार छोड़ दिया और इन्द्र के साथ संधि कर ली। राजा पृथु ने श्रद्धापूर्वक द्विजों को दक्षिणा देकर विदा किया तथा पितरों देवताओं, ऋषियों एवं मनुष्यों को भी दान दक्षिणा देकर विदा किया।



१४. पृथु की यज्ञशाला में श्री विष्णु भगवान का प्रादुर्भाव

यज्ञ के उपभोग्यता यज्ञेश्वर भगवान विष्णु को यह देखकर बड़ा संतोष हुआ कि इन्द्र और राजा पृथु में

सन्धि हो गई है। वह इन्द्र को लेकर राजा पृथु के यहाँ पधारे। उन्होंने राजा पृथु से कहा— तुम सुख-दुःख को समान समझकर उत्तम, मध्यम और अधम मनुष्यों में समान भावना रखकर तथा मन और इन्द्रियों को जीत कर मंत्रियों और समस्त सरकारी मनुष्यों की सहायता से सम्पूर्ण लोकों की रक्षा करो। राजा का हित प्रजा के पालन में ही होता है। इसी कारण से परलोक में राजा को प्रजा के पुण्य का छटा भाग प्राप्त होता है। इसलिए तुम न्यायपूर्वक पृथ्वी पर राज्य करते रहो। इससे प्रजा में प्रेम की भावना बढ़ेगी। कुछ समय पश्चात् तुम्हें यहीं पर सनकादि सिद्धों के दर्शन प्राप्त होंगे। तुमने अपने गुणों और स्वभाव से मुझे अपने वश में कर लिया है, इसलिए तुम इच्छानुसार वरदान माँगो। तत्काल देवराज इन्द्र अपने कर्मों से लज्जित होकर राजा पृथु के चरणों में गिरना चाहते थे कि राजा पृथु ने उन्हें प्रेमपूर्वक अपने हृदय से लगा लिया। राजा पृथु भगवान विष्णु से बोले— आपकी कीर्ति कथा सुनने का अवसर व सुख नहीं मिलता, इसलिए मेरी इच्छा है कि आप मुझे दस हज़ार कान प्रदान करें, जिससे मैं आपकी लीलाएँ और कथाएँ सुन सकूँ। भगवान ने उसकी इच्छा स्वीकार कर ली। राजा पृथु ने भगवान विष्णु की पूजा की। भगवान विष्णु राजा पृथु को अपना स्वरूप दिखाकर अन्तर्धान हो गए।



१५. पृथु का अपनी प्रजा को उपदेश

राजा पृथु ने अपनी राजधानी लौटकर अपनी प्रजा को सम्बोधित किया। राजा ने कहा— सज्जनों! आप सबका कल्याण हो। आप सब मेरी प्रार्थना सुनो। जिज्ञासु व्यक्तियों को चाहिए कि वे सन्त समाज में अपने मन की बात रखें। मुझे प्रजा जनों की सेवा, रक्षा और आजीविका का प्रबन्ध करने के लिए राजा नियत किया गया है। इसके साक्षी श्री हरि को प्रसन्न चित्त करना है जिनके द्वारा मनोरथ पूर्ण करने वाले लोकों की प्राप्ति हो सके। श्रेष्ठ महापुरुषों के मत में कर्मों का फल देने वाले भगवान विष्णु ही हैं। हमारे दादा मनुउत्तानपाद, ध्रुव और प्रियव्रत एवं ब्रह्मा, शिव, प्रहलाद, राजा बलि के मतों से तो अर्थ, धर्म, मोक्ष, काम तथा सवर्ग और अपवर्ग के स्वाधीन नियमों के भगवान गदाधर की आवश्यकता है।

अतः मेरी इच्छा है कि द्विज कुल, गो वंश और भक्तों के भगवान सदा मुझ पर प्रसन्न रहें। ब्राह्मण क्षत्रियों की, क्षत्रिय ब्राह्मणों की तथा समस्त संसार की रक्षा करते रहें। मेरा सब प्रजा जनों को नमस्कार है।



१६. पृथु को सनकादि ऋषियों का उपदेश

जब राजा पृथु अपनी प्रजा को उपदेश कर रहे तो उसी समय आकाश मार्ग से सनकादि ऋषियों को राजा पृथु ने उतरते हुए देखा। राजा ने उनका सम्मान कर

आसन दिया। राजा ने उनसे कहा— मंगलमूर्ति मुनिवरों! आपके दर्शन तो योगियों को भी दुर्लभ हैं। मैंने ऐसा कौन-सा पुण्य का कार्य किया है कि जिसके कारण आपके दर्शन मुझे प्राप्त हुए? ऋषि सनत्कुमार जी ने कहा— राजन! श्री मधुसूदन भगवान श्री कृष्ण के चरण कमलों में आपकी अवश्य ही अविचल भक्ति है। जब तक अन्तःकरण रूप उपाधि रहती है तभी तक मनुष्यों को जीवात्मा इन्द्रियों के विषय और उनका सम्बन्ध कराने वाले अहंकार का अनुभव होता है, उसके बाद में नहीं होता।

धन और इन्द्रियों के विषयों का चिन्तन करना मनुष्य के सभी पुरुषार्थों का नाश करने वाला है। इस कारण अज्ञान रूपी अन्धकार को पार करने की इच्छा हो तो मनुष्यों को विषयों में आसक्ति नहीं रखनी चाहिए। उनको भगवान वासुदेव श्री कृष्ण का भजन करना चाहिए। अतः भगवान के आराधनीय चरण कमलों को नौका बनाकर अनायास ही मनुष्य दुस्तर समुद्र को पार कर सकता है।

राजा पृथु ने ऋषियों से कहा— दीनदयालु श्री हरि ने मेरे ऊपर पहले भी कृपा की थी। उसी को पूरा करने के लिए आप ऋषिगण पधारे हैं। मेरे पास तो इस शरीर के साथ-साथ जो भी वस्तु पुत्र, पत्नी, भवन राज्य, सेना, कोष, पृथ्वी है यह सब आप ही लोगों का है। अतः ये सब वस्तु आप लोगों के चरणों में अर्पित है। द्विज तो अपना खाता है और अपना पहनता है एवं अपनी

वस्तु दान करता है, परन्तु क्षत्रिय इत्यादि तो द्विजों की कृपा से अन्न खाते हैं और कपड़े पहनते हैं।

राजा पृथु ने सर्वश्रेष्ठ सनकादि ऋषियों की पूजा की। अन्त में ऋषिगण राजा पृथु की प्रशंसा करते हुए आकाश मार्ग से अपने धाम को प्रस्थान कर गए।

राजा पृथु ने अपनी पत्नी अर्चि के गर्भ से अपने ही अनुरूप विजिताश्व, धूम्रकेश, हर्यक्ष, द्रविण और वक्र नाम के पाँच पुत्रों को जन्म दिया। राजा पृथु भगवान के अंश से उत्पन्न हुए थे और शत्रुओं का दमन करने में यमराज के समान, वस्तुओं को संग्रह करने में हिमाचल पर्वत के समान और कोष की समृद्धि में कुबेर के समान और धन को छिपाने में वरुण के समान थे।



१७. पृथु की तपस्या और परलोक गमन

श्री मैत्रेय जी ने बताया कि राजा पृथु ने अपने मन में सोचा कि मेरे द्वारा ईश्वर आज्ञा का पालन हो चुका है। इसलिए मुझे मोक्ष प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए। उन्होंने अपनी पुत्री रूपा का भार अपने पुत्रों के कंधों पर डालकर वह अपनी पत्नी अर्चि के साथ तप करने के लिए तपोवन में चले गए।

वे मुनिवृति से रहने लगे। गर्मियों में पंचाग्नियों का सेवन करते और जाड़ो में गले तक जल में खड़े रहते। वर्षा ऋतु में जल की धारा का सेवन करते और मिटटी

की वेदी पर सोते थे। सनत्कुमारों ने परमोत्कृष्ट अध्यात्म योग की उन्हें शिक्षा प्रदान की। उसी के अनुसार राजा पृथु ने पुरुषोत्तम श्री हरि की उपासना की। अन्त समय में जब काल उपस्थित हुआ तो महाराज पृथु ने मन को दृढ़तापूर्वक परमात्मा में स्थिर कर शरीर को त्याग दिया।

महाराज पृथु की स्त्री अर्चि ने अपने पति की व्रत और नियमों का पालन कर उनकी खूब सेवा की। अर्चि ने अपने पति राजा पृथु को चेतना रहित देखकर कुछ देर विलाप किया। फिर पर्वत के ऊपर चिता बनाकर उस पर स्वामी की देह को रखकर तीन परिक्रमा की और पति के चरणों में ध्यान लगाकर चिता अग्नि में प्रवेश कर गई।

देवांगनाएँ पुष्पों की वर्षा करती हुई कहने लगी कि यह स्त्री धन्य है जो अपने पति राजा पृथु की उसी प्रकार सेवा करती रही जिस प्रकार श्री लक्ष्मी जी भगवान विष्णु की सेवा करती हैं। जिस परम धाम को महाराज पृथु गए, उसी धाम को महारानी अर्चि भी पतिलोक को चली गई।



१८. पृथु की वंश परम्परा और प्रचेताओं को भगवान शिव का उपदेश

श्री मैत्रेय जी ने बताया कि महाराज पृथु के बाद उनका पुत्र विजिताश्व राजगद्दी पर बैठा। वह अपने छोटे

भाइयों से बहुत स्नेह रखता था। इसलिए उसने उन्हें एक-एक दिशा का राज्य सौंप दिया। उसने एक भाई हर्यक्ष को पूर्व दिशा, दूसरे भाई धुम्रकेश को दक्षिण का, तीसरे भाई वक्र को पश्चिम दिशा का और चौथे भाई द्रविण को उत्तर दिशा का राज्य सौंप दिया। विजिताश्व ने इन्द्र से अन्तर्धान होने की शक्ति प्राप्त की थी। इसलिए विजिताश्व को अन्तर्धान भी कहते थे। उनकी स्त्री का नाम शिखण्डिनी था। उसको पावक, पवमान और शुचि नाम के तीन पुत्र पैदा हुए। अन्तर्धान की दूसरी पत्नी नभस्वती थी, जिससे हविर्धान नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ।

राजा अन्तर्धान (विजिताश्व) एक दीर्घ कालीन यज्ञ में दीक्षित होने के बहाने अपना राज्य छोड़कर यज्ञ में लीन हो गए। यज्ञकार्य में लीन रहने के कारण आत्मज्ञानी राजा परमात्मा की आराधना करके समाधि के द्वारा भगवान के दिव्यलोक में प्रस्थान कर गए।

हविर्धान की पत्नी हविर्ध्यानी ने बर्हिषद, गय, शुल्क, कृष्ण, सत्य और जितव्रत नामक छः पुत्रों को जन्म दिया। बर्हिषद कर्म काण्ड में निपुण था इसलिए उसने प्रजापति का पद प्राप्त किया। आगे चलकर वह प्राचीन बर्हि कहलाया। राजा प्राचीनबर्हि ने ब्रह्माजी के कहने पर समुद्र की कन्या शतद्रति को अपनी पत्नी बनाया। जब भाँवर देने के लिए शतद्रति घूमने लगी तो अग्निदेव उस पर मोहित हो गए और उसे चाहने लगे। शतद्रति के गर्भ से प्राचीनबर्हि के प्रचेता नाम के दस

पुत्र उत्पन्न हुए।

बड़े होने पर पिता ने पुत्रों को आदेश दिया कि सृष्टि के लिए पुत्र उत्पन्न करो। आज्ञा पाकर सबने समुद्र में तपस्या हेतु प्रवेश किया। उसी समय शंकर भगवान वहाँ आए। भगवान शंकर ने उनसे पूछा कि क्या तुम राजा प्राचीन बर्हि के पुत्र हो? तुम्हारा कल्याण हो। भगवान शंकर ने प्रचेताओं को स्त्रोत सुनाया और कहा— हे राजकुमारों! तुम विशुद्ध भाव से स्वधर्म का आचरण करते हुए भगवान में चित्त लगाकर मेरे कहे हुए उस स्त्रोत का जाप करते रहो। तुम सब भगवान को प्राप्त कर लोगे।



१९. पुरंजनों के उपाख्यान का आरम्भ

श्री मैत्रेयजी ने बताया कि प्रचेताओं ने भगवान शंकर जी के बताए हुए स्त्रोत का दस हज़ार वर्ष तक पानी में खड़े रह कर जप किया। एक दिन वहाँ पर नारद जी आए और प्राचीन बर्हि से कहा कि तुमने यज्ञों में हज़ारों पशुओं की बलि दी है। जब तुम परलोक जाओगे तब तुम्हें लोहे के सींगों से बींधा जाएगा। नारद जी ने इस बारे में एक प्राचीन उदाहरण सुनाया। वह राजा पुरंजन का चरित्र है।

पूर्वकाल में एक पुरंजन नाम का तपस्वी राजा था। उसका एक मित्र था जिसका नाम अभिज्ञात था। पुरंजन

रहने के लिए स्थान प्राप्त करने हेतु कई जगहों पर गया। अन्त में एक दिन उसने हिमालय के दक्षिण शिखरों पर नौ द्वारों का नगर देखा। वह नगर चारों ओर से परकोटों, बगीचों, अटारियों, झरोखों और राजद्वारों से शोभायमान था। वहाँ राजा पुरंजन ने घूमती हुई एक सुन्दर नारी को आते देखा। वह घूमती-फिरती वहीं चली आई जहाँ पर राजा पुरंजन खड़े थे। उसके साथ १० सेवक भी थे। प्रत्येक सेवक सौ-सौ नायिकाओं का पति था। नगर का द्वारपाल एक पाँच फन वाला सर्प था। वह नारी किशोरी अवस्था की थी। वह अपने लिए एक पति की खोज में थी। वह स्त्री अपनी तिरछी चितवन से घायल कर रही थी। पुरंजन भी उस पर मोहित हो गया। उसने प्रेम से परिपूर्ण वाणी में उस सुन्दर स्त्री से कहा कि तुम कौन हो और तुम्हारे पिता कौन हैं? इस पुरी के समीप क्या करना चाहती हो? तुम्हारे साथ ये दस सेवक कौन हैं? द्वारपाल के रूप में ये सर्प कौन है? मेरे साथ इस श्रेष्ठ पुरी को अलंकृत कर सकती हो। मैं एक वीर और पराक्रमी राजा हूँ। आप अपने सुन्दर मुख के दर्शन तो कराओ।

वह सुन्दरी राजा पुरंजन पर मोहित हो गई। उस सुन्दरी ने अपना परिचय देते हुए बताया कि मुझे जन्म देने वाले का पता ज्ञात नहीं है। वह आज इस पुरी में भी नहीं है। जब मैं सोती हूँ तो ये पुरुष मेरे सखा और स्त्रियाँ सहेलियाँ हैं तथा यह सर्प पुरी की रक्षा करता है। राजन! आपको भोग की इच्छा हो तो मैं इसकी पूर्ति

के लिए अपने साथियों सहित सभी तरह का भोग आपको प्रस्तुत करती रहूँगी। इस नौ द्वारों वाली पुरी में सैकड़ों वर्षों तक भोगों को भोगते हुए निवास कीजिए। मैं किसी दूसरे के साथ रमण नहीं करूँगी। इस लोक में मेरी जैसी कौन स्त्री होगी जो स्वयं प्राप्त हुए सुप्रसिद्ध उदारचित और सुन्दर पति को वरण न करेगी।

नारद जी ने कहा कि राजा पुरंजन ने उस स्त्री के साथ सौ वर्ष तक उस पुरी में रहकर आनन्दपूर्वक भोग-विलास में जीवन व्यतीत किया। उस पुरी के नौ द्वार थे। इन द्वारों में से सात द्वार ऊपर की ओर और दो द्वार नीचे की ओर थे। उस पुरी से अलग-अलग देशों को जाने के लिए अलग-अलग द्वार से होकर आना-जाना पड़ता था। दो द्वार खद्योता और आविर्मुखी थे। दूसरे को द्वारा नलिनी और नालिनी थे, दो द्वारा पास-पास थे तथा एक द्वारा मुख नाम का था। पुरी के नीचे का एक द्वार पितृहू और दूसरा देवहू नाम का था। इस नगर में निर्वाक और पेशस्कृत दो नागरिक अन्धे थे। राजा पुरंजन आँखों वाले नागरिकों का अधिपति होते हुए भी उन दो अन्धे नागरिको की सहायता से ही सब प्रकार के कार्य करता था। प्रधान सेवक के साथ अन्तपुर में आता-जाता रहता था। उसको स्त्री और पुत्र के मोह आदि विकारों का अनुभव हो गया था। उसका चित्त कर्मों में फँसा हुआ था। वह एक रमणी के द्वारा ठगा गया था। वह स्त्री जब मदिरा का सेवन करती तो राजा भी मदिरा पीता था। रमणी गीत गाती तो वह भी गाता, वह सोती तो वह स्वयं भी सो जाता था, जब वह हँसती तो वह स्वयं भी

हँसने लगता, जैसा वह सुन्दरी करती वैसा ही वह भी करने लगता। वह पालतू बन्दर की भाँति बनकर रह गया था।



२०. पुरंजन का शिकार खेलने जाना रानी का कुपित होना

नारद जी ने बताया कि एक दिन पुरंजन ग्याहरवें सेनापति के साथ पाँच घोड़ों के रथ में बैठकर पंचप्रस्थ वन में शिकार खेलने के लिए गया। उसने तीखे बाणों से निर्दोष जानवरों को मार डाला। इस प्रकार शिकार करते-करते वह थक गया। जब उसे भूख प्यास सताने लगी तो शिथिल होकर महल में लौट आया। महल में आकर वह सुन्दरी भार्या को ढूँढने लगा। परन्तु वह कहीं न मिली। अन्य स्त्रियों ने बताया कि आपकी प्रिया बिना बिछाए ज़मीन पर पड़ी है। पुरंजन उसकी खुशामद करने लगा। पहले उसके चरणों को पकड़ा फिर उसे गोद में बिठाकर प्यार करने लगा। सुन्दरी अनेकों नखरों से पुरंजन को पूरी तरह वश में करके विहार करने लगी। राजा पुरंजन द्वारा उस सुन्दरी से ११०० पुत्र और ११० पुत्रियाँ प्राप्त हुईं। ये कन्याएँ पौरन्जनी के नाम से विख्यात हुई। पुरंजन ने वंश की वृद्धि के लिए पुत्रों और कन्याओं का विवाह योग्य वरों के साथ कर दिया। प्रत्येक पुत्र के सौ-सौ पुत्र उत्पन्न हुए।



२१. पुरंजन पुरी पर चण्डवेग की चढ़ाई काल कन्या का चरित्र

नारद जी ने बताया कि चण्डवेग नाम का एक गन्धर्व राजा था। उसके आधीन तीन सौ साठ गन्धर्व थे। उनके साथ साँवले और गोरे रंग की उतनी ही गन्धर्व स्त्रियाँ थीं। वे बारी-बारी से भोग-विलास की सामग्री से भरी नगरी को लूटती रहती थीं। चण्डवेग के अनुचरों ने और सात सौ बीस गन्धर्व व गन्धर्वियों ने सौ वर्ष तक पाँच फल वाले सर्प से लड़ते रहे। उस समय काल कन्या वर की खोज में घूम रही थी। उसने कहा— मेरी प्रार्थना स्वीकार करने के कारण आप एक स्थान पर अधिक समय तक रुक न सकोगे। निराश होकर काल कन्या ने यवनराज को अपना पति चुन लिया। यवनराज ने काल कन्या से कहा— अब तुम मेरी समस्त सेना लेकर प्रजा का नाश करने में सफल हो जाओगी। मैंने योग दृष्टि से देखकर तुम्हारे लिए एक पति निश्चय किया है। क्योंकि तुम सबका अनिष्ट करने वाली हो। इसलिए तुम्हें कोई स्वीकार नहीं करता। तुम प्रजा का विनाश करने में सफल रहोगी। कोई तुम्हारा सामना करने में सफल नहीं होगा। यह प्रज्वार मेरा भाई है और मेरी बहन हो। मैं तुम दोनों को साथ लेकर भयंकर सेना के साथ समस्त लोकों में विचरण करूँगा। ये काल कन्या के साथ पुरंजन पुरी में विभिन्न द्वारों से प्रवेश करके विध्वंस करने लगे। प्रज्वार ने पुरंजन पुरी में आग लगा

दी। पुरंजन को पकड़ने के लिए यवनराज आ गया। यवन लोग उसे बाँधकर अपने स्थान ले गए। सर्प भी पुरी को छोड़ कर भाग गया। राजा ने जिन पशुओं की यज्ञ में बलि दी थी वे पीड़ा को स्मरण करके यमनपुरी में कुल्हाड़ी से पुरंजन के टुकड़े करने लगे।



२२. पुरंजन को स्त्री योनि प्राप्त और अविज्ञात उपदेश से मुक्त होना

अपने अन्तिम समय में पुरंजन अपनी पत्नी को स्मरण कर रहे थे। इसका परिणाम यह हुआ कि अगले जन्म में उन्होंने नृपश्रेष्ठ विदर्भ राज के यहाँ पुत्री के रूप में जन्म लिया। विवाह योग्य हो जाने पर विदर्भ राज ने घोषित किया कि मैं अपनी पुत्री का विवाह उसके साथ सम्पन्न करूँगा जो पाण्डेय नरेश के सब राजाओं को विजय कर लेगा। महाराज मलयध्वज ने उन राजाओं को हरा कर उस कन्या से विवाह किया। उनके यहाँ उस कन्या से सात पुत्र और एक अति सुन्दर पुत्री ने जन्म लिया। ये सातों पुत्र द्रविड़ देश के राजा हुए। महाराज मलयध्वज ने अपनी पुत्री का विवाह अगस्त्य ऋषि से किया। अगस्त्य के दृढ़च्युत नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। दृढ़च्युत के इध्मवाह नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। मलयध्वज ने पृथ्वी को अपने पुत्रों में विभाजित कर श्री हरि की आराधना हेतु मलयपर्वत पर चले गए। उनके साथ उनकी पत्नी

वैदर्भी भी गई। मलयध्वज अपने मन पर विजय प्राप्त करके ब्रह्मभावना में लीन हो गए।

मलयध्वज की मृत्यु पर उनकी पत्नी विलाप करती हुई उनके साथ सती होने को तैयार हो गई। उसी समय मलयध्वज का एक पुराना मित्र आत्मज्ञानी विप्र आया। उसने मलयध्वज की पत्नी को बताया कि मैं तुम्हारा वही मित्र हूँ जिसके साथ तुम विचरा करती थीं। पिछले जन्म में मैं और तुम मानस निवासी हंस थे। विषय भोगों की इच्छा उत्पन्न होने पर तुम मुझे छोड़कर चली गईं। तुमने एक स्त्री का निर्माण किया हुआ स्थान देखा जिसमें पाँच बगीचे, नौ द्वार, तीन परकोटे, छः वैश्यकुल, पाँच बाज़ार और एक द्वारपाल था। पाँच बगीचे-इन्द्रियों के पाँच विषय, नौ द्वार-इन्द्रियों के नौ छिद्र, तीन परकोटे-तेज, जल और वायु के प्रतीक, मन और पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ मिलकर छः वैश्य कुल थे। भाई हंस उस नगर की स्वामिनी के फन्दे में पड़कर अपना स्वरूप खो बैठा द्वारपाल।

तुम न तो विदर्भ राज की पुत्री हो और न मलयध्वज तुम्हारा पति है, जिसने तुम्हें नौ द्वारों के नगर में कैद किया है और न तुम उस पुरंजन की स्त्री हो। यह सब मेरी फैलाई हुई माया थी। तुम न स्त्री हो और न पुरुष हो। हम दोनों हंस हैं। मित्र मैं ईश्वर हूँ और तुम वही जीव हो। मैंने तुम्हें परोक्ष रूप से यह आत्मज्ञान का दिग्दर्शन कराया है क्योंकि जगतकर्त्ता जगदीश्वर को परोक्ष ज्ञान बहुत प्रिय है।

२३. पुरंजनोपाख्यान का तात्पर्य

नगर का निर्माता जीव है जो शरीर रूपी नगर का निर्माण करता है। जीव का मित्र अज्ञात है। जीव ने नौ द्वार, दो हाथ, और दो पैर वाली मानव देह को ही पसन्द किया है। बुद्धि और अविद्या को पुरंजन की दो स्त्रियाँ समझो। दस इन्द्रियाँ उसकी मित्र हैं। इन्द्रियों की वृत्तियों को उसकी सखियाँ समझो। प्राण, व्यान, उदान, अजान और समान ये पाँच वृत्तियों वाला प्राण वायु नगर की रक्षा करने वाला पाँच फन का सर्प समझो। इन्द्रियों का नायक मन है, जिसे ग्यारहवां महाशक्तिशाली योद्धा समझो। शब्दादि पाँच विषयों को पाँचाल देश समझना चाहिए। नौ द्वार से अर्थ है— दो नेत्र, दो, नासाछिद्र, दो कान छिद्र, मुख, लिंग, और गुदा द्वार। मुँह मुख्य द्वार है और रथ शरीर है। पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ रथ (शरीर) में जुड़े पाँच घोड़े हैं। बुद्धि सारथी है और हृदय सारथी के बैठने का स्थान है। इसमें इन्द्रियों के पाँच आयुध हैं। पाँच कर्मेन्द्रियाँ पाँच प्रकार की गतियाँ हैं। जीव शरीर रूपी रथ पर चढ़कर मिथ्या विषयों की ओर दौड़ता है। ग्यारह इन्द्रियाँ उसकी सेना हैं। इन्द्रियों का विषयों को ग्रहण करना उसका शिकार करना है। इसके द्वारा काल का ज्ञान होता है।

संवत्सर चण्डवेग नामक गन्धर्व राजा है। इसके आधीन तीन सौ पैंसठ दिन (गन्धर्व) हैं। इसी प्रकार तीन सौ पैंसठ रात्रि (गन्धर्वियाँ) हैं। ये बारी-बारी से

चक्कर लगाते रहते हैं। वृद्धावस्था काल कन्या है। सँहार करने के लिए बहन ने स्वीकार्य कर लिया। प्राणियों को पीड़ा पहुँचाकर मृत्यु के मुख में ले जाने वाले शीत उष्ण दो प्रकार के ज्वर और प्रज्वर नाम के भाई हैं।

नारद जी ने कहा— मन स्वयं प्रधान लिंग है और शरीर की सहायता से मनुष्य कर्म करता है। मृत्यु के पश्चात् भी कर्म उसके साथ रहता है। उस कर्म के अनुसार ही मनुष्य परलोक में फल भोगता है। इस कर्म बन्धन से छुटकारा पाने के लिए मनुष्य को श्री हरि का भजन करना चाहिए। नारद जी इस प्रकार उपदेश देकर अपने धाम को गमन कर गए।



२४. प्रचेताओं को श्री विष्णु भगवान का वरदान

श्री मैत्रेयजी ने बताया कि प्रचेताओं ने समुद्र के अन्दर खड़े रहकर जप रूपी यज्ञ द्वारा शिव जी की और तपस्या के द्वारा श्री हरि को प्रसन्न कर लिया। पुराण पुरुष आठ भुजाधारी श्री नारायण प्रचेताओं के सम्मुख प्रकट हुए। भगवान ने उन्हें आशीर्वाद दिया कि तुम्हारा कल्याण हो। तुम्हारी कीर्ति समस्त लोकों में फैल गई है। तुम्हें गुणवान पुत्र होगा जो ब्रह्माजी से किसी भी प्रकार कम नहीं होगा। वह अपनी सन्तानों से तीनों लोकों को पूर्ण करेगा।

श्री नारायण भगवान ने प्रचेताओं से कहा— कण्डुऋषि के तप को नाश करने के लिए इन्द्र ने प्रम्लोचा नाम की अप्सरा को भेजा। ऋषि ने अपनी माया फैलाकर उस अप्सरा को मोहित कर लिया। इससे प्रम्लोचा अप्सरा से कमल नयनी सुन्दर कन्या उत्पन्न हुई। इसके बाद वह अप्सरा ऋषि को छोड़कर स्वर्गलोक को चली गई। वृक्षों ने उस कन्या का पालन-पोषण किया। भूख से व्याकुल होने पर चन्द्रमा ने द्रवित होकर उसके मुँह में अपनी तर्जनी उंगली डाल दी। कुछ समय बाद वह कन्या जवान हो गई। भगवान नारायण ने प्रचेताओं को उससे विवाह करने को कहा। तुम लोग मेरी कृपा दृष्टि से दस लाख वर्षों तक दिव्य भोग भोगोगे। उसका तुम सब पर समान अनुराग रहेगा। वह तुम्हारी तरह ही धर्म स्वभाव वाली सुन्दर है।

प्रचेताओं ने भगवान श्री हरि से कहा— हम आपसे यह वर चाहते है कि हम जब-जब आपकी माया से मोहित होकर संसार में भ्रमण करें तब-तब आपकी प्रेम भक्ति का संग प्राप्त होता रहे। भगवान ने उन्हें 'तथास्तु' कहकर अपने लोक को चले गए।

प्रचेताओं ने समुद्र से बाहर निकलकर देखा कि वृक्षों ने पृथ्वी को ढक रखा है। इस पर उन्होंने प्रचण्ड वायु और अग्नि छोड़ी। इससे वृक्ष जल कर नष्ट हो गए और पृथ्वी का निर्वाण किया। ब्रह्माजी ने प्रचेताओं को वह कन्या लाकर सौंपी। उस कन्या का नाम मारिष रखा गया। उन्होंने मारिष से विवाह कर लिया।

ब्रह्माजी के पुत्र दक्ष ने अपना पूर्व शरीर त्याग दिया। अन्त में मारिष कन्या के गर्भ से दक्ष ने जन्म लिया। भगवान की कृपा से नवीन प्रजा उत्पन्न हुई।

प्रचेताओं ने श्री नारद मुनि के मुख से उपदेश सुने। पापरूपी मल को दूर करने के लिए भगवत चरित्र सुनकर भगवान के चरण कमलों में उन्होंने अपना ध्यान लगाया। अन्त में उन्होंने भगवत धाम को प्राप्त किया।



पंचम स्कन्ध

१. प्रियव्रत चरित्र

श्री शुकदेव जी ने कहा— राजा प्रियव्रत श्री नारद जी ने आत्मज्ञान का उपदेश प्राप्त कर राज्य करने लगे। अन्त में पृथ्वी का राज्य अपने पुत्रों में बाँट कर भगवान के दिव्य लोक में चले गए। अब उनके चरित्र पर प्रकाश डाल रहा हूँ।

स्वायम्भुव मनु और प्रियव्रत के बड़े जाने पर ब्रह्माजी पधारे। ब्रह्माजी ने प्रियव्रत को बताया तुम्हें श्री हरि के प्रति किसी प्रकार की दोष दृष्टि नहीं रखनी चाहिए। तुम्हीं क्या मैं स्वयं, शिवजी, स्वायम्भुव मनु और तुम्हारे गुरु नारद जी उनकी आज्ञा का उल्लंघन नहीं करते। नारद जी की आज्ञा से मनु जी ने प्रियव्रत को भूमण्डल की रक्षा का भार सौंपा।

प्रियव्रत ने प्रजापति विश्वकर्मा की पुत्री बर्हिष्मती

से विवाह किया। उनके दस पुत्र हुए और ऊर्जस्वती नाम की कन्या भी पैदा हुई। उनके पुत्रों के नाम इस प्रकार थे-आग्नीध्र, इध्मजिह्व, यज्ञवाहु, महावीर, हिरण्यरेता, धृतपृष्ठ, सवन, मेधातिथी, वीतिहोत्र और कवि। ये दसों नाम अग्नि के भी हैं। इनमें कवि महावीर और सवन वौष्टिक ब्रह्मचारी थे। महाराज प्रियव्रत की दूसरी पत्नी से उत्तम, तामस और रैवत तीन पुत्र हुए थे। प्रियव्रत ने रथ पर बैठकर पृथ्वी की सात परिक्रमा की थी। उस रथ के पहिए से जो सात लीकें बनीं उनसे जम्बू, प्लक्ष, शाल्मलि, शाक, क्रौंच, कुश और पुष्कर द्वीप बने। महाराज प्रियव्रत ने अपने पुत्रों को एक-एक द्वीप का शासक बना दिया। उन्होंने अपनी कन्या ऊर्जस्वती का विवाह शुक्राचार्य जी से किया। शुक्राचार्य के शुक्रकन्या और देवयानि का जन्म हुआ।



२. आग्रीध्र चरित्र

पिता प्रियव्रत ने तपस्या के लिए जाते समय आग्रीध्र को जम्बू द्वीप का राजा बनाया। वह प्रजा का पालन करने लगा। एक बार आग्रीध्र पितृलोक की कामना से उत्तम पुत्र की प्राप्ति हेतु मद्राचल की घाटी में तपस्या में लीन होकर ब्रह्माजी की पूजा करने लगे। उनकी तपस्या भंग करने के लिए ब्रह्माजी ने पूर्वचित्ति नामक अप्सरा को भेजा। वह आग्रीध्र जी के आश्रम के आस-पास रहने लगी।

पूर्वचित्ति के पैर में बंधे नूपुरों की मधुर ध्वनि से आग्नीध्र जी की आँखें खुल गईं। इस प्रकार उस अप्सरा ने ऋषि आग्नीध्र की तपस्या भंग कर दी। वे अप्सरा के प्रेम बन्धन में बँध गए। वह अप्सरा उनके साथ कई हज़ार वर्षों तक भोग विलास में लिप्त रही। उससे उन्हें नौ पुत्र प्राप्त हुए, जिनके नाम इस प्रकार थे— नाभि, किम्पुरुष, हरिवर्ष, इलावृत, रम्यक, हिरणमय, कुरु, भ्रद्राश्व और केतुमाल। पुत्रों के जन्म के पश्चात् पूर्वचिति अप्सरा सबको छोड़कर ब्रह्माजी के पास राजभवन में लौट गई। आग्नीध्र ने जम्बू के नौ खण्ड करके अपने पुत्रों को एक-एक खण्ड सौंप कर परलोक सिधार गए। पिता श्री के परलोक सिधारने के पश्चात् नौ कन्याओं से विवाह कर लिया, जिनके नाम इस प्रकार थे— मरुदेवी, प्रतिरूपा, उग्रदंष्टी, लग, रम्या, श्यामा, नारी, भद्रा और देववीति।



३. राजा नाभि का चरित्र

आग्नीध्र के पुत्र नाभि के कोई पुत्र नहीं हुआ। नाभि अपनी पत्नी मेरुदेवी के साथ पुत्र प्राप्ति हेतु भगवान की आराधना करने लगे। ऋत्विजों ने भगवान से प्रार्थना की कि यह हमारे यजमान राजर्षि नाभि अपनी सन्तान को ही परम पुरुषार्थ मान कर आराधना कर रहे हैं। राजर्षि नाभि आपके समान सन्तान पाने की इच्छा से

तपस्या में लीन हैं। भगवान ने ऋषियों से कहा— आपने बड़ा दुर्लभ वर माँगा है। मैं तो समान स्वयं ही हूँ। इसलिए मैं स्वयं ही अपनी अंश कला से नाभि के यहाँ अवतार लूँगा। कुछ समय के पश्चात् महारानी मरुदेवी के गर्भ से दिगम्बर सन्यासी ऊर्ध्वरेता मुनियों के धर्म प्रकट करने के लिए सन्तान उत्पन्न हुई। उसका नाम ऋषभ देव रखा। ऋषभदेव दिगम्बर सन्यासी के रूप में प्रसिद्ध हुए। महाराज नाभि अपने पुत्र ऋषभ देव को राज्य सौंपकर बद्रीकाश्रम को चले गए। बद्रीकाश्रम में भगवान वासुदेव के नर-नारायण रूप की आराधना करते हुए उन्हीं के रूप में लीन हो गए।



४. भगवान ऋषभ देव जी का राज्य शासन और देह त्याग

भगवान ऋषभदेव जी ने गृहस्थ धर्म की शिक्षा देवराज इन्द्र से प्राप्त की थी। इन्द्र ने अपनी पुत्री का विवाह ऋषभ देव जी से किया। उसके गर्भ से ऋषभदेव जी को अपने ही जैसे गुणवाले सौ पुत्र प्राप्त हुए। उन में सबसे बड़े पुत्र का नाम भरत था। उन्हीं के नाम पर इस देश का नाम भारतवर्ष पड़ा। भरत से छोटे कुशावर्त, इलवर्त, ब्रह्मावर्त, मलय, केतु, भद्रसेन, इन्द्रस्पृक, विदर्भ और कीकट शेष ९० पुत्रों से बड़े थे। उनसे छोटे क्रमशः नौ पुत्र भागवत धर्म का प्रचार कर रहे थे जिनके नाम

क्रमश कवि, हरि, अन्तरिक्ष, प्रबुद्ध, पिप्पलायन, आर्विहोत्र, द्रुमिल, चमस और कर भाजन थे।

ऋषभ देव जी ने अपने सब पुत्रों को समझाया कि जब तक मनुष्यों को वासुदेव में प्रीति नहीं होती तब तक देह बन्धन से मुक्ति प्राप्त नहीं हो सकती। अतः पुत्रों संसार रूपी सागर से पार होने के लिए कुशल, धैर्य, उद्यम और सत्वगुण विशिष्ट पुरुष अपने शरीर को भगवान की भक्ति में लीन कर देना चाहिए। भगवान ऋषभदेव जी ने पृथ्वी के पालन के लिए भरत को राजगद्दी सौंप दी। ऋषभदेव जी ने वस्त्रों को त्याग कर दिगम्बर बन गए। उन्होंने सदैव के लिए मौन धारण कर लिया। वे अपने मुख में पत्थर का टुकड़ा डाले रखते थे। बालों को बिखरे हुए उन्मत रहते थे। वे दिगम्बर रूप में कुटकाचल के वन में भ्रमण करते रहते। एक बार बांसों की आपस में रगड़ से प्रबल दावाग्नि धधक उठी। उस दावाग्नि की चपेट में ऋषभ देव जी भी आ गए और मृत्यु को प्राप्त हुए।



५. भरत का चरित्र

श्री शुकदेव जी कहते हैं कि भगवान ऋषभ देव जी ने संकल्प मात्र से पृथ्वी की रक्षा करने के लिए सिंहासन पर भरत जी की नियुक्ति कर दी थी। उनका विवाह विश्वरूप की पुत्री पंचजनी से हुआ। पंचजनी

के गर्भ से सुमति, राष्ट्रभक्त, सुदर्शन, आवरण और धूमकेतु नाम के पाँच पुत्र पैदा हुए। जब भरत जी अर्घ्य आहुति देने के लिए हवि हाथ में लेते तो यजमान भरत उस यज्ञ से प्राप्त होने वाले फलों को यज्ञ पुरुष भगवान वासुदेव को अर्पण कर देते थे। कर्मों की शुद्धि से उनका अन्तकरण शुद्ध हो गया था। उन्होंने प्रजा का पालन-पोषण बड़े सुचारु ढंग से किया। अन्त में वंश परम्परागत सम्पत्ति को पुत्रों को बाँट दिया। एक दिन वे राज महल से निकल कर हरिद्वार (पुलहाश्रम) में चले गए। शरीर पर मृगछाल धारण करते थे।

एक बार भरत जी गण्ड की नदी में स्नान करने गए। उन्होंने एक हिरनी को देखा जो पानी पीने के लिए आई थी। वह जब पानी पी रही थी तो उसने शेर की दहाड़ सुनी। उसने डर कर नदी के दूसरी तरफ जाने के लिए छलाँग लगाई तो उसके गर्भ से बच्चा निकल कर पानी में गिरकर बहने लगा। भरत जी उस बच्चे को अपनी गोद में उठा कर अपने आश्रम पर ले आए। भरत जी ने उसका पालन-पोषण पुत्रव्रत रूप से किया। इस कारण उनका प्रतिदिन का नियम और भगवत पूजा सब छूट गई। वे दिन भर हिरनी के बच्चे के लाड़ प्यार में मस्त रहने लगे। एक दिन वह हिरनी क़ा शावक आश्रम से जंगल में चला गया। संध्या होने पर भी लौटकर नहीं आया। भरत उस हिरणी के शावक के वियोग में बहुत दुर्बल हो गए।

भरत जी आत्मस्वरूप को भूलकर अपनी योग

साधना से दूर हो गए थे। उन्हें हमेशा हिरनी के शावक का ध्यान बना रहता था। अन्त समय में उन्होंने हिरणी के शावक को पुकार कर अपने प्राण त्याग दिए। उस हिरणी के शावक की याद के कारण उन्हें अगले जन्म में मृग का शरीर प्राप्त हुआ। उन्हें पूर्व जन्म की स्मृति नष्ट नहीं हुई थी। इस कारण मृग बने राजर्षि भरत ने अपनी माता (हिरनी) को त्याग दिया।

जंगलों में अकेला ही घूमता रहता था। एक दिन जन्मभूमि कालंजर होता हुआ वह पुलस्त्य और पुलह ऋषि के आश्रम में पहुँच गया। वहाँ वह शेष जीवन का भाग व्यतीत करता रहा। अन्त में अपने शरीर का आधा भाग गण्डकी नदी के जल में डुबाए हुए शरीर को त्याग दिया।



६. भरत जी का ब्राह्मण कुल में जन्म

अंगिरस गोत्र के एक पण्डित थे। उनकी दो पत्नियाँ थीं। बड़ी पत्नी से सौ पुत्र और छोटी पत्नी से एक पुत्र और एक पुत्री का जन्म हुआ। छोटी पत्नी का पुत्र भरत ही था। मृग शरीर को त्याग कर अन्तिम जन्म में छोटी पत्नी के गर्भ से भरत जी उत्पन्न हुए थे। इस पुत्र का नाम करण भरत ही रखा गया। ये बचपन से ही भगवान का नाम हृदय में रखते थे। जब ये बड़े हुए तो इन्होंने अपने को दूसरों की दृष्टि में पागल, मूर्ख और बहरे के

समान बनाए रखा। माता-पिता की मृत्यु के पश्चात् भाइयों ने भी भरत को पागल समझ रखा था। भरत जी को रुखा-सूखा, सड़ा-गला और अधपका जैसा भी भोजन भाई लोग खाने को दे देते उसे ही खा पीकर ज़मीन पर पड़े रहते थे। कभी-कभी खेतों में जाकर सो जाते थे।

एक दिन कुछ लुटेरे भद्रकाली को नरबलि चढ़ाने के लिए इनको पागल समझ कर पकड़ कर ले गए। भद्रकाली की मूर्ति के आगे सिर नीचे कराकर बैठा दिया और जैसे ही तलवार से इनका सिर काटना चाहा तो वैसे ही भद्रकाली प्रत्यक्ष रूप से प्रकट हो गईं। हाथ में खड्ग, त्रिशूल, तलवार आदि हथियारों सहित भयंकर रूप धारण किए हुए थीं। भद्रकाली ने सब पापी, लुटेरों के सिर काट-काट कर ढेर लगा दिया। इस प्रकार भरत जी को बचाकर अन्तर्धान हो गईं। भरत जी तो हृदय में श्री हरि का ध्यान लगाए मस्त होकर बैठे थे। इस घटना के बाद में वे घूमते-फिरते नदी के किनारे पर चले गए।



७. जड़ भरत की रहूगण से भेंट और उपदेश

श्री शुकदेव जी ने बताया कि एक दिन राजा रहूगण पालकी में बैठ कर कहीं जा रहे थे। चलते-चलते वे इक्षुमती नदी के किनारे पहुँचे। वहाँ पालकी को उठाने

के लिए उन्हें एक कहार की आवश्यकता पड़ी। कहार की तलाश में उनकी दृष्टि एक हृष्ट-पुष्ट भरत जी पर पड़ी। राजा रहूगण ने उनको पालकी उठाने के लिए बुलाया। भरत जी आगे देख-देखकर पैर रखते थे जिससे कोई जीव जन्तु पैर के नीचे आकर मर न जाए। इस कारण से पालकी टेढ़ी और तिरछी होने लगती थी। राजा रहूगण गिरने के डर से क्रोध में भरकर आग बबूला हो गया और बोला— तू जीता जागता मरों की तरह क्यों चल रहा है?

जड़ भरत ने कहा— आपने जीने-मरने की जो बात कही है तो जितने भी विकारी पदार्थ हैं उनमें नियमित रूप से जीने-मरने की बात देखी जाती है, क्योंकि यह बातें आदि और अन्त वाली हैं। आदि में जीवित रहना और अन्त का अर्थ मरना है। तुम राजा हो और मैं तुम्हारी प्रजा हूँ। आप बताओ मैं क्या सेवा करूँ? राज रहूगण पालकी से नीचे उतर पड़े और हाथ जोड़कर बोले आप कौन हैं? आप दत्तात्रे या कपिल देव तो नहीं है। मुझे किसी से डर नहीं लगता। केवल ब्राह्मण कुल के अपमान से डरता हूँ। मैं श्री हरि की ज्ञान शक्ति के अवतार योगेश्वर भगवान कपिल देव से यह पूछने जा रहा हूँ कि इस लोक में शरण लेने योग्य कौन है?

जड़ भरत ने कहा— वीरवर पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और एक अहंकार, ये ग्यारह मन की वृत्तियाँ तथा पाँच प्रकार के कर्म, पाँच तन्मात्राएँ और शरीर, ये ग्यारह उनके आधार भूत विषय कहे गए हैं। मलत्याग,

सम्भोग, गमन, भाषण और लेना देना आदि व्यापार ये पाँच कर्मेन्द्रियों के विषय हैं। गन्ध, स्पर्श, रूप, शब्द और रस, से पाँच ज्ञानेन्द्रियों के विषय हैं। परन्तु इनकी सत्ता क्षेत्रज्ञ, आत्मा की सत्ता से ही है। यह मन ही हमारा सबसे बड़ा शत्रु है। आप सावधान होकर श्री गुरु और श्री हरि के चरणों की उपासना से इस पर विजय पाओ।

राजा रहूगण! सुनो यह पृथ्वी देह का विकार है। इसके दो पैर हैं। उनके ऊपर क्रमशः टखने, पिंडली, घुटने, जांघ, कमर, वक्ष स्थल, गर्दन और कंघा आदि अंग हैं। कंधों पर लकड़ी की पालकी रखी है और उसमें सौवीरराज नामक एक पार्थिव विकार ही है। तुमने सोचा मैं सिन्धु देश का राजा हूँ। तुम इस अभिमान से अंधे हो रहे हो। तुम दीन-दुखियों कहारों को व्यर्थ में पकड़ कर पालकी को उठवाकर ले जा रहे हो।

सुनो, पूर्व जन्म में मैं राजा था और मेरा नाम भरत था। मैं ईश्वर की आराधना में लगा रहता था। परन्तु एक मृग के शावक में आसक्ति हो जाने से अगले जन्म में मुझे मृग बनना पड़ा। परन्तु भगवान श्री कृष्ण की आराधना के प्रभाव से तथा उनकी कृपा से मृगयोनि से मुक्ति मिल गई और फिर से मनुष्य योनि में जन्म लिया, परन्तु पूर्व जन्म की स्मृति बनी रही। इसी कारण से मैं मनुष्य संसर्ग से बचता हुआ गुप्त रूप से घूमता रहता हूँ।

साराँश यह है कि मनुष्य को सत्संग द्वारा इस लोक के मोहबन्धन को काट डालना चाहिए। श्री हरि की

लीलाओं के कथन और श्रवण से संसार मार्ग को पार करके भगवान को प्राप्त कर लेना चाहिए।



८. भवाटवी का वर्णन, रहूगण का संशय नाश

जड़ भरत ने राजा रहूगण को समझाया कि जीव समूह सुख रूपी धन में आसक्त होकर देश देशान्तर में भ्रमण कर व्यापार करने वाले व्यापारी की तरह है। उसकी दृष्टि तामस, राजस और सात्विक भेद से विभिन्न प्रकार के कार्यों पर जाती है। वह संसार रूपी वन में पहुँच जाता है। वन में छः प्रकार के लुटेरे हैं। ये जबरदस्ती माल को लूट लेते हैं। प्यास से व्याकुल होकर मृगतृष्णा की ओर भागता है तो कभी दावानल में घुसकर अग्नि से झुलस जाता है। वह वणिक समुदाय जंगल में इधर-उधर भ्रमण करता रहता है। कभी गन्धर्व नगर में घुसकर दुःखों को भुलाकर खुशियाँ मनाने लगता है। कभी वह अजगर या सर्पों का शिकार बनकर मुर्दे की तरह पड़ा रहता है। कभी विषैले जानवर काटने लगते हैं। कभी मधुमक्खियाँ चिपटकर नाक में दम कर देती हैं। वणिक समूह आपस में विवाह सम्बन्ध बना लेते हैं। रास्ते में भाँति-भाँति के दुःख और धनक्षय उठाते-उठाते मृतक की तरह हो जाते हैं। कुछ साथी मर जाते हैं तो नए मित्र बनाकर बंजारा समूह आगे बढ़ता है। उनमें से कोई भी

प्राणी न तो वापिस लौटता है और न संकट के रास्ते को पार करके परमानन्दमय योग की शरण में जाता है।

संग्राम भूमि के दिक्पालों को भी भगवान श्री हरि का अविनाशी पद भी नहीं प्राप्त होता। इस भवाटवी में भटकने वाले बनजारों का दल कभी लताओं का आश्रय लेते हैं, उन पर रहने वाले पक्षियों के मधुर स्वर में फँस जाते हैं। कभी सिंहों के डर से बगुला, कंक और गिद्धों से सम्पर्क कर लेते हैं। उन्हें भटकते-भटकते अपने परमपुरुषार्थ का अन्त तक ज्ञान नहीं हो पाता।

जड़ भरत ने कहा— हे रहूगण! उत्तम भी इस मार्ग में भटक रहे हो। आगे से प्रजा को दण्ड देने के स्थान पर प्रजा के प्रेमी बनो। भगवान श्री हरि की भक्ति से इस संसार रूपी दलदल से पार हो जाओगे। यही मुक्ति का एक मात्र रास्ता है।

राजा रहूगण बोले— आपके चरण कमलों की धूल मिल जाने से मेरे सारे पाप नष्ट हो गए हैं। आपको सत्संग प्राप्त करके मेरा अज्ञान नष्ट हो गया है। मेरा नमस्कार स्वीकार करें। जड़ भरत जी ने श्री हरि में अनुरक्त रहकर अपनी पत्नी, पुत्र, मित्र और राज्य आदि को युवावस्था में ही त्याग दिया था। उन्होंने लक्ष्मी को प्राप्त करने की लेश मात्र भी इच्छा नहीं रखी। उन्होंने अपना मन पूरी तरह से भगवान श्री हरि की भक्ति और उनके चरण कमलों में अर्पित कर दिया था। राजर्षि जड़ भरत के पवित्र गुणों और कर्मों की भक्त आज भी प्रशंसा करते हैं।

९. भरत के वंश का वर्णन

श्री शुकदेव जी ने बताया कि भरत के पुत्र का नाम सुमति था। उसने ऋषभ देव जी के मार्ग का अनुसरण किया। भरत जी की दूसरी पत्नी वृद्धसेना से देवताजित पुत्र उत्पन्न हुआ। देवाजित की पत्नी असुरी से देवद्युम्न पुत्र उत्पन्न हुआ। देवद्युमन्न की पत्नी धेनुमति से परमेष्ठी पुत्र उत्पन्न हुआ। परमेष्ठी की पत्नी सुवर्चला से प्रतिहर्त्ता, पुस्तोता और उग्दाता नामक तीन पुत्र उत्पन्न हुए। प्रतिहर्त्ता की पत्नी स्तुति के गर्भ से अज और भूमा ने जन्म लिया। भूमा की पत्नी ऋषिकुल्या से प्रस्ताव और प्रस्ताव की पत्नी नियुत्सा से विभु ने जन्म लिया। विभु की पत्नी मति से पृथुषेण का जन्म हुआ। पृथुषेण की पत्नी आकृति से नक्त का जन्म हुआ। नक्त की पत्नी द्रुति से उदारकीर्ति का जन्म हुआ। उदारकीर्ति भगवान श्री हरि के अंश थे।

महाराजा गय प्रजा का पालन-पोषण बड़े लाड़-प्यार से करते थे। उन्होंने कई तरह के यज्ञों का अनुष्ठान किया। उनके यज्ञ में इन्द्र अधिक सोमपान कर जाने से उन्मत्त हो गए। निश्छल भाव से समर्पित किए गए यज्ञफल को भगवान ने साक्षात् प्रकट होकर ग्रहण किया।

महाराज गय की पत्नी जयन्ती के गर्भ से चित्ररथ, सुगति और अवरोध नामक तीन पुत्र हुए। चित्ररथ की पत्नी ऊर्णा से सम्राट का जन्म हुआ। सम्राट की पत्नी

उत्कला से मरीची और मरीचि की पत्नी बिन्दुमती से बिन्दुमन, बिन्दुमन की पत्नी सरधा से मधु, मधु की पत्नी सुमना से वीरव्रत और वीरव्रत की पत्नी भोजा से मन्थु और प्रमन्थु का जन्म हुआ। मन्थु की पत्नी सत्य के गर्भ से भौवन और भौवन की पत्नी दूषणा के गर्भ से त्वष्टा का जन्म हुआ। त्वष्टा के विरोचना, विरोचना के विरज और विरज की पत्नी विषूची के गर्भ से शतजित आदि सौ पुत्र और एक कन्या का जन्म हुआ। विरज ने प्रियव्रत वंश को विभूषित किया। विरोचन को पुत्र बलि सुतललोक में निवास करते हैं।



१०. गंगा जी का विवरण, भगवान शंकरकृत संकर्षण देव की स्तुति

श्री शुकदेव जी ने बताया कि जब भगवान श्री हरि ने बलि की यज्ञशाला में त्रिलोकी नापने के लिए अपना पैर फैलाया तो उनके बाएँ पैर के अँगूठे के नख से पृथ्वी का ऊपरी भाग फट गया। उस छिद्र से होकर जल की धारा निकली, धारा के श्री हरि के चरण कमल धोने से वह भगवत्पदी नाम से पुकारी गई।

वह धारा हज़ारों वर्ष बीतने पर स्वर्ग के शिरो भाग में स्थित ध्रुवलोक में उतरी जिसे विष्णु पद कहते हैं। ध्रुव जी अपने कुल देवता का चरणोदक समझ कर आज भी जल को सिर पर चढ़ाते हैं। वहाँ से वह गंगा

जी क़रोड़ों विमानों से घिरे आकाश में होकर उतरती है। भगवान शंकर जी उसको अपनी जटा में उसके वेग को धारण कर पृथ्वी पर उतारते हैं। इसके बाद गंगा मेरू पर्वत के शिखर पर उतरकर ब्रह्मपुरी में गिरती हैं। वहाँ से गंगा सीता, अलकनन्दा, चक्षु और भद्रा नाम से चार धाराओं में बट जाती है। चारों दिशाओं में बहती हुई गंगासार में पहुँच कर समुद्र में मिल जाती है। इलावृत में वर्ष में एक मात्र शिव जी ही पुरुष हैं। अगर वहाँ पर गलती से कोई चला जाता है, तो पार्वती के श्राप से वह स्त्री रूप में परिवर्तित होकर पहुँचता है।

भगवान शिवजी, भगवान श्री कृष्ण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध और संकर्षण संज्ञक चतुर्व्यूह मूर्तियों में अपनी कारणरूपा संकर्षण की तमः प्रधान चौथी मूर्ति का ध्यान स्थित कर मनोमय विग्रह रूप में चिन्तन करते हैं। अव्यक्तमूर्ति ओंकार स्वरूप परमपुरुष श्री भगवान को प्रणाम है तथा आप स्वयं सम्पूर्ण ऐश्वर्यों के परम आश्रय हैं।

वेद मंत्र आपको संसार की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय का कारण बताते हैं। परन्तु स्वयं तीनों विकारों से रहित हैं। इसलिए आपको अनन्त कहा जाता है। आपके सहस्त्र मस्तकों पर यह भूमण्डल सरसों के दानों के समान रखा हुआ है। आपको यह भी ज्ञात नहीं है कि वह कहाँ रखा है। मैं अहंकार अपने त्रिगुणमय तेज से देवता, इन्द्रिय और भूतों की रचना करता हूँ।



षष्ठम स्कन्ध

१. अजामिलोपाख्यान (कथा)

श्री शुकदेव जी ने बताया कि जो व्यक्ति धीरे-धीरे भगवान के नियमों का पालन करता है, वह पाप वासनाओं से मुक्त होकर कल्याणप्रद तत्वज्ञान को प्राप्त कर लेता है।

धर्मज्ञ और श्रद्धावान धीर व्यक्ति , तपस्या, दान, मन की स्थिरता, इन्द्रियदमन, ब्रह्मचर्य, यम, नियम, बाहर भीतर की पवित्रता, सत्य, इन नौ साधनों से मन, वाणी और शरीर द्वारा किए गए बड़े से बड़े पापों को भी नष्ट कर देती है। जिन व्यक्तियों ने अपने भगवत गुण अनुरागी मन को भगवान श्री कृष्ण के चरण कमलों में मरते समय एक बार भी लगा दिया तो वह व्यक्ति यमराज और उनके दूतों के दर्शनों से बच जाता है। महात्मा व सिद्ध पुरुष एक प्राचीन इतिहास बताते हैं।

कन्नौज में एक वैश्या पुत्र अजामिल रहता था। उसका सदाचार नष्ट हो गया था। उसने भगवान का पूजा-पाठ करना आदि सब छोड़ दिया था। वह चोरी करके, राहगीरों को लूटकर और जुआ खेलकर अपने परिवार का पेट भरता था। अजामिल के दस पुत्र थे। सबसे छोटे पुत्र का नाम नारायण था। नारायण ही अपने बूढ़े पिता की देखभाल करता था।

कुछ समय पश्चात् अजामिल का अन्तिम समय आ गया। यमराज ने उसे पकड़ कर लाने के लिए तीन दूत

भेजे। अजामिल उन दूतों को देखकर डर गया और अपने छोटे पुत्र नारायण को 'नारायण! नारायण!' कहकर पुकारने लगा। भगवान के पार्षदों ने समझा यह ब्राह्मण अपने अन्तिम समय में भगवान नारायण को पुकार रहा है। इस कारण भगवान के पार्षद भी वहाँ पहुँच गए। यमराज के पार्षदों ने कहा कि यह कुकर्मी व्यक्ति है। अपनी पत्नी को छोड़कर एक वैश्या के साथ रमण करता था। इसने अपने जीवन में अनेकों पाप कर्म किए हैं। इस कारण हम इसे यमराज के पास ले जाने को आए हैं। भगवान के पार्षदों ने कहा— इसने अपने जन्म की राशियों का भगवान श्री नारायण का नाम लेकर पूरा प्रायश्ति कर लिया है। जिस समय इसने चार अक्षरों वाले नारायण का उच्चारण किया तो उसी समय इसके समस्त पापों का प्रायश्चित हो गया।

अन्त समय में भगवान नारायण का नाम लेने से प्रत्येक व्यक्ति के पाप नष्ट हो जाते हैं और मोक्ष प्राप्त कर लेता है। इस कारण हे यमदूतों! आप अजामिल को नहीं ले जा सकते। यमदूत वापिस चले गए। भगवान श्री हरि के पार्षदों को देखकर अजामिल का मन भगवान में रम गया। अजामिल सम्बन्धियों को मोह छोड़ कर हरिद्वार चला आया। अजामिल की बुद्धि त्रिगुणमयी प्रकृति से ऊपर उठकर भगवान में रम गई। पार्षदों के दर्शन पाने के बाद उसने गंगा के तट पर अपना शरीर त्याग दिया। भगवान के पार्षद अजामिल को स्वर्णयुक्त विमान में बैठकर बैकुण्ठ को ले गए।

२. दक्ष द्वारा भगवान की स्तुति

राजा प्राचीन बर्हि के दस पुत्र थे जिनका नाम प्रचेता था। उन्होंने तपस्या हेतु समुद्र में प्रवेश किया। समुद्र से बाहर आकर उन्होंने देखा कि पृथ्वी वृक्षों से ढकी है। तब उन्होंने वृक्षों को जलाना प्रारम्भ किया। वनस्पतियों के राजा चन्द्रमा ने प्रचेताओं को समझाया और उन्हें वृक्षों को जलाने से रोका और उन्हें बताया कि इन वृक्षों ने प्रमलोचा अप्सरा की सुन्दर पुत्री का पालन पोषण किया है। आपको ये कन्या सेवा हेतु प्रदान की जाती है। प्रचेताओं ने धर्मानुसार उस कन्या के साथ विवाह किया।

उन प्रचेताओं के द्वारा उस कन्या से प्राचेतस दक्ष की उत्पत्ति हुई। दक्ष का प्रजा ने सृष्टि के तीनों लोकों को भर दिया। दक्ष ने आकाश में रहने वाले देवताओं, असुरों और मनुष्यों आदि प्रजा की सृष्टि संकल्प द्वारा की थी। दक्ष ने देखा कि सृष्टि का विकास नहीं हो रहा है। तब दक्ष ने विन्ध्याचल के पर्वतों पर घोर तपस्या की। भगवान दक्ष की तपस्या से प्रसन्न होकर उसे प्रत्यक्ष दर्शन दिए। भगवान ने बताया कि सृष्टि की रचना हेतु पंचजन प्रजापति की पुत्री असन्की से विवाह करो। तुम स्त्री के साथ सहवास से सृष्टि उत्पन्न करने में सफल रहोगे। इसके बाद मेरी माया से स्त्री पुरुष के संयोग से प्रजा उत्पन्न होती रहेगी। इतना कहकर भगवान श्री हरि अन्तर्ध्यान हो गए।



३. श्री नारद जी के उपदेश से दक्ष पुत्रों की विरक्ति तथा नारद जी को दक्ष का शाप

दक्ष प्रजापति ने असिन्की से हर्यश्व नाम के दस हज़ार पुत्र उत्पन्न किए। दक्ष ने अपने पुत्रों को सन्तान उत्पन्न करने का आदेश दिया। हर्यश्व आज्ञा पाकर नारायण सर तीर्थ पर तपस्या करने लगे। वहाँ पर नारद जी गए और हर्यश्वों से कहा कि एक ऐसा देश है जिसमें केवल एक ही पुरुष है और एक ऐसा बिल है जिससे बाहर निकलने का रास्ता नहीं है। नारद जी ने इस प्रकार की अनेक पहेलियाँ सुनाई। हर्यश्व जन्म से बुद्धिमान थे। वे नारद जी की पहेलियों से स्वयं गूढ़ विचार कर सोचने लगे। वास्तव में नारद जी का कहना सत्य है। यह लिंग शरीर ही है जिसे सामान्य रूप से जीव कहते हैं। हर्यश्वों ने एक मत होकर नारद जी की परिक्रमा करके मोक्ष पथ के पथिक बन गए। जब दक्ष प्रजापति को ज्ञात हुआ कि नारद जी के उपदेश से मेरे पुत्र अपने कर्त्तव्य से च्युत हो गए हैं और सब मोक्ष के रास्ते पर लग गए हैं।

ब्रह्माजी ने दक्ष प्रजापति को बहुत समझाया। इस पर दक्ष ने असिन्की के गर्भ से एक हज़ार पुत्र और उत्पन्न किए। उनका नाम शवलाश्व रखा। प्रजा सृष्टि के उद्देश्य से वे तप करने नारायण सरोवर पर गए। दक्ष के पुत्र शबलाश्व प्रजा सृष्टि के लिए तपस्या कर रहे

थे। उनके पास भी नारद जी पहुँचे और उनको भी वही मंत्र दिया और मोक्ष का रास्ता दिखाया। उन्होंने भी वही रास्ता अपनाया। जब दक्ष प्रजापति को ज्ञात हुआ तो उन्होंने नारद जी को बहुत बुरा-भला कहकर फटकार दिया। उन्होंने नारद जी को शाप दिया कि जाओ तुम्हें संसार में रहने के लिए कोई जगह नहीं मिलेगी और लोक लोकान्तरों में भटकते रहोगे।



४. दक्ष प्रजापति की साठ कन्याओं के वंश का विवरण

दक्ष प्रजापति ने अपनी पत्नी असिन्की के गर्भ से साठ कन्याओं को जन्म दिया। इनमें से दस पुत्रियाँ धर्म को, तेरह पुत्रियाँ कश्यप जी को, सत्ताइस पुत्रियाँ चन्द्रमा को, दो भूत को, दो अंगिरा को, दो कृशाश्व को और चार पुत्रियाँ ताक्ष्यर्नामधारी कश्यप जी को ब्याही गईं। इनकी सन्तानें तीनों लोकों में फैली हुई हैं। धर्म की दस पत्नियों के नाम संकल्पा, मुहूर्त, बसु, मुरुत्वती, साध्या, विश्वा, जामि, ककुम, लम्बा और भानु थे। इनके पुत्रों के नाम भानु का पुत्र देव ऋषभ और देवऋषभ का इन्द्रसेन था। लम्बा का पुत्र विद्योत और विद्योत का पुत्र मेघगण था। ककुभ का पुत्र संकट और संकट का पुत्र कीकट था। कीकट के पुत्र पृथ्वी के सम्पूर्ण किलों के अभिमानी देवता थे।

जामि का पुत्र स्वर्ग और स्वर्ग के पुत्र का नाम नन्दी था। विश्वा का पुत्र विश्वदेव था। साध्या का पुत्र साध्यगण और साध्यगण का पुत्र अर्थ सिद्धि था। मरुत्वती के पुत्रों को नाम मरुत्वान और जयन्त थे। जयन्त भगवान श्री कृष्ण के अंश थे। उनको उपेन्द्र भी कहा जाता है। मुहर्ता से मुहूर्त अभिमानी देवता हुए। संकल्पा का पुत्र संकल्प था और संकल्प के पुत्र का नाम काम था।

बसु के आठों पुत्र वसु हुए। इनके नाम विभावसु, वसु, दोष, अग्नि, अर्क, ध्रुव, प्राण, द्रोण थे। द्रोण की पत्नी अभिमति से भय, शोक और हर्ष अभिमानी देवता हुए। प्राण की पत्नी उर्जस्वती से सह, आयु और पुरोजव तीन पुत्र हुए। ध्रुव की पत्नी धरणी से अनेकों नगरों के अभिमानी देवता उत्पन्न हुए। अर्क की पत्नी वासना से तषणा पुत्र हुआ। अग्नि की पत्नी धारा से द्रविणक पुत्र हुआ। दोष की पत्नी शर्वरी से शिशुमार पुत्र हुआ। वह भगवान का कला अवतार था। वसु की पत्नी आंगिरसी से शिल्पकला अधिपति विश्वकर्मा हुआ। विश्वकर्मा की स्त्री कृति से चाक्षुष मनु हुए और चाक्षुस से पुत्र विश्वदेव एवं साध्यगण हुए। विभावसु की स्त्री उषा से व्युटा, रोचिष और आतप हुए।

आतप के पंचायाम (दिवस) नामक पुत्र हुए। भूत की पत्नी दक्षनन्दिनी सरूपा से रुद्रगण उत्पन्न हुए। अंगिरा प्रजापति की पहली स्त्री स्वधा से पितृगण उत्पन्न हुए और दूसरे पत्नी सती से अथर्वा गिरस नामक वेद

को पुत्र रूप में स्वीकार कर लिया। कृशाश्व की पत्नी अर्चि से धुम्रकेश का जन्म हुआ। कश्यप की चार पत्नियाँ विनता, कद्रू, पतंगी और यामिनी थी। पतंगी से पक्षियों का और यामिनी से शलभो (पतिंगो) का जन्म हुआ। विनता के पुत्र गरुड़ हुए। ये भगवान श्री हरि के वाहन हैं। विनता का दूसरा पुत्र अरुण था जो सूर्य भगवान का सारथी है।

कश्यप जी की पत्नियों के नाम अदिति, दिति, दनु, काष्ठ अरिष्ठा, सुरसा, इला, मुनि, क्रोधवशा, ताम्र, सुरभि, सुरमा और तिमी था। तिमी के पुत्र जलचर जन्तु और सुरमा के बाघ, सिंह थे। सुरभि के पुत्र भैंस, गाय तथा दो खुर वाले पशु थे। ताम्रा की संतानें बाज, गिद्ध आदि शिकारी पक्षी थे। मुनि के अप्सरायें उत्पन्न हुईं। क्रोधवशा की संतानें साँप, बिच्छु, विषैले जन्तु थे।

इला से वृक्ष लता आदि वनस्पतियाँ, सुरसा से यातुधान (राक्षस) उत्पन्न हुए। अरिष्टा से गन्धर्व और काष्ठा से घोड़े और एक खुर वाले पशु हुए। दनु के इकसठ पुत्र हुए। उनमें से प्रमुख के नाम— शम्बर, अरिष्ट, हयग्रीव, विभावसु, अयोमुख, शंकुशिरा, स्वर्भानु कपिल, अरुणा, प्रलोम, वृषपर्वा, एकचक्र, अनतापन, धूम्रकेश, विरूपाक्ष, विप्रचिति और वर्जय हैं।

स्वर्भानु की कन्या सुप्रभा से नमुचिने और वृषपर्वा की पुत्री शर्मिष्ठा से ययाति ने विवाह किया। दनु के पुत्र वैश्वानर के चार कन्याएँ— उपदानवी, हयशिरा, पुलोमा और कली थी। उपदानवी का विवाह हिरण्याक्ष

के साथ हयशिष्ट का विवाह क्रतु के साथ सम्पन्न हुआ। ब्रह्मा की आज्ञा से कश्यप जी ने वैश्वानर की पुत्री पुलोमा और कालका के साथ विवाह किया। उनसे पुलौम और कालकेय नाम के साठ हज़ार रणवीर दानव हुए, उनका दूसरा नाम निवातकवच था। ये यज्ञों के काम में विघ्न डालते थे। अर्जुन ने इन्द्र को प्रसन्न करने के लिए अकेले ही उन्हें मार डाला। विप्रचिति की स्त्री सिंहिका के गर्भ से एक सौ एक पुत्र हुए। सबसे बड़ा राहु था, जिसकी गणना ग्रहों में हो गई, बाकी सौ केतु हुए।

अदिति का वंश

इस वंश में देवाधिदेव नारायण ने अपने अंश से वामन रूप से अवतार ग्रहण किया। अदिति के पुत्र विवस्वान अर्यमा, पूषा, त्वष्टा, सविता, भग, धाता, विधाता, वरुण, मित्र, इन्द्र और त्रिविक्रम (वामन) थे। विवस्वान की स्त्री महाभाग्यवती संज्ञा से श्राद्धदेव मनु और यम-यमी का जोड़ा हुआ। संज्ञा ने घोड़ी का रूप धारण कर भगवान सूर्य के द्वारा भूलोक में दोनों अश्विनी कुमारों को जन्म दिया।

विवस्वान की दूसरी पत्नी छाया से शनैश्चर और सावर्णि मनु पुत्र तथा तपसी नाम की पुत्री पैदा हुई। तपसी ने संवरण को पति मान लिया। अर्यमा की पत्नी मातृ ने चर्षणी पुत्र उत्पन्न किया। वे कर्त्तव्य अकर्त्तव्य

के ज्ञान से युक्त थे। इसलिए ब्रह्माजी ने उन्हीं के आधार पर मनुष्य जाति की कल्पना की। दैत्यों की छोटी बहिन रचना त्वष्टा की पत्नी थी। रचना के गर्भ से संनिवेश और विश्वरूप उत्पन्न हुए। जब देवगुरु बृहस्पति जी को इन्द्र ने अपमानित किया तब उन्होंने देवताओं का परित्याग कर दिया था। देवताओं ने विश्वरूप को ही अपना गुरु और पुरोहित बनाया था।



५. बृहस्पति जी द्वारा देवताओं का त्याग विश्वरूप को देवगुरु रूप में वरण

इन्द्र को त्रिलोकी का राज्य पाकर गर्व हो गया था। वह अपनी पत्नी शचि के साथ सिंहासन पर आरुढ़ थे। उस समय उन्चास मरुद्गण, आठ वसु, ग्यारह रुद्र, आदित्य, ऋभुगण, गन्धर्व, ब्रह्मादि, मुनिगण, विश्वदेवा, साध्यगण और दोनों अश्विनी कुमार सेवा में उपस्थित थे। देवगुरु बृहस्पति जी वहाँ आए। उनका स्वागत करने के लिए इन्द्र न तो खड़े हुए और न उन्हें आसन प्रदान किया। गुरु जी वहाँ से चुपचाप निकलकर घर चले आए। इन्द्र ने घमण्ड में चूर होकर गुरु बृहस्पति जी का तिरस्कार कर दिया। घर आकर बृहस्पति जी योग द्वारा अन्तर्धान हो गए। इन्द्र ने बृहस्पति जी को तलाश किया परन्तु वे नहीं मिले।

असुरों ने अपने गुरु शुक्राचार्य के कहने पर देवताओं

पर विजय प्राप्ति हेतु आक्रमण कर दिया युद्ध में देवताओं के अंग कट-कट कर गिरने लगे। तब देवता इन्द्र के साथ ब्रह्माजी के पास गए। ब्रह्माजी ने देवताओं से कहा कि आप लोग त्वष्टा के पुत्र विश्वरूप के पास जाओ और उसे पुरोहित बना लो। सब देवता विश्वरूप ऋषि के पास गए और बोले— हम एक प्रकार से आपके पितर भी हैं। आप अपने तपोबल से यह दुःख और पराजय टाल दो। आपकी आज्ञा का पालन करना ही हमारा धर्म है। विश्वरूप ने प्रतिज्ञा लेकर देवताओं की पुरोहिती स्वीकार कर ली। इसके बाद विश्वरूप ने वैष्णवी विद्या के प्रभाव से असुरों से सम्पत्ति छीन कर इन्द्र को दिला दी। इन्द्र ने असुरों पर विजय प्राप्त कर ली। उदार बुद्धि विश्वरूप ने उसी नारायण कवच विद्या का उपदेश इन्द्र को सुनाया। इन्द्र ने नारायण कवच की विद्या ग्रहण कर ली।



६. नारायण कवच का उपदेश

देवताओं ने विश्वरूप को अपना पुरोहित बना लिया। विश्वरूप ने देवताओ से कहा कि अपनी रक्षा के लिए नारायण कवच धारण कर लेना चाहिए। उसकी विधि इस प्रकार है— बिना कुछ बोले पवित्रता से ऊँ नमो नारायणाय और ऊँ नमो भगवते वासुदेवाय मंत्रों से न्यास करें। पहले ऊँ नमो नारायणाय मंत्र से पैरों, घुटनों, जाघों,

पेट, हृदय, वृक्षस्थल, मुख और सिर में न्यास करें। इसके बाद ॐ नमो भगवते वासुदेवाय मंत्र का दाईं तर्जनी से बाईं तर्जनी तक, दोनों हाथों की आठ अंगुलियों और दोनों अंगूठों की दो-दो गाँठों में न्यास करें। इसके बाद ॐ विष्णवे नमः मंत्र के पहले अक्षर ॐ का हृदय में, वि ब्रह्मरन्ध में, ष का भौहों के बीच में, ण का चोटी में, वे का दोनों नेत्रों में और न का शरीर की सब गाँठों में न्यास करें। बाद में ॐ मः अस्त्राय फट कहकर दिग्बन्ध करें। फिर श्री हरि का मनन करें। तत्पश्चात् विद्या, तेज और स्वरूप कवच का पाठ करें। सदैव भगवान श्री हरि की भक्ति को धारण किए रहना चाहिए। हमेशा बोलते रहें कि मेरी हर समय हर वक्त आवश्यकता के समय रक्षा करते रहें।



८. विश्वरूप का वध, वृत्रासुर द्वारा देवताओं की हार, देवताओं का दधीची ऋषि के पास जाना

श्री शुकदेव जी ने बताया कि विश्वरूप के तीन सिर थे। वह एक सिर से सोमरस पीता था, दूसरे सिर से सुरा पीता था और तीसरे सिर से अन्न खाता था। उसकी माता असुर कुल से थी। इस कारण यज्ञ का कुछ भाग असुरों को पहुँचाया करता था। इन्द्र को पता चलने पर उसने विश्वरूप के तीनों सिरों को काट डाला। सोम रस पीने वाला सिर पपीहा, सुरा पान करने वाला

सिर गौरैया और अन्न खाने वाला सिर तीतर बन गया। इन्द्र पर ब्रह्महत्या का पाप लगा। ब्रह्महत्या के दोष को चार भागों में बाँटा गया। पहला भाग पृथ्वी को, दूसरा भाग वृक्ष को, तीसरा भाग जल को और चौथा भाग स्त्रियों में बाँट दिया गया।

विश्वरूप की हत्या का हाल उसके पिता त्वष्टा को चला तो पिता ने कहा— हे इन्द्रशत्रो! तुम अपने शत्रु को मार डालो। यह सुनते ही शत्रु को मारने के लिए हवन यज्ञ किया जाने लगा। इसके समाप्त होने पर अन्वाहार्य पचन नामक अग्नि से भयानक दैत्य प्रकट हुआ। उसने तीन नोक वाले त्रिशूल से अन्तरिक्ष को उठा रखा था। त्वष्टा के तमोगुणी पुत्र ने सब लोकों को घेर लिया। उस क्रूर पुरुष का नाम वृत्रासुर पड़ा। वह युद्ध में देवताओं के अस्त्र-शस्त्रों को निगल जाता था। इससे देवता घबरा गए। वे सब मिलकर आदि पुरुष भगवान श्री नारायण के पास गए। उन्होंने भगवान से इस दुष्ट से बचाने के उपाय के बारे में पूछा। आप दुष्ट वृत्रासुर का नाश करने की कृपा करें।



८. वृत्रासुर का वध

भगवान ने देवताओं से कहा— तुम शीघ्र ऋषिवर दधीची के पास जाओ। ऋषि से उनके शरीर की भिक्षा माँगो। उनका शरीर उपासना, व्रत और तपस्या से अत्यन्त दृढ़ हो गया है। उनकी हड्डियों से वज्र बनाकर शत्रु पर

विजय प्राप्त करो। भगवान की आज्ञानुसार देवताओं ने दधीची ऋषि के पास जाकर याचना की। दधीची ऋषि ने पहले तो ज्ञान का उपदेश दिया। अन्त में कहा कि परमार्थ के लिए मैं अपना शरीर देने को उद्यत हूँ। महर्षि दधीची ने परब्रह्म परमात्मा में अपने को लीन करके अपना शरीर त्याग दिया।

इन्द्र ऋषि दधीची की हड्डियों को लेकर विश्वकर्मा के पास गए। उन्होंने उन हड्डियों से वज्र बनाकर दे दिया। देवता और दैत्यों में भयंकर युद्ध हुआ। हज़ारों की संख्या में दैत्य, दानव, यक्ष आदि लड़ने को सामने आए। उस वज्र से सब राक्षस और दानव मारे गए। वृत्रासुर ने अपना त्रिशूल फेंका और गदा से उनके वाहन ऐरावत पर आक्रमण किया। ऐरावत के सिर पर चोट आई परन्तु इन्द्र ने अपनी विद्या से ऐरावत के माथे पर चोट को ठीक कर दिया। फिर वृत्रासुर पर आक्रमण किया।

कुछ समय बाद इन्द्र के हाथ से छूटकर वज्र युद्ध भूमि में गिर गया। वृत्रासुर बोला— जिस प्रकार तुमने विश्वरूप का सिर काटा था उसी तरह मैं तेरा सिर काटकर अपने भाई का बदला लूँगा। भूतनाथ पर तुम्हारे सिर को चढ़ाऊँगा। वह बोला— युद्ध एक प्रकार का जुआ है। इसमें प्राणों की बाज़ी लगती है। बाण पासे का काम करते हैं और वाहन ही चौसर है। इसलिए इसमें यह पता नहीं चलता कौन विजयी होगा? इन्द्र ने आदरभाव से वृत्रासुर को बातों में लगाकर मौका पाकर अपना वज्र उठा लिया। इसके बाद वज्र से वृत्रासुर का

सिर काट कर उसकी इह लीला समाप्त कर दी। उसके मारे जाने पर देवताओं ने प्रसन्नता प्रकट करते हुए इन्द्र पर फूलों की वर्षा की। वृत्रासुर की ज्योति उसके शरीर से निकल कर भगवान में लीन हो गई।



९. इन्द्र पर ब्रह्महत्या का आक्रमण

वृत्रासुर के वध से सब देवता प्रसन्न हुए परन्तु इन्द्र पर ब्रह्महत्या ने आक्रमण कर दिया। ब्राह्मणों ने इन्द्र से कहा—तुम इसका वध कर दो। हम अश्वमेघ यज्ञ कराकर ब्रह्महत्या के पापों से मुक्ति दिला देंगे। देवराज इन्द्र ने देखा कि ब्रह्महत्या साक्षात् चाण्डालनि का रूप धरकर पीछे-पीछे दौड़ी चली आ रही है। वह सफेद बालों को छितराकर—ठहर ठहर जा, ठहर जा! चिल्लाती आ रही है। इन्द्र को उसके भय से कहीं भी शरण नहीं मिली। अन्त में वह मान सरोवर में एक हज़ार वर्ष तक छिपे रहे। उनको भोजन की सामग्री न मिल सकी। इन्द्र ने स्वर्ग में लौटकर आने पर वेदवादी ऋषियों ने अश्वमेघ यज्ञ कराया। इससे इन्द्र सब पापों से छूटकर फिर पूजनीय बन गए।



१०. वृत्रासुर का पूर्व चरित्र

शूरसेन देश में महाराजा चित्रकेतु का शासन था। उनके हज़ारों रानियाँ थीं, परन्तु सबकी कोख सूनी रही।

राजा को चिंता सताने लगी। एक दिन वहाँ अंगिरा ऋषि पधारे। राजा चित्रकेतु ऋषि से कहने लगे— महर्षि! सन्तान न होने के कारण मैं बहुत दुःखी हूँ। मुझे एक पुत्र प्रदान कीजिए, जिससे परलोक के दुःखों से छुटकारा मिल सके। चित्रकेतु की सबसे बड़ी रानी का नाम कृतद्युति था। अंगिरा ऋषि ने पुत्रेष्टि यज्ञ कराकर कृतद्युति को यज्ञ का अवशेष प्रसाद दिया और कहा राजन! तुम्हें एक पुत्र होगा जो हर्ष और शोक दोनों ही देगा।

कृतद्युति को एक पुत्र हुआ। कृतद्युति की गोद भर जाने से उसकी सौतें उससे द्वेष करने लगीं। उन्होंने मिलकर एक दिन बच्चे को ज़हर देकर मार डाला। राजा और राजकुमार की माता दोनों विलाप करने लगे। उसी समय नारद जी और महर्षि अंगिरा वहाँ आए। उन्होंने समझा-बुझा कर राजा और रानी को चुप कराया। आपसे पहले ही बताया था कि पुत्र प्राप्ति पर आपको सुख और दुःख दोनों प्राप्त होंगे। इससे पुत्र के जन्म होने पर सुख और मृत्यु होने पर दुःख हुआ है।



११. चित्रकेतु को पार्वती का शाप, वृत्रासुर का जन्म

महयोगी चित्रकेतु करोड़ों वर्ष तक सुमेरु पर्वत की घाटियों में विहार करते रहे। एक दिन भगवान से प्राप्त

विमान पर बैठकर चित्रकेतु कहीं जा रहे थे। रास्ते में कैलाश पर उन्होंने देखा कि भगवान शंकर मुनियों की सभा में सिद्ध चरणों के मध्य में बैठे हुए हैं। साथ ही भगवती पार्वती उनकी गोद में बैठी हुई हैं तथा शिवजी का एक हाथ उन्हें आलिंगन किए हुए है।

चित्रकेतु भगवान शिव के पास जाकर हँसकर बोले—आप संसार के धर्म शिक्षक और गुरु हैं। आप भरी सभा में पार्वती को शरीर से चिपका कर बैठे हुए हैं। प्रायः साधारण व्यक्ति भी एकान्त में ही इस प्रकार बैठते हैं। यह सुनकर पार्वती क्रोध में भरकर बोलीं—इस अधम क्षत्रिय ने महात्माओं का तिरस्कार किया है। यह मूर्ख भगवान श्रीहरि के चरणों में रहने के लायक नहीं है। इतना कहकर पार्वती जी ने चित्रकेतु को शाप दिया— हे दुर्मते! तुम पापयुक्त असुर योनि में जाओ।

चित्रकेतु ने हाथ जोड़कर पार्वती जी के शाप को स्वीकार कर लिया और विमान में बैठकर चल दिया। समय आने पर चित्रकेतु की मृत्यु हो गई और दानवयोनि को ग्रहण किया। त्वष्टा की पत्नी दक्षिणाग्नि के गर्भ से इन्होंने पुनः जन्म लिया। इस बालक का नाम वृत्रासुर रखा गया। इस असुर योनि में भी वृत्रासुर भगवत स्वरूप के ज्ञान एवं भक्ति से परिपूर्ण रहा।



१२. अदिति और दिति की संतानें तथा मरुदगण की उत्पत्ति का वर्णन

सविता की पत्नी पृश्नि के गर्भ से सावित्री, व्याहृति, त्रयी, अग्निहोत्र, पशु, सोम, चातुर्मास्य और पंचमहायज्ञ नामक आठ संताने उत्पन्न हुईं। भग की पत्नी सिद्धि से महिमा, विभु और प्रभु नामक तीन पुत्र और आशीष नाम की एक पुत्री उत्पन्न हुई। धाता के कुहू सिनीवाली, राका और अनुमति नाम की चार पत्नियाँ थीं। कुहू का पुत्र सायं, सिनीवाली का पुत्र दर्श, राका के पुत्र का नाम प्रातः और अनुमति के पूर्णमास पुत्र हुआ।

धाता के छोटे भाई विधाता की पत्नी क्रिया के गर्भ से पुरीष्य नाम के पाँच अग्नियों की उत्पत्ति हुई। वरुण की पत्नी चर्षणी के गर्भ से भृगुजी ने पुनः जन्म ग्रहण किया। इससे पहले भृगुजी ने ब्रह्मा के पुत्र के रूप में जन्म लिया था। महायोगी बाल्मीकि जी वरुण के पुत्र थे। उर्वशी को देखकर मित्र और वरुण दोनों का वीर्य स्खलित हो गया था। उन दोनों ने अपने वीर्य को घड़ों में रख दिया था। उसी वीर्य से अगस्त्य और वशिष्ठ मुनियों के जन्म हुए। मित्र की पत्नी रेवती थी। उनके उत्सर्ग, अरिष्ठ और पिप्पल पुत्र हुए।

देवराज इन्द्र की पत्नी का नाम पुलोमनन्दिनी शचि था। उनके जयन्त, ऋषभ और मीढ़वान तीन पुत्र उत्पन्न हुए। अदिति के गर्भ से स्वयं भगवान श्रीहरि ही योगमाया से वामन के रूप में अवतीर्ण हुए थे। उनकी पत्नी का

नाम कीर्ति था। उससे बृहच्छलोक नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। उसके सौभग आदि कई संतानें उत्पन्न हुईं।

कश्यप जी की दूसरी पत्नी दिति से दैत्य और दानव हिरण्यकशिपु और हिरणयाक्ष पुत्र उत्पन्न हुए। हिरण्यकशिपु की पत्नी का नाम कयाधु था। कयाधु के संह्लद, अनुह्लाद, ह्लाद और प्रह्लाद नामक चार पुत्र उत्पन्न हुए। सिंहिका नाम की एक पुत्री उत्पन्न हुई। सिंहिका का विवाह विप्रचिति नामक दानव से हुआ था। उससे राहु नाम का पुत्र हुआ, जिसका सिर अमृतपान के समय मोहिनी रूपधारी भगवान श्रीहरि ने अपने चक्र से काट दिया था। संह्लाद की पत्नी कृति से पंचजन नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। ह्लाद की पत्नी धमाने से वातापि और इल्वल पुत्र उत्पन्न हुए। इल्वल ने अगस्त्य के आतिथ्य के समय वातापि को पकाकर खिलाया था। अनुह्लाद की पत्नी सूर्म्या के वाष्कल और महिषासुर दो पुत्र उत्पन्न हुए। प्रह्लाद के पुत्र का नाम विरोचन था। विरोचन की पत्नी देवी के गर्भ से दैत्यराज बलि का जन्म हुआ। बलि की पत्नी अशना के गर्भ से बाणासुर तथा सौ अन्य पुत्रों ने जन्म लिया। बाणासुर भगवान शिव जी की आराधना कर गणों का मुखिया बन गया। दिति के हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष के अतिरिक्त उन्चास पुत्र और उत्पन्न हुए थे। उन्हें मरुदगण कहते हैं।

भगवान विष्णु ने इन्द्र का पक्ष लेकर दिति के दो पुत्रों हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष को अपने चक्र से मारा। दिति को जब इस बात का पता चला तो उसने

प्रण किया कि मैं भी इन्द्र को मरवाकर सन्तोष मानूँगी। मैं अब ऐसा उपाय करूँगी कि मुझे ऐसा पुत्र प्राप्त हो जो इन्द्र का घमण्ड चूर-चूर कर दे। दिति ने अपने पति कश्यप जी की सेवा में मन लगाया। उसकी सेवा से प्रसन्न होकर कश्यप जी ने कहा— मैं तुम्हारी इच्छा पूर्ण करूँगा। इस पर दिति ने कहा— मुझे ऐसा पुत्र चाहिए जो इन्द्र को मार डाले।

दिति की बात सुनकर मुनि कश्यप जी दुःखी होकर पछताने लगे। उन्होंने सोचा कि मैंने सोच समझ कर प्रण नहीं लिया। उन्होंने दिति से कहा कि एक साल तक विधि-विधान से व्रत का पालन करोगी तो इन्द्र को मारने वाला पुत्र तुम्हें अवश्य प्राप्त होगा। यदि कहीं त्रुटि रह गई तो वह बालक देवताओं का मित्र बन जाएगा। दिति ने पूछा— वे कौन से कार्य हैं जिनसे व्रत भंग न हो। मैं उनका विधि-विधान सहित पालन करूँगी। कश्यप जी ने कहा उस व्रत का नाम पुन्सवन व्रत है।



१३. पुन्सवन व्रत की विधि मरुदगण की उत्पत्ति का वर्णन

पुन्सवन व्रत को करने की विधि इस प्रकार है— सुहागिनी स्त्रियों और पति की पूजा करना, केवल प्रातः कलेवा करना, सौभाग्य के चिन्हों को लगाए रखना,

दूसरे के स्थान नग्नावस्था में न सोना, बिना पैर धोए अपवित्र अवस्था में या गीले पाँव से उत्तर या पश्चिम दिशा में सिर करके न सोना, बिना चादर ओढ़े घर से बाहर न जाना, किसी को न सताना, किसी को गाली न देना, नख और रोए न काटना, झूठ न बोलना, जल में घुसकर स्नान न करना, बिना धुला वस्त्र धारण न करना, पहिनी हुई माला न पहनना, क्रोध न करना, झूठा भोजन न करना, मांस युक्त अन्न न खाना, अंजलि में जल न पीना, झूठे मुँह संध्या समय बाल खोले हुए बिना श्रृंगार किए बाहर न जाना।

दिति अपनी कोख में कश्यप जी का वीर्य धारण कर व्रत का पालन करने लगी। देवराज इन्द्र को दिति के व्रत करने तथा उन्हें मारने वाले बालक को उत्पन्न करने की सूचना मिली। इस पर इन्द्र वेष बदल कर अपनी मौसी दिति की सेवा करने लगे। इन्द्र मौसी दिति की गलती पकड़ना चाहते थे। एक दिन दिति संध्या के समय झूठे मुँह बिना आचमन किए और बिना पैर धोए सो गई। दिति के व्रत का खण्डन हो गया। तब इन्द्र अपनी योग माया से दिति के गर्भ में प्रवेश कर गए। इन्द्र ने अपने वज्र से गर्भ के शिशु के सात हिस्से कर दिए। इसके बाद प्रत्येक भाग के सात-सात हिस्से और कर दिए। उन बालकों ने इन्द्र से कहा— हम तो आपके भाई मरुदगण हैं। भगवान की कृपा दृष्टि से दिति का गर्भ नष्ट नहीं हुआ। बच्चों के जन्म पर इन्द्र ने भी मौसी दिति के पुत्रों को सोमपायी देवता बना दिया। दिति इन्द्र

पर बहुत प्रसन्न हुई। ये सब बालक मरुदगण कहलाए। इस प्रकार उन्नचास मरुदगणों का जन्म बड़ा मंगलमय हुआ।



सप्तम स्कन्ध

१. नारद युधिष्ठिर संवाद और जय विजय कथा

नारद जी ने युधिष्ठिर से कहा कि राजसूय यज्ञ में चेदिराज शिशुपाल देखते-देखते भगवान श्री कृष्ण में समा गए। युधिष्ठिर जी ने नारद मुनि से कहा— इस रहस्य को हम सुनना चाहते हैं।

नारद जी ने कहा— पूर्वकाल में राजा वेन द्वारा भगवान की निन्दा करने पर ऋषियों ने उन्हें नरक में डाल दिया था। इस पर दमघोष का लड़का शिशुपाल और दन्तवक्त्र पानी पी-पीकर भगवान को गाली दे रहे थे। इस पर भी उनकी जीभ पर न कोढ़ हुआ न नरक को गए। ये दोनों मौसरे भाई विष्णु भगवान के प्रमुख पार्षद थे, परन्तु ऋषियों के श्राप से इन दोनों को अपने पद से च्युत होना पड़ा था। एक दिन ब्रह्माजी के मानस पुत्र सनकादि ऋषि बैकुण्ठ में गए। द्वारपाल जय-विजय ने उन्हें अन्दर जाने से रोका तो उन्होंने द्वारपालों को श्राप दे दिया कि तुम दोनों पापमय असुर योनियों में

जाओ। उन दोनों के प्रार्थना करने पर महात्माओं ने कहा— तीन जन्म के बाद शाप को भोगकर बैकुण्ठ में आ जाओगे।

पहले जन्म में दोनो दिति के पुत्र बनकर हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष के रूप में प्रकट हुए। दूसरे जन्म में विश्रवा मुनि के द्वारा कैकसी के गर्भ से रावण और कुम्भकरण के रूप में उत्पन्न हुए। तीसरे जन्म में दोनों युधिष्ठिर की मौसी के पुत्र बनकर शिशुपाल और दन्तवक्त्र नाम से उत्पन्न हुए।

भगवान श्री कृष्ण के चक्र का स्पर्श पाते ही उनके समस्त पाप धुल गए। जय-विजय शाप से मुक्त हो गए। वैर भाव के रूप में श्री कृष्ण का निरन्तर चिन्तन के कारण ये दोनों भगवान में लीन हो गए।



२. हिरण्याक्ष का वध, हिरण्यकशिपु का माता को समझाना

भगवान श्री हरि ने वाराह अवतार धारण कर हिरण्याक्ष का वध कर डाला था। यह सुनकर उसका भाई हिरण्यकशिपु आग बबूला हो गया और दैत्यों व दानवों से कहा— मैं अपने भाई के शत्रु का त्रिशूल से गला काट कर मार डालूँगा। आप सब पृथ्वी पर जाकर तपस्या, यज्ञ, व्रत और शुभ कर्म करने वालों को मार डालो। दैत्यों और दानवों ने नगर, गाँवों में जाकर ऋषियों

के आश्रमों, अहिरों की बस्तियों आदि को फूँक डाला। देवता स्वर्ग छोड़ कर छिपकर पृथ्वी पर घूमने लगे।

हिरण्यकाशिपु ने अपने भतीजे को सांत्वना दी और उनकी माता रुषाभानु और अपनी माता दिति को समझाते हुए कहा कि अब हिरण्याक्ष के लिए शोक नहीं करना चाहिए। एक प्राचीन इतिहास के अनुसार मरे हुए मनुष्य के सम्बन्धियों की बातचीत सुनाता हूँ—

उशी नगर देश में यशस्वी राजा सुयज्ञ रहता था। वह लड़ाई में मारा गया। उसकी पत्नी विलाप कर रही थी। उसके सब सम्बन्धी विलाप कर रहे थे। वहाँ पर यमराज एक बालक का रूप धारण कर आए और कहने लगे कि यह आत्मा किसी अन्य के गर्भ मे प्रवेश कर गई। प्राण ही बोलने वाला और सुनने वाला था जो निकल गया। अब रोना, धोना और विलाप करना व्यर्थ है। पुत्र की वधु के साथ दिति ने हिरण्यकशिपु की बात सुनकर पुत्र शोक त्याग दिया और चित्त को परमात्मा में लगा दिया।



३. हिरण्यकशिपु की तपस्या और वर प्राप्ति

हिरणश्कशिपु मन्दराचल पर्वत की घाटी में चला गया। वहाँ जाकर वह तपस्या में लीन हो गया। पैरों के अंगूठों के बल खड़ा रहकर तपस्या करने लगा। काफी

समय तक तपस्या करने के कारण उसके सिर से धुएँ के साथ अग्नि निकलनी शुरू हो गई। उसकी इस तपस्या से सब देवता घबरा गए। नारद जी सब देवताओं को लेकर ब्रह्माजी के पास गए। सब मिलकर ब्रह्माजी से प्रार्थना करने लगे— आप इस घोर विपत्ति से छुटकारा दिलाइए। हम हिरण्यकशिपु के तप से जले जा रहे हैं। ब्रह्माजी ने देवताओं से धैर्य धारण करने को कहा।

ब्रह्माजी हिरण्यकशिपु के पास उस स्थान पर गए जहाँ पर वह तपस्या कर रहा था। ब्रह्माजी ने उससे कहा—पुत्र! तुम्हारी तपस्या सिद्ध हो गई है। मैं तुम्हें वरदान देने आया हूँ। दैत्य ने कहा— यदि आप मुझे अभिष्ट वर देना चाहते हैं तो मुझे ऐसा वर दीजिए कि मेरी मृत्यु, देवता, मनुष्य, दानव और नागादि द्वारा न हो। मेरी मृत्यु दिन में, रात में, भीतर, बाहर, पृथ्वी, आकाश में, किसी अस्त्र शस्त्र से न हो। मेरी महिमा आपकी तरह बनी रहे। ब्रह्माजी 'तथास्तु' कहकर अन्तर्ध्यान हो गए।

ऐसा वर पाकर हिरण्यकशिपु निडर हो गया। वह मनमाने ढंग से उत्पात मचाने लगा। उसने तीनों लोकों, देवताओं, असुरों, गन्धर्वों, नरपतियों, सर्प, गरुड़, ऋषियों, विद्याधरों, चारणों, सिद्धों, पितरों के अधिपति, प्रेतों, राक्षसों, यक्ष, मनु, भूपतियों आदि राजाओं को जीतकर अपने वश में कर लिया। उसके अत्याचारों की कोई सीमा न रही। उसने लोक परलोक में अपनी धाक जमा ली।

एक दिन अकाशवाणी हुई। देवताओं! ऋषियों! मनुष्यों! डरो मत। तुम्हारा कल्याण हो। इस दुष्ट दैत्य का मुझे पहले से ज्ञान था। इसका मैं शीघ्र ही सफाया कर दूँगा। हिरण्यकशिपु के चार बेटे थे। सबसे छोटे पुत्र का नाम प्रह्लाद था। जिस प्रकार भगवान के गुण अनन्त होते हैं उसी प्रकार प्रह्लाद के गुण भी अनन्त थे। वह बचपन से ही भगवान के ध्यान में लीन रहा करते थे। उन्हें ऐसा प्रतीत होता था कि भगवान मुझे गोद में लेकर खिला रहे हैं। वह सबसे कहा करते थे कि भगवान सबका रक्षक है। सब लोग भगवान में ध्यान लगाओ।

दैत्यों ने शुक्राचार्य को अपना पुरोहित नियुक्त किया। उनके शण्ड और अमर्क नाम के दो पुत्र थे। प्रह्लाद भी शुक्राचार्य के पास पढ़ने जाते थे। एक दिन हिरण्यकशिपु ने प्रह्लाद से पूछा कि— तुम्हें कौन सी बात अच्छी लगती है? बालक प्रह्लाद ने उत्तर दिया— घर को छोड़कर वन में चला जाऊँ और भगवान श्रीहरि का ध्यान लगाकर उनकी शरण में रहना मुझे अच्छा लगता है। प्रह्लाद को गुरु शुक्राचार्य धमकी देकर जो कुछ पढ़ाते वह उस तरफ ध्यान न देकर भगवान की भक्ति की तरफ ध्यान दिया करते थे।

एक दिन हिरण्यकशिपु ने प्रह्लाद सहित गुरु शुक्राचार्य को बुलाकर प्रह्लाद से पूछा— इतने दिनों में गुरु जी से तुमने क्या क्या सीखा? वह मुझे बताओ। प्रह्लाद ने कहा कि— पिताश्री! भगवान की भक्ति के नौभेद हैं। वे हैं— १. भगवान के गुण लीला का श्रवण,

२. भगवान का कीर्तन करना, ३. भगवान की पूजा-अर्चना करना, ४. वन्दना, ५. दास्य, ६. सख्य, ७. उनके रूप आदि का स्मरण, ८. उनके चरणों की सेवा करना और ९. आत्मनिवेदन। जिनकी बुद्धि भगवान के चरणों में लग जाती है उनको जन्म-मरण से मुक्ति प्राप्त हो जाती है।

प्रह्लाद की ऐसी बातें सुनकर पिता हिरण्यकशिपु ने उसे मारने के तरह-तरह के उपाय किए। मतवाले हाथियों से कुचलवाया, ज़हरीले सर्पों से डसवाया, पहाड़ की चोटी से नीचे फेंका गया, विषपान कराया गया, खाना देना बन्द कर दिया गया, दहकती अग्नि में डलवाया गया, समुद्र में गिरवाया गया परन्तु जिसके रक्षक भगवान होते हैं उसका कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता। इसी प्रकार प्रह्लाद का बाल भी बाँका नहीं हुआ।

एक दिन प्रह्लाद ने असुरों के बालकों को बुलाकर कहा— मित्रों! इस संसार में मनुष्य का जन्म बड़ा दुर्लभ है। तुम अपने दैत्यपन का, आसुरी सम्पति का त्याग करके समस्त प्राणियों पर दया का व्यवहार करा करो। प्रेम से लोगों की भलाई के कार्य करो। इससे भगवान खुश होते हैं। भगवान को प्राप्त करने के लिए सदैव सोते जागते, उठते बैठते उनका स्मरण करते रहो। भक्ति में थोड़ा समय देते रहने से मोक्ष प्राप्ति का रास्ता साफ हो जाता है। इसके द्वारा परमपिता परमात्मा की प्राप्ति हो सकती है। तृतीय विश्राम



४. प्रह्लाद जी को माता के गर्भ में प्राप्त हुए नारद जी के उपदेश

प्रह्लाद जी ने अपने मित्रों से कहा— मेरे पिताश्री हिरण्यकशिपु मन्दराचल पर्वत पर तपस्या के लिए गए तो देवताओं ने दानवों पर आक्रमण कर दिया। हिरण्यकशिपु के न होने से दैत्य सेनापतियों का साहस जाता रहा। वे देवताओं का सामना न कर सके तथा अपनी रक्षा हेतु इधर-उधर छिप गए। इन्द्र ने मेरी माता कयाधू को गिरफ्तार कर लिया। उसी समय देवर्षि नारद जी वहाँ आए। नारद जी मेरी माता को अपने साथ ले गए। नारद जी ने मेरी माता को भागवत धर्म का रहस्य और विशुद्ध ज्ञान का उपदेश दिया। उन्होंने बताया कि यदि कोई व्यक्ति काम, क्रोध, मद, मोह, द्वेष और मत्सर इन छः शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर ले तो वह भगवान के चरणों में जगह पा जाता है। असुर कुमारों अपने हृदय में विराजमान भगवान का भजन करो। श्रीहरि की भक्ति का स्वरूप सर्वत्र सब वस्तुओं में भगवान का दर्शन समान रूप से करते रहोगे।



५. हिरण्यकशिपु का वध

हिरण्यकशिपु द्वारा अनेक उपाय अपनाने पर भी जब अपने पुत्र भगवान के भक्त प्रह्लाद का बाल भी बाँका न कर सका तो उसने सोचा कि मैं स्वयं ही

इसका वध करूँगा। प्रह्लाद हाथ जोड़े अपने पिता के सम्मुख खड़े थे। उनके पिता हिरण्यकशिपु ने कहा— मैं तुझे यमराज के घर भेजकर फल चखाता हूँ।

प्रह्लाद ने कहा— पिताश्री! ब्रह्माजी से लेकर छोटे-बड़े सबको भगवान श्रीहरि ने अपने वश में कर रखा है। वे ही सर्वशक्तिमान सबके काल हैं तथा सब प्राणियों के इन्द्रबल, मनोबल और देहबल भी वही हैं।

हिरण्यकशिपु ने कहा— अब तू मरना चाहता है। देखूँ तेरा भगवान कहाँ है? तेरा भगवान सब जगह विराजमान है तो इस खम्भे में क्यों नहीं दिखाई देता। क्रोध में भरकर वह अपने सिंहासन से कूद पड़ा और बड़े वेग से घूँसा मारा। उस समय खम्भे में से भगवान श्रीहरि नृसिंह का रूप धारण कर प्रकट हुए। दैत्यराज हिरण्यकशिपु हाथ में गदा लेकर नृसिंह भगवान पर टूट पड़ा। भगवान ने उसे अपनी जाँघ पर लिटाकर अपने हाथों के नाखूनों से उसका पेट चीर डाला और पृथ्वी पर पटक डाला।

वह हिरण्यकशिपु के सिंहासन पर जाकर आरूढ़ हो गए। उस समय उनके तेज और क्रोध से भरे चेहरे को देखकर उनकी सेवा करने की किसी सभासद में हिम्मत नहीं हुई। बार-बार देवता उन पर फूलों की वर्षा करने लगे। इसके बाद ब्रह्मा, इन्द्र भगवान, शिव, देवता, मनु, महानाग, पितर, ऋषि, गन्धर्व, प्रजापति और अप्सराएँ आदि तथा सब सभासद वहाँ उपस्थित हुए। ब्रह्माजी ने उनकी स्तुति करते हुए कहा— प्रभु! आप अनन्त हैं।

आपकी शक्ति अपरम्पार है। आपका पराक्रम विचित्र है और कर्म पवित्र है। आप अपनी लीला से सम्पूर्ण विश्व की उत्पत्ति, पालन और प्रलय यथोचित ढंग से करते हैं फिर भी स्वयं निर्विकार रहते हैं। मैं आपको नमस्कार करता हूँ। इसके बाद रुद्र ऋषियों, विद्याधरों, चारणों, गन्धर्वों, प्रजापतियों, नागों, किन्नरों, किम्पुरुषों, यक्षों ने क्रमशः नाना प्रकार से उनकी स्तुति की और नमस्कार किया। भगवान के पार्षदों ने कहा-आपका नृसिंह रूप आज ही देखने को मिला। यह दैत्य आपका आज्ञाकारी सेवक था जिसको सनकादि ऋषियों ने श्राप दिया था। आपने इसका उद्धार करने के लिए ही वध किया है।



६. प्रह्लाद द्वारा नृसिंह भगवान की स्तुति

ब्रह्माजी, शिवजी और देवगण नृसिंह भगवान के क्रोध को शान्त न कर सके। उनका गुस्सा शान्त करने के लिए लक्ष्मी जी से कहा गया। भयवश वे भी उनके पास जाने की हिम्मत न कर सकीं। फिर प्रह्लाद जी ने भगवान के पास जाकर हाथ जोड़कर साष्टाँग दण्डवत् किया और पृथ्वी पर लेट गए। नृसिंह भगवान ने प्रह्लाद को उठाकर उनके सिर पर अपना कमल रूपी हाथ रखा। प्रह्लाद ने भगवान की स्तुति की। उस स्तुति का ही ऐसा प्रभाव है कि अविद्यावश संसार चक्र में पड़ा हुआ जीव तत्काल पवित्र हो जाता है।

भगवान आप सत्वगुण के आश्रय हैं। जिस असुर का वध करने के लिए आपने क्रोध किया था, वह मारा जा चुका है। अब आप अपने क्रोध को शान्त कीजिए। सब आपके शान्त स्वरूप के दर्शनों की प्रतीक्षा कर रहे हैं। आप मुझे कालरूप से बचाकर अपने सानिध्य में खींच लीजिए। आपने अपना जो कर कमल मेरे सिर पर रखा है वह आपने कभी भी ब्रह्मा, शिव और लक्ष्मी जी के सिर पर नहीं रखा था। भगवान इस संसार रूपी अंधेरे कुँए में कालरूपी सर्प की तरह डसने को सदैव प्रस्तुत रहते हैं। उससे मुझे बचाने की कृपा करें।

यह सारा ब्रह्माण्ड आपका ही शरीर है। आपने योगनिद्रा की समाधि त्याग दी थी तब आपकी नाभि से ब्रह्माण्ड कमल प्रकट हुआ। उस कमल पर ब्रह्माजी प्रकट हुए। उन्हें कमल के अतिरिक्त कुछ भी दिखाई नहीं दिया। वह अपने को आपसे बाहर जानकर जल के अन्दर घुसकर सौ वर्ष तक आपको ढूंढते रहे, परन्तु उन्हें आप दिखाई नहीं दिए। हार मानकर वह फिर कमल पर ही जा बैठे। तीव्र तपस्या करने से उनका शरीर शुद्ध हो गया। तब ब्रह्माजी को भूत, इन्द्रिय और अन्तःकरण रूप अपने ही शरीर में आपके सूक्ष्म रूप का साक्षात्कार हुआ। उसे देखकर ब्रह्मा जी को बड़ा सन्तोष हुआ। रजोगुण और तमोगुण रूप मधु और कैटभ दो बड़े बलवान दैत्य थे। जब वे वेदों को चुराकर ले जा रहे थे तो आपने हयग्रीव का अवतार ग्रहण किया। उन दोनों का वध करके सत्वगुण रूप श्रुतियों को ब्रह्माजी को लाकर लौटा दिए।

हे पुरुषोत्तम! मोक्ष के दस साधन-तपस्या, मौन, शास्त्रश्रवण, ब्रह्मचर्य, स्वधर्म पालन, स्वाध्याम, समाधि, जप, युक्तियों से शास्त्रों की व्याख्या और एकान्त सेवन आदि हैं। परन्तु जिनकी इन्द्रियाँ वश में नहीं हैं उनके लिए यह सब व्यर्थ हैं। आपकी सेवा के छः अंग हैं— नमस्कार, समस्त कर्मों का समर्पण, सेवा पूजा, स्तुति, चरणकमलों का चिन्तन, और लीला कथाओं का श्रवण। भक्ति के बिना आपकी प्राप्ति सम्भव नहीं।

नारद जी ने कहा कि प्रह्लाद ने इस प्रकार भगवान नृसिंह के गुणों का वर्णन किया। इससे उनका क्रोध शान्त हो गया। नृसिंह भगवान ने कहा— दैत्य श्रेष्ठ प्रहलाद! मैं तुम पर प्रसन्न हूँ। तुम्हारी जो अभिलाषा हो वह मुझ से माँग लो।



८. प्रह्लाद जी का राज्याभिषेक

प्रह्लाद जी ने सोचा कि वरदान माँगना तो प्रेम भक्ति का विघ्न है। तब उन्होंने कहा— प्रभु! मैं जन्म से विषम भोगों में आसक्त हूँ। आप मुझे वरदानों के द्वारा लुभाने का प्रयत्न न करें। यदि आप मुझे वरदान देना ही चाहते हैं तो यह वर दीजिए कि मेरे हृदय में कभी भी किसी कामना का बीज अंकुर न हो। श्री नृसिंह भगवान बोले— प्रह्लाद! फिर भी अधिक नहीं तो मेरी प्रसन्नता के लिए केवल एक मन्वन्तर तक के लिए तुम इस लोक में

दैत्याधिपतियों के समस्त भोग स्वीकार करो। परन्तु तुम अपने हृदय में मुझे बसाए रखना और मेरी लीला-कथाएँ श्रवण करते रहना। समय आने पर तुम अपना शरीर त्याग कर समस्त बन्धनों से मुक्त होकर मेरे पास आ जाओगे।

प्रह्लाद ने कहा— आपसे मैं एक वर और माँगता हूँ कि मेरे पिताश्री ने आपके ईश्वरीय तेज को और आपको चराचर गुरु न मानकर आपकी बड़ी निन्दा की थी। इस कारण शीघ्र नाश न होने वाले दुस्तर दोष से मेरे पिता मुक्त और शुद्ध हो जाएँ।

नृसिंह भगवान ने कहा— निष्पाप प्रह्लाद! तुम्हारे पिताश्री स्वयं पवित्र होकर मुक्ति पा गए हैं क्योंकि तुम्हारे जैसा कुल को पवित्र करने वाला पुत्र उनको प्राप्त हुआ। वत्स! तुम अपने पिता की गद्दी पर स्थित हो जाओ। भगवान की आज्ञा के अनुसार उन्होंने अपने पिता की अन्त्येष्टि क्रिया सम्पन्न की। इसके बाद ब्राह्मणों ने उनका राज्याभिषेक किया। अन्त में भगवान अन्तर्धान हो गए।

नारद जी ने बताया कि भगवान के दोनों पार्षद जय और विजय दिति के पुत्र बन कर अवतार्ण हुए। वे दोनों भगवान से वैर भाव रखते थे। भगवान ने उन दोनों का उद्धार करने के लिए उनका वध कर दिया। वे फिर से कुम्भकर्ण और रावण के रूप में राक्षस परिवार में उत्पन्न हुए। भगवान श्री रामचन्द्र जी के पराक्रम से उनका अन्त हुआ। इसके बाद वे द्वापर युग में शिशुपाल

और दन्तवक्त्र के रूप में उत्पन्न हुए। भगवान के प्रति वैर भाव रखने के कारण भगवान श्री कृष्ण ने उनका वध करके उद्धार किया और वे भगवान में समा गए।



८. त्रिपुर दहन की कथा

देवर्षि नारद जी ने एक बार बताया कि भगवान श्री कृष्ण से शक्ति प्राप्त करके देवताओं ने युद्ध में असुरों पर विजय प्राप्त कर ली। इस पर सब असुर परमगुरु मयदानव की शरण में गए। मयदानव ने सोने, चाँदी और लोहे के तीन विमानों का निर्माण किया। वे इन विमानों में बैठकर सबका नाश करने लगे।

तब प्रजा लोकपालों के साथ भगवान शिव की शरण में गई। उन्होंने प्रभु से प्रार्थना की-- प्रभु! त्रिपुर में रहने वाले असुर हमारा नाश कर रहे हैं। आप हमारी रक्षा कीजिए। भगवान शंकर ने धनुष पर बाण चढ़ाकर त्रिपुर पर छोड़ दिया। उस एक बाण से बहुत से बाण प्रकट हो गए। जिनसे भयंकर अग्नि की लपटें निकल रहीं थीं। त्रिपुर दिखाई देना बन्द हो गया था। वहाँ के निवासी निष्प्राण होकर गिरने लगे।

महामायावी मयदानव बहुत से उपाय जानता था। वह दैत्यों को उठा लाया और उन्हें अमृत के कुएँ में डाल दिया। अमृत का स्पर्श पाते ही दैत्यों का शरीर वज्र के समान दृढ़ हो गया। भगवान श्री कृष्ण ने इन

दैत्यों पर विजय पाने के लिए एक उपाय सोचा। भगवान श्री कृष्ण स्वयं गौ बन गए और ब्रह्माजी को बछड़ा बना लिया। दोनों त्रिपुर में गए। उस सिद्ध कुएँ का वह सारा अमृत पी गए। इसके बाद भगवान श्री कृष्ण ने अपनी शक्तियों द्वारा भगवान शिव के लिए युद्ध की तैयारी प्रारम्भ कर दी।

उन्होंने धर्म से रथ, ज्ञान से सारथी, वैराग्य से ध्वजा, ऐश्वर्य से घोड़े, विद्या से कवच, तपस्या से धनुष, क्रिया से बाण और अन्य आवश्यक वस्तुओं का निर्माण किया। इन सामग्रियों से लैस होकर भगवान शिव ने राक्षसों के विमानों को नष्ट कर दिया। त्रिपुर को जलाकर भगवान शिव शंकर ने त्रिपुरारि की पदवी प्राप्त की। भगवान श्री कृष्ण इस प्रकार अपनी माया द्वारा मनुष्यों जैसी लीलाएँ करते रहते हैं।



९. मानव धर्म, वर्ण धर्म और स्त्री धर्म

महर्षि नारद जी कहते हैं कि अजन्मे भगवान ही समस्त धर्मों के मूल हैं। धर्म शास्त्रों में ३० लक्षण बताए गए हैं : उनमें से मुख्य-मुख्य लक्षण निम्न हैं— तपस्या, दया, सत्य, सरलता, स्वाध्याय, ब्रह्मयर्च, अहिंसा, शोच, मौन, संतोष। भगवान श्री कृष्ण के नाम गुण लीला का श्रवण, कीर्तन, स्मरण, नमस्कार, आदि आचरण ही मानवों के परम धर्म हैं।

दान लेना, दान देना, यज्ञ आदि, अध्ययन, अध्यापन, ब्राह्मणों के धर्म बताए गए हैं।

गौ रक्षा, लेन-देन, कृषि, व्यापार करना से जीविका चलाना वैश्यों के धर्म बताए गए हैं।

प्रजा की रक्षा करना, दान देना, दण्ड देना, कर लेना तथा प्रजा की भलाई के लिए कार्य करना क्षत्रियों के धर्म बताए गए हैं।

राजाओं की मदद करना, प्रजा की अन्य जातियों की सेवा करना तथा ब्राह्मणों की सेवा करना शूद्रों के धर्म बताए गए हैं।

पति की सेवा करना, पति को ईश्वर का रूप मानना, घर की सफाई करना, लीपना, चौक पूरना, घर की सामग्रियों को साफ सुथरा रखना, पति की आज्ञा का पालन करना, सत्य और प्रिय बोलना आदि पतिव्रता स्त्रियों के धर्म बताए गए हैं।



१०. ब्रह्मचर्य और वानप्रस्थ आश्रमों के नियम

महर्षि नारद जी कहते हैं कि गुरुकुल में रहने वाले ब्रह्मचारी इन्द्रियों को वश में रखकर दास के समान रहें। प्रातःकाल और सायंकालीन गुरु, अग्नि, सूर्य और देवताओं की उपासना करें। एकाग्र होकर गायत्री मंत्र का जाप करें। शास्त्र के अनुसार मृगचर्म मेखला

कमण्डलु, दण्ड, जटा और यज्ञोपवित धारण करें। भिक्षा माँग कर लाएँ और उसे गुरुजी को समर्पित करें। गुरुजी की आज्ञा पाकर भोजन करें। आज्ञा न मिले तो उपवास करें। पराई स्त्री से संवाद वर्जित है। हमेशा नारी से दूर रहें। शराब, मांस से दूर रहें अर्थात् इनका सेवन वर्जित है। गुरुजी को मुँह माँगी दक्षिणा देनी चाहिए। ऊपर वर्णित ये ब्रह्मचर्य के नियम हैं।

वानप्रस्थ नियमों के अनुसार वानप्रस्थ की ओर जाती हुई भूमि में उत्पन्न अन्न का सेवन वर्जित है। बिना जोते पैदा हुआ अन्न असमय में पका हो तो उसे खाना भी वर्जित है। सूर्य के ताप से पके हुए कन्दमूल और फलों का ही सेवन करना चाहिए। स्वयं शीत, वायु, अग्नि, वर्षा और धाम का सेवन करें। जटा धारण करें और बालों, नाखूनों, मूँछ और दाढ़ी को न कटवाएँ। मृगचर्म, कमण्डल, बल्कल वस्त्र, दण्ड और अग्निहोत्र की सामग्री अपने पास रखें। एक वर्ष तक वानप्रस्थ के नियमों का पालन करना चाहिए। पृथ्वी का जल में, जल का अग्नि में, अग्नि का वायु में, वायु का आकाश में, आकाश का अहंकार में, अहंकार का महत्तत्व में, महत्तत्व का अव्यक्त में और अव्यक्त का अविनाशी परमात्मा के रूप में स्थित हो जाए।



११. यतिधर्म का निरुपण

महर्षि नारद जी ने बताया कि वानप्रस्थ में ब्रह्मविचार का सामर्थ्य हो तो सन्यास लें। किसी भी व्यक्ति, वस्तु, स्थान और समय की अपेक्षा न कर एक गाँव में एक ही रात्रि ठहरें। हमेशा विचरण करते रहें। केवल गुप्त अंग को ढकने के लिए कोपीन का प्रयोग करें। किसी का आश्रय न लेकर अकेले ही विचरण करें। केवल काल की प्रतीक्षा करते रहें। निर्वाह हेतु जीविता न करें। वाद-विवाद में तर्क न करें। किसी का पक्ष नहीं लेना चाहिए। भाषण न दें। हमेशा अपने को पागल और बालक की तरह रखना चाहिए। मनुष्यों की दृष्टि में वह गूँगा दिखाई पड़े।



१२. अवधूत और प्रह्लाद सँवाद

महर्षि नारद जी ने बताया कि एक बार प्रह्लाद मंत्रियों के साथ घूम रहे थे। उन्होंने देखा कि कावेरी नदी के तट पर एक मुनि लेटे हुए हैं। प्रह्लाद जी ने उनके सिर से पैरों तक हाथ से स्पर्श किया और बोले— ब्राह्मण देवता! बिना भोग के ही आपका शरीर इतना हृष्ट-पुष्ट कैसे है ? यदि सुनाने योग्य हो तो बताइए।

वह मुनि दत्तात्रेय जी थे। मुनि दत्तात्रेय जी ने प्रह्लाद से कहा— सुनो! मेरी भक्ति के कारण भगवान श्री

नारायण हमेशा मेरे हृदय में विराजमान रहते हैं। हे प्रह्लाद! तृष्णा एक ऐसी वस्तु है जो भोगों को प्राप्त करने पर भी नहीं मिटती। तृष्णा ने मुझे अनेक योनियों में डाला। दैववश मुझे मनुष्य योनि मिली है। यह मनुष्य योनि स्वर्ग, मोक्ष, तिर्यग्योनि तथा मानव देह की भी प्राप्ति का द्वार है। मनुष्य सुख की प्राप्ति और दुःखों की निवृति के लिए अनेक कर्म करता है, परन्तु फल उल्टा प्राप्त होता है। इसलिए मैं कर्मों से उभर चुका हूँ। इस संसार में अजगर और मधुमक्खी मेरे सबसे बड़े गुरु हैं। उनकी शिक्षा से मुझे वैराग्य और संतोष प्राप्त हुआ है। जैसे मधुमक्खी शहद एकत्र करती है। उसी प्रकार कष्ट उठाकर मनुष्य धन एकत्र करता है, परन्तु कोई भी अन्य पुरुष धन के स्वामी को मारकर उसका धन ले जाता है। इससे मुझे यह शिक्षा मिली कि विषय भोगों से विरक्त रहना ही ठीक है। मैं अजगर की तरह पड़ा रहता हूँ और दैववश कुछ मिल जाए तो खा लेता हूँ और नहीं मिले तो धैर्य धारण कर पड़ा रहता हूँ। मुझे जैसा वस्त्र मिले वह पहन लेता हूँ। मैं पृथ्वी, पत्थर, घास या राख पर पड़ा रहता हूँ। पिशाच के समान बिल्कुल नग्न अवस्था में विचरता रहता हूँ। प्रत्येक मनुष्य का स्वभाव भिन्न-भिन्न होता है। मेरी यह आत्म कथा अत्यन्त गुप्त है एवं लोक और शास्त्र से दूर की वस्तु है।



१३. गृहस्थ सम्बन्धी सदाचार

महर्षि नारद जी ने बताया कि मनुष्य गृहस्थाश्रम में रहे और गृहस्थ धर्म के अनुसार सब काम करे, परन्तु उन्हें भगवान को समर्पित करता रहे एवं भगवान के अवतारों की लीला सुधा का पान करता रहे जो गृहस्थ सम्बन्धी सदाचार के लक्षण हैं।

व्यक्ति स्त्री के लिए प्राण तक न्यौछावर कर देते हैं। यहाँ तक कि उसके लिए अपने माँ-बाप और गुरु को भी मार डालने में नहीं हिचहिकाते। अगर स्त्री से किसी ने अपनी ममता हटा ली तो उसने स्वयं नित्य विजयी भगवान पर विजय प्राप्त कर ली।

ब्राह्मण, देवता, मनुष्य, प्राणियों में यथायोग्य उपयुक्त सामग्रियों द्वारा अन्तर्यामी रूप से विराजमान भगवान की पूजा करनी चाहिए। जहाँ-जहाँ पर भगवान के अवतार हुए हैं, उन जगहों का समय-समय पर जाकर अवलोकन करना चाहिए। जैसे-पुष्कर, कुरुक्षेत्र, गया, प्रयाग, द्वारका, वृन्दावन, काशी, मथुरा, बदरीकाश्रम, अयोध्या, चित्रकूट, रामेश्वरम आदि।



१४. गृहस्थों के लिए मोक्ष धर्म का वर्णन

महर्षि नारद जी कहते हैं कि गृहस्थ व्यक्ति को चाहिए कि श्राद्ध अथवा देव पूजा के अवसर पर अपने कर्म फल प्राप्त करने के लिए ज्ञानवान मनुष्य को दान

दे। देव कार्य में या पितृ कार्य में कम से कम एक ब्राह्मण को भोजन कराने के बाद स्वयं भोजन ग्रहण करे। मनुष्य को आधिभौतिक दुःख को दया के द्वारा, आध्यात्मिक दुःख के योगबल के द्वारा, आधिदैविक दुःख को समाधि के द्वारा एवं निद्रा को सात्विक भोजन, स्थान, संग आदि के सेवन से जीतना चाहिए।

सत्वगुण के द्वारा रजोगुण एवं तमोगुण पर और उपरति के द्वारा सत्वगुण पर विजय प्राप्त करनी चाहिए। शास्त्रों में जितने नियम सम्बन्धी आदेश हैं, उनका एकमात्र आशय यही है कि काम, क्रोध, मोह, लोभ, मद और मत्सर इन छः शत्रुओं पर विजय प्राप्त करनी चाहिए। अर्थात् पाँचों इन्द्रियों और मन, ये छः वश में कर लेना चाहिएँ। जो व्यक्ति अपने मन पर विजय प्राप्त करने के लिए उद्यत हो वह आसक्ति और परिग्रह का त्याग करके सन्यास लेकर एकांत में अकेला रहे और परिमित भोजन करे।

समय के अनुसार देवालय, बगीचों, कुएँ, बावड़ी आदि बनवाएँ और प्याऊ आदि खुलवाए। इसी से मोक्ष धर्म का पालन करने से व्यक्ति मोक्ष को प्राप्त कर सकता है। सन्त सेवा ही भगवान की सेवा मानी गई है।

महर्षि नारद जी ने कहा कि मैं स्वयं जानता था कि यह सन्तों का समाज है। फिर भी एक बार देवताओं के यहाँ ज्ञान सत्र हुआ। भगवान श्रीहरि की लीलाओं का गुणगान करने गन्धर्व और अप्सराओं को बुलाया गया। मैं भी लौकिक गीतों को गाता हुआ वहाँ पहुँच गया। देवताओं

ने समझा यह हमारा अनादर कर रहा है। उन्होंने मुझे शाप दे दिया कि तुम्हारी सम्पत्ति नष्ट हो जाए और तुम शूद्र बन जाओ। उनके शाप से मैं दासी का पुत्र बन गया। परन्तु उस शूद्र जीवन में महात्मओं के सत्संग और उनकी सेवा शुश्रूषा के प्रभाव से मैं अगले जन्म में ब्रह्माजी का मानस पुत्र हुआ।



अष्टम स्कन्ध

१. मन्वन्तरों का वर्णन

श्री शुक्रदेव जी ने बताया कि इस कल्प में स्वायम्भुव आदि छः मन्वन्तर व्यतीत हो चुके थे। इनमें से पहले मन्वन्तर में देवताओं की उत्पत्ति हुई। स्वायम्भुव मनु की पुत्री आकूति से यज्ञ पुरुष के ह्दय में धर्म का उपदेश करने तथा देवहूति से कपिल के रूप में ज्ञान का उपदेश देने के लिए भगवान श्रीहरि ने उनके पुत्र के रूप में अवतार लिया।

भगवान यज्ञ पुरुष ने आकूति के गर्भ से अवतार लेकर जो कुछ किया उसका वर्णन करता हूँ। भगवान स्वायम्भुव मनु राज्य को त्याग कर अपनी पत्नी शतरूपा के साथ तपस्या हेतु वन में चले गए। सुनन्दा नदी के किनारे एक पैर पर खड़े होकर वह सौ वर्ष तक तपस्या करते रहे। एक बार स्वायम्भुव मनु श्रुति का पाठ कर रहे थे। उनको नींद में बड़बड़ाते जाने, भूखे असुर और यक्ष उन्हें खा डालने की नियत से उन पर टूट पड़े। यह

देखकर अन्तर्यामी भगवान यज्ञ पुरुष अपने पुत्र याम नामक देवताओं के साथ वहाँ पर पहुँचे और उन असुरों को मार डाला। इसके बाद वे इन्द्र के पद पर प्रतिष्ठित होकर स्वर्ग का शासन करने लगे।

दूसरे मनु थे स्वारोचित। ये अग्नि के पुत्र थे। उनके द्युमान, सुषेण और रोचिष्मान नाम के तीन पुत्र थे। ये अधान देवगण कहलाते थे। इस मन्वन्तर में इन्द्र का नाम रोचन था। प्रधान देवगण तुषित आदि थे। उस समय के सप्तर्षि ऊर्जस्तम्भा आदि वेदवादी थे। इस मन्वन्तर में वेद सिरा नामक ऋषि की पत्नी का नाम तुषित था। इनके गर्भ से भगवान विभु ने जन्म लिया।

तीसरे मनु का नाम उत्तम था। इनके पिता का नाम प्रियव्रत था। उत्तम के पुत्रों के नाम, पवन, सृंजय, यज्ञहोत्र आदि थे। इस मन्वन्तर में वशिष्ठ जी के प्रमद आदि सात पुत्र सप्तर्षि थे। इस मन्वन्तर में इन्द्र का नाम सत्यजित था। सप्त, वेदश्रुत और भद्र देवताओं के प्रधान गण थे। उस समय धर्म की पत्नी सुनृता के गर्भ से भगवान सत्यसेन ने अवतार ग्रहण किया था। उनके साथ सत्यव्रत देवगण थे।

चौथे मनु का नाम तामस था। ये तीसरे मनु उत्तम के भाई थे। इनके दस पुत्रों के नाम पृथु, ख्याति, नरकेतु आदि थे। सत्य, हरि और वीर देवताओं के प्रधान गण थे। इस मन्वन्तर में इन्द्र का नाम त्रिशिख था। इस मन्वन्तर में ज्योतिर्धाम इत्यादि सप्त ऋषि थे। इस मन्वन्तर में ऋषि हरिमेधा ऋषि की पत्नी हरिणी के गर्भ से भगवान

श्रीहरि ने अवतार ग्रहण किया था। इस अवतार में उन्होंने ग्राह से गजेन्द्र की रक्षा की थी।

पाँचवे मन्वन्तर के मनु का नाम रैवत था। यह चौथे मनु तामस के भाई थे। इनके अर्जुन, बलि, विन्ध्या आदि पुत्र थे। इस मन्वन्तर के इन्द्र का नाम विभु था। इस मन्वन्तर के सप्तर्षियों के नाम हिण्यरोमा, वेदशिरा, ऊर्ध्वबाहु आदि था। इस मन्वन्तर में शुभ्र ऋषि की पत्नी विकुण्ठा के गर्भ से भगवान ने बैकुण्ठ नाम से अवतार ग्रहण किया था।

छठे मन्वन्तर के मनु का नाम चाक्षुस था। इनके पुरु, पुरुष, सुद्युम्न, आदि कई पुत्र थे। इस मन्वन्तर के इन्द्र का नाम मंत्रद्रुम था। आप्य प्रधान देवगण थे। इस मन्वन्तर के सप्तर्षियों के नाम हविष्यमान और वीरक आदि थे। इस मन्वन्तर में वैराज की पत्नी सम्भूति के गर्भ से भगवान ने अजित नाम से अवतार ग्रहण किया था। इन्होंने ही समुद्र मन्थन करके देवताओं को अमृत पान कराया था। इन्होंने ही कच्छप रूप धारण कर मन्दराचल पर्वत की मथानी का आधार बने थे।



२. गजेन्द्र को ग्राह के चुँगल से मुक्त कराना

श्री शुकदेव जी ने बताया कि क्षीर सागर में त्रिकूट नाम का पर्वत था। त्रिकूट की तराई में भगवान वरुण

के उद्यान में ऋतुमान सरोवर था। उस सरोवर में देवांगनाएँ स्नान किया करती थीं। पर्वत की तलहटी में स्थित जंगल में अनेकों हथनियों के साथ एक गजेन्द्र रहता था। गजेन्द्र ने एक दिन उस सरोवर में घुसकर अपनी प्यास बुझाई और स्नान करके अपनी थकावट दूर की। इसके बाद गजेन्द्र हथनियों और उनके बच्चों को नहलाने लगा। भगवान की माया से वह उन्मत हो रहा था। एक शक्तिशाली ग्राह ने क्रोध में भरकर गजेन्द्र का पैर पकड़ लिया। गजेन्द्र ने अपनी पूरी शक्ति लगाकर ग्राह से अपना पैर छुड़ाना चाहा। लड़ते-लड़ते पूरे एक हज़ार वर्ष व्यतीत हो गए। परन्तु वह सफल न हो सका। गजेन्द्र की शक्ति कमज़ोर होती गई, परन्तु ग्राह जल का जीव होने के कारण उसकी शक्ति में कोई परिवर्तन न हुआ।

गजेन्द्र भगवान की शरण लेकर प्रार्थना करने लगा। गजेन्द्र पूर्वजन्म में प्राप्त श्रेष्ठ स्तोत्र के द्वारा भगवान की स्तुति करने लगा— हे प्रभु! मेरी रक्षा करो। जिस प्रकार सज्जन पुरुष फन्दे में पड़े हुए पशु के बन्धन काट देता है उसी प्रकार आप भी मुझ शरणागत की रक्षा कीजिए। भक्तों का कल्याण करने में आप कभी विलम्ब नहीं करते। आपके चरणों में मेरा नमस्कार है।

विश्व के एक मात्र आधार भगवान ने देखा कि गजेन्द्र बहुत दुःखी है। उसकी करण पुकार सुनकर चक्रधारी भगवान श्रीहरि अपने वाहन गरुड़ पर बैठकर चल दिए। उनके साथ देवता भी भगवान की स्तुति करते हुए चल पड़े। जब गजेन्द्र ने भगवान श्रीहरि को

गरुड़ पर सवार और हाथ में चक्र थामे देखा तो उसने अपनी सूँड में एक कमल का पुष्प ऊपर उठाया और विनती करने लगा— हे नारायण! हे जगतगुरु! हे हरि! आपको मेरा शतशत नमन।

भगवान अपने वाहन गरुड़ को छोड़कर सरोवर में कूद पड़े और गजेन्द्र के साथ ग्राह को भी सरोवर से बाहर खींच लाए। श्रीहरि ने अपने चक्र से ग्राह का मुँह काटकर अपने भक्त गजेन्द्र को मुक्त कराया और अन्तर्धान हो गए।

पूर्व जन्म में ग्राह एक गन्धर्व था जिसका नाम हू हू था। केवल ऋषि के शाप के कारण उसे अगले जन्म में ग्राह की योनि प्राप्त हुई। भगवान श्रीहरि की कृपा से ग्राह भी शाप से मुक्त हो गया। गजेन्द्र पूर्व जन्म में द्रविड़ देश का पाण्डयवंशी राजा था। उसका नाम इन्द्रद्युम्न था। वह राजपाट त्याग कर तपस्वी का वेष धारण कर मलय पर्वत पर भगवान की आराधना में लग गया था। उसी समय अगस्त्य मुनि वहाँ आए और उससे बोले— तूने गुरुजनों से शिक्षा ग्रहण नहीं की है। तेरी बुद्धि हाथी की तरह है। उसे मुनि ने हाथी बन जाने का शाप दिया। इस कारण उसे हाथी की योनि में जन्म लेना पड़ा। भगवान का स्पर्श पाते ही वह गजेन्द्र की योनि से मुक्त हो गया।



३. देवताओं का ब्रह्माजी के पास जाना, भगवान की स्तुति करना, समुद्र मन्थन के लिए उद्योग करना

श्री शुकदेव जी ने बताया कि जब असुरों ने देवताओं पर विजय प्राप्त कर ली तो उस समय दुर्वासा ऋषि के शाप से तीनों लोक और स्वयं इन्द्र भी श्रीहीन हो गए। इस पर समस्त देवता सुमेरु पर्वत के शिखर पर ब्रह्माजी के पास गए। ब्रह्माजी ने देखा कि सब देवता श्रीहीन हो गए हैं और असुर फल-फूल रहे हैं। ब्रह्माजी सब देवताओं को लेकर अविनाशी प्रभु की शरण में गए। वेदवाणी से भगवान की स्तुति की। ब्रह्माजी भगवान श्रीहरि से बोले— सर्वशक्तिमान प्रभु आप अपनी योगमाया तथा उसके गुणों को अपने वश में करके सब प्राणियों के हृदय में समभाव से रहते हो। हम आपके श्री चरणों में नमस्कार करते हैं। भगवान को समर्पित किया हुआ छोटे से छोटा कर्म भाव कभी भी विफल नहीं जाता। वे इस प्रकार स्तुति कर ही रहे थे कि भगवान उनके समक्ष प्रकट हो गए परन्तु उनके दर्शन केवल ब्रह्माजी और शिव शंकर को ही हो सके।

भगवन जैसे मनुष्य युक्ति के द्वारा लकड़ी से अग्नि, गौ से दूध, पृथ्वी से अन्न और जल तथा व्यापार द्वारा अपनी आजीविका प्राप्त कर लेता है उसी प्रकार विवेकी पुरुष भी अपनी शुद्ध सात्विक बुद्धि से भक्ति योग, ज्ञान योग आदि के द्वारा आपको प्राप्त कर लेता है। हम

आपके आविर्भाव से परम सुखी और शान्त हो गए हैं।

भगवान मेघ के समान गम्भीर वाणी में बोले— ब्रह्माजी, शंकर जी और देवताओं! तुम लोग मेरी सलाह मानो। इस समय असुरों पर काल की कृपा दृष्टि है। जब तक अच्छा समय नहीं आता है तब तक दैत्यों और दानवों से संधि कर लो। अब बिना देरी किए अमृत निकालने का प्रयत्न करो। उसे पीकर मरने वाला प्राणी भी अमर हो जाता है। पहले क्षीर सागर में सब तरह की घास पतवार और औषधियाँ डाल दो। फिर तुम लोग मन्दराचल पर्वत को मथानी बनाकर और वासुकि नाग को नेती बनाकर मेरी सहायता से समुद्र का मन्थन करो। सब देवता भगवान श्रीहरि की सलाह पर सहमत हो गए।

सब देवता समय ठीक आने पर राजा बलि के पास गए। इन्द्र ने अमृत मन्थन की बात कही। तब असुरों को यह बात जंच गई। उन्होंने अपनी शक्ति से मन्दराचल पर्वत को उखाड़ लिया तथा अपनी पूरी शक्ति लगाकर मन्दराचल को समुद्र तक ले जाने में असुर असमर्थ रहे। उनका उत्साह भंग होते देख भगवान श्रीहरि ने खेल ही खेल में एक हाथ से पर्वत को गरुड़ पर रख दिया और स्वयं भी उस पर सवार हो गए। गरुड़ ने पर्वत को समुद्र के तट पर उतार दिया।



४. समुद्र मन्थन और भगवान शंकर का विषपान

देवताओं और असुरों ने नागराज वासुकि को वचन दिया कि अमृत में आपका भी भाग होगा। सबने वासुकि नाग की नेती मन्दराचल पर लपेटकर अमृत के लिए समुद्र का मन्थन प्रारम्भ किया। वासुकि नाग के मुँह की तरफ असुर और उसकी पूँछ की तरफ देवता लग गए। जब मन्दराचल पर्वत पानी में डूबने लगा तो भगवान श्रीहरि ने कच्छप का रूप धारण करके समुद्र में घुसकर पर्वत को ऊपर उठाए रखा। भगवान के असुरों और देवताओं दोनों में प्रवेश करके उनकी शक्ति को बनाए रखा। उसी प्रकार वासुकि नाग में निद्रा के रूप में प्रवेश किया जिससे समुद्र मन्थन में रुकावट उत्पन्न न हो।

जब अमृत न निकला तब स्वयं भगवान समुद्र मन्थन करने लगे। भगवान ने मन्थन करने पर सर्वप्रथम विष प्रकट हुआ। विष सब तरफ उड़ने और फैलने लगा। तब वे सब भगवान शंकर के पास गए। सब ने अपनी शक्तियों के अनुसार शंकर जी का गुणगान किया। भगवान शंकर ने प्रजा के संकट को भांपकर कहा— हे देवी! समुद्र मन्थन से निकले हुए काल कूट विष के कारण प्रजा पर भीषण दुःख आ पड़ा है। मेरा यह कर्त्तव्य है कि मैं उन्हें निर्भय करूँ। भगवान शंकर उस तीक्ष्ण हलाहल विष को अपनी अँजलि में लेकर पी गए। जहर पीने से उनका कण्ठ नीला पड़ गया। जिस समय भगवान

शिव अंजलि में भरकर विषपान कर रहे थे तब थोड़ा सा विष टपक कर पृथ्वी पर गिर पड़ा। जिसे सर्प आदि विषैले जीवों और विषैली औषधियों ने ग्रहण कर लिया।



५. समुद्र से अमृत प्रकट, भगवान का मोहिनी अवतार

नए उत्साह से समुद्र मन्थन होने लगा। अब कामधेनु गाय प्रकट हुई। उसे ब्रह्मवादी ब्राह्मणों ने ग्रहण कर लिया। इसके बाद उच्चैश्रवा नामक घोड़ा निकला। वह चन्द्रमा के समान सफेद वर्ण का था। उसे बलि ने लेने की इच्छा प्रकट की तो इन्द्र ने स्वीकृति प्रदान कर दी। भगवान ने पहले से ही सिखा दिया था। इसके बाद ऐरावत हाथी निकला। उसके चार दाँत थे, जिसे इन्द्र ने अपने पास रख लिया। इसके बाद कौस्तुभ नामक रागमणि निकली। उसे भगवान अजित ने ले लिया। इसके बाद स्वर्गलोक की शोभा बढ़ाने वाला कल्पवृक्ष निकला। इसके बाद समुद्र मन्थन में अप्सराएँ निकलीं जो अपनी मनमोहक चाल से देवताओं को सुख पहुँचाने लगीं। इसके बाद भगवती लक्ष्मी प्रकट हुईं। वह भगवान की नित्य शक्ति हैं। देवता, असुर, मनुष्य सभी ने चाहा कि लक्ष्मी हमें मिले। इस पर भगवती लक्ष्मी देवी हाथ में कमल लेकर सिंहासन पर विराजमान हो गईं। लक्ष्मी जी ने विचार किया कि मेरे तो एकमात्र स्वामी भगवान

ही हैं। अतः लक्ष्मी जी ने कमलों की सुन्दर माला को भगवान श्रीहरि के गले में पहना दी। भगवान श्रीहरि ने लक्ष्मी जी को अपने वक्षस्थल पर ही सर्वदा निवास करने का स्थान दिया।

इसके बाद समुद्र मन्थन में कन्या के रूप में वारुणी देवी प्रकट हुई। भगवान की अनुमति से उसे दैत्यों ने ले लिया। इसके बाद एक अलौकिक पुरुष प्रकट हुआ। इसका रंग साँवला था। उसके हाथों में कँगन और अमृत से भरा कलश था। वे साक्षात् भगवान विष्णु के अवतार थे। वे आयुर्वेद के प्रवर्तक और यज्ञभोक्ता धन्वन्तरि के नाम से प्रसिद्ध हुए। जब दैत्यों ने अमृत कलश को देखा तो शीघ्रता से उन्होंने कलश को छीन लिया। इस देवता भगवान की शरण में गए। भगवान ने उनसे कहा कि मैं अपनी माया से तुम्हारा काम बना देता हूँ। भगवान ने अत्यन्त अनोखी सुन्दर स्त्री का रूप धारण किया। मोहिनी रूपधारी भगवान दैत्यों के चित्त को कामोद्दीपन करने लगे तथा उनकी बुद्धि भ्रष्ट कर दी।



६. मोहिनी रूप से भगवान के द्वारा अमृत बाँटा जाना

दैत्य डाकुओं की तरह कलश की छीना-झपटी करने लगे। उन्होंने देखा कि एक मन मोहिनी स्त्री आ रही है। उन्होंने काम से पीड़ित होकर उस मन मोहिनी स्त्री से

पूछा—तुम कौन हो और किसकी पुत्री हो? हे सुन्दरी! तुम हमारा झगड़ा निपटा दो। इस पर माया से स्त्री वेष धारण करने वाले भगवान ने तिरछी चितवन से उनकी ओर देखते हुए कहा— आप सब तो कश्यप जी के पुत्र हो और मैं कुलटा स्त्री ठहरी। दानवों ने रहस्यपूर्ण भाव से हँसकर अमृत का कलश मोहिनी के हाथों में थमा दिया।

मोहिनी रूप भगवान ने दैत्यों को एक कतार में और देवताओं को दूसरी कतार में बैठाया। भगवान ने अपनी माया से देवताओं को अमृत पिला दिया। जब अमृत पिलाया जा रहा था तो राहु दैत्य देवता का वेष धारण कर दैत्यों वाली कतार में जा बैठा। इस पर अमृत पिलाते-पिलाते ही भगवान ने अपने चक्र से उसका सिर धड़ से अलग कर दिया। परन्तु अमृत पी जाने के कारण उसका सिर अमर हो गया। ब्रह्माजी ने उसे ग्रह बना दिया। भगवान ने मोहिनी रूप त्याग कर अपना वास्तविक रूप धारण कर लिया। दैत्यों को अमृत न मिलने पर अपार दुख हुआ।



७. देवासुर संग्राम

दानवों और दैत्यों को अमृत न मिलने का अपार दुःख हुआ तथा उनका क्रोध बढ़ गया। वे अपने-अपने अस्त्र-शस्त्र लेकर देवताओं से युद्ध करने लगे। देवताओं

और दैत्यों में भीषण संग्राम होने लगा, जिसे इतिहास में देवासुर संग्राम कहते हैं। रणभूमि में रथियों के साथ रथी, पैदल के साथ पैदल, घुड़सवारों के साथ घुड़सवार, हाथी वालों के साथ हाथी वाले लड़ने लगे। युद्ध में विरोचन का पुत्र बलि मयदानव के बनाए गए विमान पर सवार होकर लड़ने आया। उसके साथ नमुचि, शम्बर, कालनेमि, प्रहेति, भूतसंताप, शकुनि, कपिल, हयग्रीव, वज्रदण्ड, विरोचन, तारक, पोलो, अरिष्ट, त्रिपुराधिपति, उत्कल, शुभ, कालेय आदि थे।

इन्द्र भी बड़े क्रोधित हुए। वह भी ऐरावत हाथी पर सवार होकर देवताओं को साथ लेकर लड़ने लगे। जम्भासुर से महादेव जी, महिसासुर से अग्निदेव, वातापि तथा इल्वय से ब्रह्मा के पुत्र मरीचि आदि का युद्ध होने लगा। दैत्यों ने अपनी आसुरी माया से देवताओं की सेना पर पर्वत पटक कर छोड़ दिया। इससे देवताओं की सेना चकनाचूर होने लगी। देवताओं ने भगवान का स्मरण किया। तब भगवान वहाँ पर प्रकट हुए। कालनेमि दैत्य ने भगवान पर त्रिशूल चलाया। भगवान ने त्रिशूल के टुकड़े-टुकड़े करके कालनेमि को मौत के घाट उतार दिया। माली और सुमाली दैत्यों के सिर भगवान ने अपने चक्र से काट डाले।

इन्द्र ने बलि पर अमोघ वज्र से आक्रमण किया। बलि विमान सहित पृथ्वी पर गिरकर समाप्त हो गया। बलि का घनिष्ठ मित्र जम्भासुर ने अपनी गदा से इन्द्र की गले की हंसली पर और महाबलि ऐरावत पर वार

किया। इन्द्र मुर्छित हो गए। इन्द्र के सारथी मातलि ने हज़ार घोड़े का रथ लाकर इन्द्र को दिया। इन्द्र दैत्यों पर प्रहार कर उन्हें मारने लगे। भाईयों को मरा देखकर नमूचि को बड़ा दुःख हुआ। नमूचि किसी हथियार से मारा नहीं जा रहा था। तब आकाशवाणी हुई कि— यह दानव न तो सूखी वस्तु से और न गीली वस्तु से मारा जाएगा। इन्द्र ने उपाय सोचा कि समुद्र का फेन न गीला होता है और न सूखा होता है। इन्द्र ने समुद्री फेन से नमूचि का वध करने में सफलता पाई।

ब्रह्माजी ने मुनि श्री नारद जी को देवताओं के पास भेजा। उन्होंने देवताओं को लड़ने से रोक दिया। शेष बचे दैत्य नारद जी के कहने पर वज्र की चोट से मरे हुए बलि को लेकर अस्ताचल चले गए। वहाँ उनके गुरु शुक्राचार्य जी ने संजीवनी विद्या से असुरों को जीवित कर दिया। बलि समझ गया कि जीवन मृत्यु, जय-पराजय होती रहती है। इस प्रकार उसको पराजित होने पर खेद नहीं हुआ।



८. मोहिनी रूप को देखकर महादेव का मोहित होना

भगवान शंकर ने सुना कि श्रीहरि ने मोहिनी रूप धारण कर देवताओं को अमृत पिलाया है। तब शंकर भगवान सती के साथ श्रीहरि के निवास स्थान पर गए।

भगवान शंकर बोले— प्रभु! आप जब गुणों को स्वीकार करके लीला करने के लिए अवतार लेते हैं तब मैं उन अवतारों के दर्शन कर लेता हूँ। अब मैं आपके उस अवतार के दर्शन करना चाहता हूँ जो आपने मोहिनी का रूप धारण किया था।

भगवान ने कहा कि दैत्यों का मन खींचने के लिए ही मैंने स्त्री रूप धारण किया था। यदि आप वह रूप देखना चाहते हैं तो मैं आपको अवश्य दिखाऊँगा। इस प्रकार कहते-कहते विष्णु भगवान वहाँ से अन्तर्धान हो गए। भगवान शंकर ने देखा कि उपवन में एक सुन्दर स्त्री गेंद उछाल-उछाल कर खेल रही है। उसने तनिक से लज्जाभाव से मुस्कराकर तिरछी नज़र से शंकर भगवान की ओर देखा। मोहिनी का एक-एक अंग बहुत ही रुचिकर और मनमोहक था। शंकर जी की आँखें लगी की लगी रह गईं। जब वह एक पेड़ से निकलकर दूसरे पेड़ की ओट में जाकर छिप जाती, तब भगवान शिव शंकर काम के वशीभूत हो उसके पीछे दौड़ने लगे। कामुक हथिनी के पीछे दौड़ने वाले मदोन्मत हाथी के समान वे मोहिनी के पीछे-पीछे दौड़ रहे थे। यद्यपि भगवान शंकर का वीर्य अमोद्य है, फिर भी मोहिनी की माया से वह स्खलित हो गया। भगवान शंकर का वीर्य पृथ्वी पर जहाँ-जहाँ गिरा, वहाँ-वहाँ सोने चाँदी की खानें बन गईं।

वीर्यपात हो जाने पर शंकर जी की अपनी स्मृति हुई। वे तुरन्त उस दुखद प्रसंग से अलग हो गए। भगवान

ने फिर अपना असली रूप धारण कर शिवजी के सम्मुख प्रकट हो गए। भगवान विष्णु जी ने भगवान शंकर जी का सत्कार किया और उनको मोहिनी रूप दिखा दिया। भगवान शंकर उनकी परिक्रमा करके अपने गणों के साथ कैलाश वापिस चले गए। उन्होंने रास्ते में सती को सारा वृतान्त सुनाया।



९. आगामी आठ मन्वन्तरों का वर्णन

सातवें मनु का नाम श्राद्धदेव था। यह विवस्वान के पुत्र थे। इनके दस पुत्र हुए, जिनके नाम इक्ष्वांकु, नभग, घृषु, शर्याति, नरिष्यन्त, नाभाग, दिष्ट, करुष, पृषध्र और वसुमान थे। इस मन्वन्तर के इन्द्र का नाम पुरन्दर था। इस मन्वन्तर के सप्तर्षियों के नाम कश्यप, अत्रि, वशिष्ठ, विश्वामित्र, गौतम, जमदग्नि और भारद्वाज था। इस मन्वन्तर में आदित्य, वसु, रुद्र, विश्वेदेव, मरुदगण, अश्विनी कुमार और ऋभु देवताओं के प्रधान गण थे। इस मन्वन्तर में कश्यप की स्त्री अदिति के गर्भ से वामन रूप में भगवान श्रीहरि ने अवतार ग्रहण किया था।

विवस्वान की दो पत्नियाँ थीं, जिनका नाम संज्ञा और छाया था। ये दोनों विश्वकर्मा की पुत्रियाँ थीं। संज्ञा के यम, यमी और श्राद्धदेव तीन पुत्र थे। छाया के सावर्णि, शनेश्चर और तपती नामक तीन पुत्रियाँ थीं।

जब संज्ञा ने बड़वा का रूप धारण कर लिया तब दोनों अश्विनी कुमार हुए।

आठवें मन्वन्तर में सावर्णि मनु होंगे। उनके निर्मोक और विरजस्क आदि पुत्र होंगे। उस समय सुतपा, विरज और अमृतप्रभ देवगण होंगे। विरोचन के पुत्र बलि इन्द्र बनेंगे। आठवें मन्वन्तर के गालव, दिप्तिमान, परशुराम, अश्वत्थामा, कृपाचार्य, ऋष्यश्रंग और व्यास जी सप्तर्षि बनेंगे। देवगुहा की पत्नी सरस्वती के गर्भ से सार्वभौम नामक भगवान के अवतार होंगे। ये ही प्रभु पुरन्दर इन्द्र से स्वर्ग का राज्य छीन कर राजा बलि को देंगे।

नवे मन्वन्तर में वरुण के पुत्र दक्षसावर्णि मनु होंगे। भूतकेतु, दीप्तिकेतु आदि उनके पुत्र होंगे। पार, मरीचि आदि देव गण होंगे और अद्भूत नाम के इन्द्र बनेंगे। इस मन्वन्तर में द्युतिमान आदि सप्तर्षि होंगे। आयुष्मान की पत्नी अम्बुधारा के गर्भ से ऋषभ के रूप में भगवान का कलावतार होगा। अद्भुत नामक इन्द्र त्रिलोकी का उपयोग करेंगे।

दसवें मन्वन्तर में उपश्लोक के पुत्र सावर्णि मनु होंगे। इनके भूरिषेण आदि पुत्र होंगे। सुवसन, विरुद्ध आदि देवगण होंगे। शुम्भु इस मन्वन्तर के इन्द्र होंगे। हविष्मान, सुकृति, सत्य, जय, मूर्ति, इस मन्वन्तर के सप्तऋषि होंगे। विश्वसृज की पत्नी विषूचि के गर्भ से भगवान विष्वकसेन के रूप में अवतार ग्रहण करेंगे।

ग्यारहवें मन्वन्तर में धर्मसावर्णि मनु होंगे। उनके सत्य, धर्म आदि दस पुत्र उत्पन्न होंगे। विंहगम, कामगम,

निर्वाण, रुचि देवताओं के गण होंगे। वैधृत इस मन्वन्तर के इन्द्र बनेंगे। आरुण आदि सप्तर्षि होंगे। आर्यक की पत्नी वैधृत के गर्भ से धर्म सेतु भगवान का अवतार ग्रहण करेंगे तथा त्रिलोकी की रक्षा करेंगे।

बारहवें मन्वन्तर में रुद्रसावर्णि मनु होंगे। उनके देववान, उपदेव, देवश्रेष्ठ पुत्र होंगे। ऋृतधामा इस मन्वन्तर के इन्द्र होंगे। हरित आदि देवगण होंगे। मेर्ति, तपस्वी, आग्नीध्रक सप्तर्षि होंगे। सत्यासहा की पत्नी सुन्टता के गर्भ से स्वधामा के रूप में भगवान का अंशावतार होगा।

तेरहवें मन्वन्तर में परम जितेन्द्रिय देव सावर्णि मनु होंगे। इनके चित्रसेन, विचित्र आदि पुत्र उत्पन्न होंगे। सुकर्म और सुत्राप देवगण होंगे। इस मन्वन्तर के इन्द्र दिवस्पति होंगे। इस मन्वन्तर के सप्तर्षि निर्मोक और तत्त्वदर्श होंगे। देवहोत्र की पत्नी बृहति के गर्भ से योगेश्वर के रूप में भगवान का अंशावतार होगा।

चौहदवें मनु इन्द्रसावर्णि होंगे। इनके उरु, गम्भीर और बुद्धि पुत्र होंगे। अग्नि, बाहु, सुचि, शुद्ध और मागध इस मन्वन्तर के सप्तर्षि होंगे। सत्रायण की पत्नी विताना के गर्भ से बृहम्दान रूप में भगवान अवतार ग्रहण करेंगे। वे कर्मकाण्ड का विस्तार करेंगे। ये चौदह मन्वन्तर भूत, वर्तमान और भविष्य तीनों लोकों में चलते रहेंगे।



१०. राजा बलि की स्वर्ग पर विजय

श्री शुकदेव जी ने बताया कि इन्द्र ने बलि को युद्ध में हराकर उसे मौत के घाट उतार दिया तो शुक्राचार्य जी ने संजीवनी विद्या के द्वारा उसे जीवित कर दिया था। बलि अपने गुरु शुक्राचार्य जी के साथ-साथ भृगुवंशी ब्राह्मणों की सेवा में तल्लीन हो गया। भृगुवंशी ब्राह्मणों ने पृथ्वी पर विजय प्राप्त करने के लिए बलि से विश्वजीत यज्ञ कराया। उस यज्ञ से सोने की चादर से मंडित रथ, हरे रंग के घोड़े, सिंह चिन्ह की ध्वजा प्रकट हुए। इसके साथ ही कभी खाली न होने वाला तरकस भी प्रकट हुआ। प्रह्लाद जी ने राजा बलि को माला और गुरु शुक्राचार्य जी ने शंख भेंट किया।

राजा बलि ने अमरावती पर आक्रमण कर दिया। इन्द्र सब देवताओं के साथ अपने गुरु बृहस्पतिजी के पास गए। बृहस्पतिजी ने उन्हें सलाह दी कि इस समय राजा बलि का पक्ष शक्तिशाली है। इसलिए आप सब स्वेच्छा से अनेक रूप धारण कर स्वर्ग को खाली कर दो। देवताओं ने अपने गुरु की सलाह मानकर स्वर्ग को खाली कर दिया। राजा बलि ने खाली पड़ी अमरावती पर अपना अधिकार कर लिया। इसके बाद धीरे-धीरे उसने तीनों लोकों पर अपना अधिकार कर लिया। शुक्राचार्य जी ने राजा बलि से इसके बाद सौ अश्वमेघ कराए। यज्ञों के प्रभाव से राजा बलि का यश तीनों लोकों में फैल गया।

११. कश्यप जी द्वारा अदिति को पयोव्रत का उपदेश

अदिति को यह जानकर बड़ा दुःख हुआ कि दैत्यों ने स्वर्ग पर अधिकार कर लिया है। कश्यप जी की समाधि समाप्त होने पर वे अदिति से मिलने आश्रम पर गए। अदिति बोली— मेरे स्वामी! मैं आपकी दासी हूँ। मेरा दुःख दूर करें। कश्यपजी ने कहा— भगवान वासुदेव की आराधना करने से तुम्हारा दुःख दूर हो जाएगा।

अदिति ने पूछा कि भगवान वासुदेव की आराधना करने के लिए क्या करना होगा ? कश्यप जी ने बताया कि फाल्गुन माह के शुक्ल पक्ष में बारह दिन केवल दूध पीकर रहो। अमावस्या को सूअर द्वारा खोदी गई मिट्टी को शरीर पर मलकर नदी में स्नान करो। इसके पश्चात् एकाग्रचित से मूर्ति, वेदी, सूर्य, अग्नि, जल और गुरुदेव के रूप में भगवान श्री कृष्ण की पूजा करो। गन्ध माला आदि से पूजन के पश्चात् भगवान वासुदेव की मूर्ति को दूध से स्नान कराओ। इसके पश्चात् वस्त्र, यज्ञोपवित, आभूषण, आचमन, गन्ध, धूप के द्वारा द्वादशाक्षर मंत्र— ऊँ नमो भगवते वासुदेवाय से पूजा करो। मंत्र की एक माला अर्थात् एक सौ आठ जप करो। दो पण्डितों को खीर का भोजन कराना है। केवल पयोव्रती रूप से यह व्रत करना है। त्रयोदशी के दिन पण्डित के द्वारा शास्त्रोक्त विधि से भगवान श्रीहरि को पंचामृत से स्नान कराना।

भगवत कथाओं द्वारा भगवान की पूजा करनी है। यह भगवान की श्रेष्ठ आराधना है। इस व्रत का नाम ही पयोव्रत है। इससे भगवान तुम पर प्रसन्न होकर तुम्हारी इच्छा पूर्ण करेंगे। अदिति ने कश्यपजी द्वारा बताए पयोव्रत को शुरू कर दिया।



१२. भगवान का प्रकट होकर अदिति को वर देना

अदिति का पयोव्रत पूरा होने पर भगवान वासुदेव ने उन्हें साक्षात् दर्शन दिए। वे पीताम्बर धारण किए हुए थे। उनके चार भुजाएँ थीं, जिनमें उन्होंने शंख, चक्र, गदा और पद्म धारण कर रखे थे।

अदिति ने उन्हें प्रणाम किया। भगवान बोले—देवताओं की जन्मदाता अदिति मैं तुम्हारी इच्छा जानता हूँ, परन्तु इस समय राजा बलि पर विजय प्राप्त नहीं की जा सकती। ऐसा मेरा निश्चय है, क्योंकि इस समय पण्डित उनके अनुकूल हैं। तुमने पयोव्रत धारण कर मेरी पूजा एवं स्तुति की है। इसलिए मैं तुम्हारे पति कश्यप के वीर्य के अंश रूप से प्रवेश करूँगा और तुम्हारा पुत्र बनकर तुम्हारी मनोकामना पूर्ण करूँगा। परन्तु यह बात किसी पर भी प्रकट नहीं होनी चाहिए। इतना कहकर भगवान अन्तर्धान हो गए।

कश्यपजी अन्तर्यामी थे। उनसे कोई भी बात छिपी

नहीं थी। उन्होंने समाधि द्वारा ज्ञात कर लिया कि भगवान का अंश मेरे अन्दर प्रविष्ट कर गया है। कश्यप जी ने एकाग्रचित से अपनी तपस्या के द्वारा अपने वीर्य को अदिति के गर्भ में प्रविष्ट करा दिया।



१३. भगवान वामन का राजा बलि की यज्ञ शाला में पधारना

समय पूरा होने पर भगवान ने अवतार ग्रहण कर लिया। विजया द्वादशी को भगवान ने वामन रूप में अवतार ग्रहण किया। अदिति के देखते-देखते वामन ने ब्रह्मचारी का रूप धारण कर लिया। भगवान वामन को पता चला कि राजा बलि नर्मदा नदी के उत्तरी तट पर भृगुकच्छ नामक एक बड़ा अश्वमेघ यज्ञ का आयोजन कर रहे हैं। भगवान वामन ने अश्वमेघ यज्ञ मण्डप में प्रवेश किया। वे कमर में मूँज की मेखला और गले में यज्ञोपवित धारण किए हुए थे। उन्होंने बालक में मृग चर्म और सिर पर जटा धारण कर रखी थी।

सब ने भगवान वामन का स्वागत किया। राजा बलि ने उनके चरण पखारे और चरण कमल की धोवन को अपने सिर पर धारण किया। राजा बलि ने कहा—आप की जो इच्छा हो उसे मैं अवश्य पूरी करूँगा।



१४. भगवान वामन का बलि से तीन पग पृथ्वी माँगना और शुक्राचार्य जी का रोकना

भगवान वामन बोले— हे दैत्येन्द! आप मुँह माँगी वस्तु प्रदान करने वालों में श्रेष्ठ हैं। इसी से मैं आपसे केवल तीन पग भूमि चाहता हूँ। राजा बलि बोले— मैं तीनों लोकों का अधिपति हूँ। मैं तीन पग पृथ्वी तो क्या द्वीप का द्वीप दे सकता हूँ। बलि ने जब तीन डग पृथ्वी देने का संकल्प करने के लिए जल पात्र उठाया तो शुक्राचार्य जी ने राजा बलि से कहा— ये स्वयं अविनाशी भगवान श्रीहरि हैं। देवताओं का काम बनाने के लिए इन्होंने अदिति के गर्भ अवतार धारण किया है। इसलिए मैं इसे ठीक नहीं समझता। तुम अपनी की हुई प्रतिज्ञा पूरी नहीं कर पाओगे। बलि बोला— जो व्यक्ति कुछ देना स्वीकार कर लेता है और फिर कहता है मैं नहीं दूँगा, यह तो अस्वीकारात्मक असत्य है। इससे उसकी अपकीर्ति होती है। वह तो जीवित होते हुए भी मृतक के समान है।



१५. भगवान द्वारा विराट रूप होकर दो ही पग में पृथ्वी और स्वर्ग को नाप लेना

राजा बलि ने उत्तर दिया— गुरुदेव! मैं प्रह्लाद का पौत्र हूँ तथा एक बार देने की प्रतिज्ञा ले चुका हूँ। पृथ्वी

को देने में सोच-विचार करने की क्या आवश्यकता है? मैं इस ब्रह्मचारी की इच्छा ज़रूर पूरी करूँगा।

उसने विधिपूर्वक भगवान वामन की पूजा की और हाथ में जल लेकर तीन पग भूमि देने का संकल्प लिया। इसके बाद अनन्त भगवान का त्रिगुणात्मक वामन रूप बढ़ने लगा। बात ही बात में उन्होंने पृथ्वी, आकाश, स्वर्ग, पाताल, समुद्र, मनुष्य, देवता और ऋषि सब उसमें समा गए।

अब बलि ने भगवान की इन्द्रियों व शरीर में सभी चराचर प्राणियों के दर्शन किए। भगवान वामन ने एक पग में बलि की सारी पृथ्वी नाप ली, शरीर से आकाश और भुजाओं से सब दिशाएँ नाप लीं।

दूसरे पग से स्वर्ग को भी नाप लिया। तीसरा पग ऊपर की ओर जाता हुआ महर्लोक, जनलोक और तपलोक से भी ऊपर सत्य लोक में पहुँच गया।



१६. बलि को बांधा जाना

जब भगवान का पग अन्यलोक में चला गया तो ब्रह्माजी ने अन्य देवताओं के साथ मिलकर भगवान श्रीहरि के चरण कमल की अगवानी की। उन्होंने भगवान के ऊपर उठे हुए चरण का अर्घ्य पाद्य से पूजन किया। इससे दैत्य चिढ़ गए और कहने लगे— यह बहुत ही मायावी निकला। यह देवताओं का काम बनाना चाहता है। हमें अपने इस शत्रु को मार डालना चाहिए। वे अपने

हथियार उठाकर भगवान वामन को मारने लगे। इस पर भगवान के पार्षद उन सैनिकों को मारने लगे।

जब राजा बलि ने देखा कि मेरे सैनिकों को भगवान के पार्षद मार रहे हैं तो बलि क्रोधित होकर देवताओं को मारने और लड़ने को उद्यत हो गया। परन्तु शुक्राचार्य के शाप को स्मरण करके युद्ध को रोक दिया। जो पहले हमारी उन्नति और देवताओं की अवनति, जिनके कारण हुई थी, वही काल भगवान उनकी उन्नति और हमारी अवनति का कारण बन रहा है।

भगवान श्रीहरि के हृदय की बात जानकर गरुड़ ने वरुणपाश द्वारा बलि को बांध लिया। भगवान बलि से बोले— तुमने मुझे तीन पग भूमि दी थी। दो पग में मैंने समस्त लोक नाप लिए हैं, अब तीसरा पग कहाँ रखूँ? तुमको अपनी प्रतिज्ञा पूरी न करने के कारण नरक में रहना पड़ेगा।



१७. बलि के द्वारा भगवान की स्तुति बलि का सुतलोक को जाना

दैत्यराज नम्रतापूर्वक बोला— आप अपना तीसरा पग मेरे सिर पर रख दीजिएगा। आप लौकिक दृष्टि से प्रह्लाद के भाई-बन्धुओं का नाश करने वाले हैं। उसी समय भगवान के प्रेमी भक्त प्रहलाद भी वहाँ आ पहुँचे।

राजा बलि ने देखा कि मेरे दादा जी बड़े प्रसन्न हैं।

प्रह्लाद ने कहा— प्रभु! आपने जो मुझे इन्द्र पद दिया था, उसे आपने छीन लिया है। इतने में बलि की पत्नी विन्ध्यावली अपने पति को बंधा हुआ देखकर बोली— प्रभु! आपने क्रीड़ा के लिए इस संसार की रचना की है। आप ही इसके कर्त्ता-भर्त्ता और संहर्त्ता हैं। ब्रह्माजी ने कहा— भगवान! आप इस बलि को छोड़ दीजिए। इसने अपना सर्वस्व आपको समर्पित कर दिया है। भगवान श्रीहरि बोले-- ब्रह्माजी! मैं जिस पर कृपा करता हूँ उसका धन भी छीन लेता हूँ। आप देख रहे होंगे कि इसने उस माया पर विजय प्राप्त कर ली है जिस पर विजय पाना अत्यन्त कठिन है। इस कारण मैंने इसे वह स्थान दिया है जो देवताओं को भी कठिनाई से प्राप्त होता है। सावर्णि मन्वन्तर में यह मेरा परम भक्त इन्द्र होगा। तब तक विश्वकर्मा के बनाए हुए सुतल लोक में रहेगा।

यह सुनकर दैत्यराज बलि की आँखों में आँसू छलक आए। बलि ने कहा कि बड़े-बड़े लोकपालों और देवताओं पर भी जो कृपा आपने अभी तक नहीं की है वह मुझ जैसे नीच असुर को प्राप्त हो गई है। इतना कहते ही बलि वरुणपाश से मुक्त हो गया।

बलि ने भगवान ब्रह्माजी और भगवान शिव को प्रणाम किया और प्रसन्नतापूर्वक असुरों के साथ सुतललोक को चला गया। भगवान श्रीहरि ने स्वर्गलोक का राज्य बलि से लेकर इन्द्र को सौंप दिया। अदिति की कामना पूर्ण की। भगवान श्रीहरि ने प्रह्लाद से कहा— बेटा! तुम्हारा कल्याण हो। अब तुम सुतललोक

में जाओ। वहाँ अपने पौत्र बलि के साथ सुखपूर्वक रहो। वहाँ तुम्हें मेरे नित्य दर्शन प्राप्त होते रहेंगे। मेरे दर्शन से तुम्हारे कर्मबन्धन नष्ट हो जाएँगे।



१८. भगवान के मत्स्यावतार की कथा

श्री शुकदेव जी ने बताया कि भगवान गौ, ब्राह्मण, साधु, देवता, वेद, धर्म और अर्थ की रक्षा हेतु शरीर धारण करते रहते हैं। पिछले कल्प के अन्त में ब्रह्माजी के सो जाने के कारण ब्राह्म नामक नैमिति का प्रलय हुआ। समस्त लोक समुद्र में डूब गए। उस समय ब्रह्माजी के मुख से वेद प्रकट हुए जिन्हे ह्यग्रीव नामक दैत्य ने चुरा लिया। सर्वशक्तिमान भगवान श्रीहरि ने ह्यग्रीव की यह चेष्टा देखकर मत्स्यावतार ग्रहण किया। उस समय सत्यव्रत नामक राजर्षि जल पीकर तपस्या कर रहे थे। उसी समय उनकी अंजलि में एक मछली का बच्चा आ गया। वह मछली को नदी में डालने ही वाले थे कि मछली बोली—मैं जल के अन्दर रहने वाले जन्तुओं से बड़ी दुःखी हूँ। आप मुझे नदी के जल में ही छोड़ रहे हैं।

मछली की दीनता भरी वाणी सुनकर वह मछली को अपने कमण्डल में रखकर अपने आश्रम में ले आए। मछली बोली— मैं इस छोटे से बर्तन में सुखपूर्वक नहीं रह सकती। मेरे लिए कोई बड़ा स्थान दीजिए। तब ऋषि सत्यव्रत ने उसे एक घड़े में रख दिया। थोड़ी देर में

मछली बड़ी हो गई और सत्यव्रत से बोली— मेरे लिए अब यह पात्र भी छोटा पड़ गया है। तब सत्यव्रत ने मछली को सरोवर में छोड़ दिया। कुछ समय बाद मछली बोली— सरोवर का पानी भी कम है। अब आप मुझे किसी बड़े समुद्र में छोड़ दीजिए।

इस पर मत्स्य भगवान ने सत्यव्रत से कहा कि समुद्र में इसे मगर आदि खा जाएँगे। कोई बात नहीं और सुनो आज से सातवें दिन तीनों लोकों में प्रलय आ जाएगी और ये समुद्र में डूब जाएँगे। जब तीनों लोक समुद्र में डूबने लगेंगे तब मेरी प्रेरणा से तुम्हारे पास एक नौका आएगी। उस समय तुम सप्तर्षियों के साथ समस्त प्राणियों को लेकर उस पर चढ़ जाना। प्रचण्ड आँधी के कारण नाव डगमगाने लगेगी। तब मैं इसी रूप में वहाँ उपस्थित हो जाऊँगा तब तुम वासुकि नाग के द्वारा उस नाव को मेरे सींग से बाँध देना।

भगवान के बताए हुए समय पर भयंकर आँधी आई। उसी समय मत्स्य के रूप में भगवान प्रकट हुए। उनके शरीर में एक सींग था। भगवान के आदेशानुसार नाव को सींग के साथ बाँध दिया गया। भगवान ने राजर्षि सत्यव्रत को ज्ञान, भक्ति और कर्मयोग से परिपूर्ण दिव्य पुराण का उपदेश दिया। उसे ही मत्स्य पुराण कहते हैं।

जब पिछले प्रलय का अन्त हुआ तो ब्रह्माजी की नींद खुली। तब भगवान ने हयग्रीव असुर का अन्त करके उससे वेदों को प्राप्त किया और उन्हें ब्रह्माजी को सौंप दिया। राजा सत्यव्रत इस कल्प में वैवस्वत मनु हुए।

नवम स्कन्ध

१. वैवस्वत मनु के पुत्र राजा व सुद्युम्न की कथा

श्री शुकदेव जी ने बताया कि प्रलय के समय मनु वैवस्वत थे। उनकी नाभि से स्वर्णमय कमल प्रकट हुआ। उसी से चतुर्मुख ब्रह्माजी का आविर्भाव हुआ। ब्रह्माजी के मन में मरीचि और मरीचि के पुत्र कश्यप हुए। कश्यप जी की पत्नी अदिति से विवस्वान सूर्य का जन्म हुआ। विवस्वान की पत्नी संज्ञा से श्राद्धदेव मनु का जन्म हुआ। श्राद्धदेव की पत्नी श्रद्धा के गर्भ से इक्ष्वाकु, नृग, शर्याति, दिष्ट, धृष्ट, करुष, नरिष्यन्त, पृषध्र, नभट और कवि नामक दस पुत्र उत्पन्न हुए।

वशिष्ठ जी ने मित्रावरुण का यज्ञ कराया। यज्ञ के फलस्वरूप पुत्र के स्थान पर इला नाम की पुत्री का जन्म हुआ। परम यशस्वी भगवान वशिष्ठ जी ने पुरुषोत्तम भगवान नारायण की स्तुति की। श्री नारायण ने संतुष्ट होकर वरदान दिया। वरदान के प्रभाव से वह कन्या श्रेष्ठ पुत्र सुद्युम्न में बदल गई।

एक दिन सुद्युम्न जी शिकार खेलने वन में गए। अन्त में मेरु पर्वत की तलहटी में पहुँच गए। वहाँ पर भगवान शंकर पार्वती के साथ विहार कर रहे थे। उसमें प्रवेश करते ही सुद्युम्न स्त्री रूप में बदल गई और उनका घोड़ा भी घोड़ी में परिवर्तित हो गया।

एक दिन भगवान शंकर के दर्शनार्थ व्रतधारी ऋषि उस वन में आए। उस समय पार्वती जी वस्त्रहीन थीं। ऋषि को देखकर वह लज्जित हो गईं। उन्होंने तुरन्त शिवजी की गोद से उतरकर वस्त्र धारण करें। ऋषि वहाँ से लौटकर भगवान नर नारायण के आश्रम में चले गए।

उसी समय भगवान शंकरजी ने भगवती अम्बिका को प्रसन्न करने के लिए कहा— मेरे अतिरिक्त इस वन में जो भी पुरुष प्रवेश करेगा वह स्त्री रूप में परिवर्तित हो जाएगा। अब सुद्युम्न स्त्री बने हुए दूसरे वन में विचरने लगे। उसी समय बुद्ध ने कहा कि आश्रम के पास एक अति सुन्दर स्त्री घूम रही है।

उस सुन्दर स्त्री ने चन्द्रकुमार बुद्ध को अपना पति बनाना चाहा। बुद्ध ने उसके गर्भ से पुरुरवा नामक पुत्र को जन्म दिया। वशिष्ठ जी ने दुबारा से सुद्युम्न को स्त्री से पुरुष बना दिया। इस प्रकार सुद्युम्न एक माह पुरुष रहता और एक माह स्त्री रहता। इनके तीन पुत्र उत्कल, गय, और विमल हुए। सुद्युम्न अपने पुत्र पुरुरवा को राज्य देकर वन में चले गए।



२. पृषध्र आदि मनु के पाँच पुत्रों का वंश

वैवस्वत मनु के पुत्र हेतु यमुना के तट पर सौ वर्ष तक तपस्या की। उनको दस पुत्र प्राप्त हुए। सबसे बड़े

पुत्र का नाम इक्ष्वाकु था और सबसे छोटे पुत्र का नाम कवि था। मनु के पुत्र करुष से कारुष नामक क्षत्रिय हुए। नृग का पुत्र सुमति था। उसका पुत्र भूतज्योति और भूतज्योति का पुत्र वसु था। वसु का पुत्र प्रतीक हुआ और प्रतीक का पुत्र ओद्यवान हुआ। ओद्यवान के पुत्र का नाम ओधवान था। उनके आधवती नाम की एक पुत्री भी हुई जिसका विवाह सुदर्शन के साथ हुआ। मनुपुत्र नरिष्यन्त से चित्रसेन, चित्रसेन से ऋक्ष और ऋक्ष से मीढवान, मीढवान से कूर्च और कूर्च से इन्द्रसेन की उत्पत्ति हुई। इन्द्रसेन से वीति होत्र, वीतिहोत्र से सत्यश्रवा, सत्यश्रवा से उरुश्रवा और उरुश्रवा से देवदत्त की उत्पत्ति हुई। देवदत्त के अग्निवेश्य पुत्र हुआ जो स्वयं अग्निदेव थे

दिष्ट के पुत्र का नाम नाभाग था। नाभाग अपने कर्म से वैश्य बन गया। नाभाग का पुत्र भलन्दन, भलन्दन का पुत्र वत्सप्रीति, वत्सप्रीति का पुत्र प्रांशु और प्रांशु का पुत्र प्रमत्ति हुआ। प्रमत्ति का पुत्र खनित्र, खनित्र का चाक्षुष और चाक्षुष का पुत्र विविशति हुआ। विविशति के रम्भ और रम्भ के पुत्र का नाम खनिनेत्र था। खनिनेत्र के पुत्र का नाम करन्धम और करन्धम के अविक्षित हुआ। अविक्षित का पुत्र मरुत चक्रवर्ती राजा हुए।

मरुत का पुत्र, दम, दम का पुत्र राज्यवर्धन, राज्यवर्धन का पुत्र सुधृति, सुधृति का पुत्र नर हुआ। नर का पुत्र केवल, केवल का पुत्र तृष्णाबिन्दु हुआ। तृष्णाबिन्दु की पत्नी का नाम अलम्बुषा देवी था। उसके

एक पुत्री इडविडा और कई पुत्रों ने जन्म लिया। विश्वा ने अपने पिता पुलस्त्यजी से विद्या ग्रहण करने के बाद अपनी पत्नी इडविडा के गर्भ से लोकपाल कुबेर को उत्पन्न किया। तृणाबिन्दु के विशाल शून्यबन्धु और धमूम्रकेतु दो पुत्र हुए। विशाल ने वैशाली नगरी बसाई। विशाल के पुत्र का नाम हेमचन्द्र, हेमचन्द्र के पुत्र का नाम धूम्राक्ष, धूम्राक्ष के पुत्र का नाम संयम था। संयम के कृशाश्व और देवज दो पुत्र हुए। कृशाश्व के पुत्र का नाम सोमदत्त, सोमदत्त के पुत्र का नाम सुमति, और सुमति के पुत्र का नाम जन्मेजय था। ये विशाल राजवंशी राजा थे।



३. महर्षि च्यवन और सुकन्या का चरित्र, शर्याति का वंश

एक दिन राजा शर्याति अपनी कन्या सुकन्या के साथ वन में घूमते-घूमते च्यवन ऋषि के आश्रम पर जा पहुँचे। सुकन्या ने एक स्थान पर देखा कि बाँबी के छेट में से दो ज्योतियाँ दिख रही हैं। सुकन्या ने बाल सुलभ चपलता से एक काँटे की सहायता से उन ज्योतियों को बेध दिया। उसी समय राजा शर्याति का मल-मूत्र रुक गया। तब सुकन्या ने अपने पिता से डरते-डरते कहा— मैंने अनजाने में दो ज्योतियों को काँटे से छेद दिया है। अपनी कन्या की यह बात सुनकर शर्याति

घबरा गए। उन्होंने धीरे-धीरे बाँबी में छिपे हुए च्यवन ऋषि की स्तुति करके उन्हें प्रसन्न किया। इसके बाद च्यवन मुनि का अभिप्राय समझकर उन्होंने अपनी कन्या को उन्हें समर्पित कर दिया और स्वयं अपनी राजधानी लौट आए। कुछ समय व्यतीत हो जाने पर उनके आश्रम पर दोनों अश्विनी कुमार आए। च्यवन मुनि ने उनका यथोचित सत्कार किया और उनसे बोले— आप दोनों समर्थ हैं, इसलिए मुझे युवा अवस्था प्रदान कीजिए। मेरी पत्नी सुकन्या ऐसा चाहती है।

अश्विनी कुमारों ने च्यवन ऋषि की बात मानकर वे उन्हें सिद्धों द्वारा निर्मित कुण्ड पर ले जाकर उसमें उन्हें स्नान कराया। उसी समय कुण्ड से तीन पुरुष बाहर निकले। सुकन्या ने देखा कि तीनों ही एक आकृति के तथा सूर्य के समान तेजस्वी हैं तो अपने पति को न पहचान कर उसने आश्विनी कुमारों की शरण ली। उन्होंने उसके पति को बतला दिया। फिर वे च्यवन ऋषि से आज्ञा लेकर स्वर्ग को चले गए।

कुछ समय के पश्चात् यज्ञ करने की इच्छा से राजा शर्याति च्यवन ऋषि के आश्रम पर आए। उन्होंने वहाँ देखा कि सुकन्या के पास सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष बैठा है। शर्याति नाराज़ होकर सुकन्या से बोले— तूने च्यवन ऋषि को धोखा दिया है। लड़की ने बताया कि ये च्यवन ऋषि ही हैं। इन्होंने कुण्ड में स्नान करके फिर से यौवन प्राप्त कर लिया है।

शर्याति के उत्तानवर्हि, आनर्त और भूरिषेण नाम के

तीन पुत्र हुए। इनमे से आनर्त रेवत हुआ। उसने समुद्र के अन्दर कुशस्थली नगर बसाया। उसके सौ श्रेष्ठ पुत्र पैदा हुए। सबसे बड़े पुत्र कुकुद्मी अपनी पुत्री रेवती को ब्रह्माजी के पास ले जाकर उसके लिए वर पूछा। ब्रह्माजी ने बताया कि भगवान नारायण के अंशावतार महाबली बलदेव जी (बलराम जी) ने पृथ्वी पर अवतार लिया है। इसके लिए वे ही उत्तम वर हैं। वहीं रेवती बलराम की पत्नी हुई।



४. नाभाग अम्बरीष की कथा और दुर्वासा जी की दुख निवृत्ति

शुकदेव जी ने बताया कि नाभाग मनुपुत्र नभग का पुत्र था। जब वह दीर्घ समय तक ब्रह्मचर्य का पालन करके लौटा। तब बड़े भाईयों ने अपने से छोटे परन्तु विद्वान भाई को हिस्से में केवल पिता को ही दिया क्योंकि सम्पत्ति तो उन्होंने आपस में पहले ही बाँट ली थी। उसने अपने पिता से जाकर पूछा— मेरे हिस्से में आपके अतिरिक्त धन सम्पत्ति में क्या आया है ?

पिताश्री ने उत्तर दिया— देखो, अंगिरस गोत्र के ब्राह्मण इस समय एक बड़ा यज्ञ कर रहे है। ये प्रत्येक छठे दिन अपने कर्म में भूल कर जाते हैं। तुम इन महात्माओं के पास जाकर उन्हें वैश्वदेव सम्बन्धी दो सूक्त बतला दो। जब वे स्वर्ग जाने लगेगे तब यज्ञ से बचा

हुआ अपना सारा धन तुम्हें दे देंगे। इसलिए अब तुम उन्हीं के पास चले जाओ। उसने अपने पिता की आज्ञा का पालन किया।

जब नाभाग उस धन को लेने लगा तो उत्तर दिशा से एक काले रंग का व्यक्ति आया। उसने कहा— यह धन तो महादेव जी को मिलना चाहिए। तब रुद्र भगवान प्रकट हुए। उन्होंने वह सब नाभाग को दे दिया।

नाभाग के पुत्र हुए अम्बरीष वे भगवान के बड़े प्रेमी और उदार धर्मात्मा थे। वे श्री कृष्ण जी की मंगलकारी कथाओं में अपने कानों को लगाए रखते थे। अम्बरीष के पैर भगवान के क्षेत्र आदि की पैदल यात्रा करने में ही लगे रहते थे और वे भगवान श्री कृष्ण के चरण कमलों की वन्दना किया करते थे। उन्होंने धन्व नाम के निर्जल देश में सरस्वती नदी के किनारे बड़ी-बड़ी दक्षिणा वाले अनेकों अश्वमेघ यज्ञ करके यज्ञाधिपति भगवान की आराधना की। उनकी अनन्य प्रेममयी भक्ति से प्रसन्न होकर भगवान श्रीकृष्ण ने उनकी रक्षा के लिए अपने सुदर्शन चक्र को नियुक्त कर दिया था जो विरोधियों को भयभीत करने वाला और भक्तों की रक्षा करने वाला है। एक बार उन्होंने अपनी धर्मपत्नी के साथ भगवान श्री कृष्ण की आराधना करने हेतु एक वर्ष तक द्वादशी प्रधान एकादशी का व्रत किया।

व्रत की समाप्ति पर ब्राह्मणों को स्वादिष्ट और गुणकारी भोजन कराकर साठ करोड़ गौएँ भेंट में दीं। उन गौओं के सींग स्वर्ण से और खुर चाँदी से मढ़े हुए थे।

सुन्दर-सुन्दर वस्त्र उन्हें ओढ़ा दिए गए थे। अब राजा ने ब्राह्मणों से आज्ञा लेकर व्रत पारण करने की तैयारी की। उसी समय शाप और वरदान देने में समर्थ दुर्वासा ऋषि उनके यहाँ अतिथि के रूप में पधारे। राजा अम्बरीष ने उनसे भोजन के लिए प्रार्थना की। उन्होंने राजा की प्रार्थना स्वीकार कर ली और आवश्यक कर्मों से निवृत्त होने के लिए यमुना नदी पर चले गए। इधर द्वादशी केवल घड़ी भर शेष रह गई थी। उन्होंने ब्राह्मणों से परामर्श किया। ब्राह्मण को बिना भोजन कराए और द्वादशी रहते पारण न करना दोनों ही दोषी हैं। श्रुतियों में ऐसा कहा गया है कि जल पी लेना भोजन करना ही है, नहीं भी करना है। इसलिए इस समय जल से पारण कर लेता हूँ।

आवश्यक कर्मों से निवृत्त होकर दुर्वासा जी यमुना तट से लौट आए। उन्होंने अनुमान से समझ लिया कि राजा ने पारण कर लिया है। इस पर क्रोध में भरकर उन्होंने अपनी एक जटा उखाड़ी और उससे राजा अम्बरीष को मारने के लिए कन्या उत्पन्न की। वह प्रलय काल की आग के समान दहक रही तलवार लेकर अम्बरीष को मारने दौड़ी। परन्तु राजा ज़रा भी विचलित नहीं हुए। वे ज्यों के त्यों खड़े रहे। भगवान श्री कृष्ण ने उनकी रक्षा के लिए सुदर्शन चक्र को नियुक्त कर रखा था। चक्र ने कृत्या को जलाकर राख कर दिया। दुर्वासा जी ने देखा कि सुदर्शन उनकी ओर बढ़ रहा है तो वे अपनी जान बचाकर भागने लगे। भगवान का सुदर्शन चक्र उनके पीछे दौड़ने लगा। सुदर्शन चक्र से बचने के लिए दुर्वासा जी दिशा, आकाश,

पृथ्वी, अतल-वितल, नीचे के पाताल लोक, समुद्र, लोकपाल एवं स्वर्ग लोक तक में गए परन्तु उन्हें कहीं भी सुरक्षा नहीं मिली। अन्त में वे भगवान शंकर की शरण में पहुँचे। शंकर भगवान ने कहा— यह चक्र भगवान विश्वेश्वर का शस्त्र है। आप उन्हीं की शरण में पहुँचें। वे ही आपकी रक्षा कर सकते हैं।

सब जगह से निराश होकर अन्त में वे भगवान श्री कृष्ण के पास गए और काँपते हुए उनके चरणों में गिर पड़े और बोले— मुझे बचाइए। भगवान श्री कृष्ण ने कहा दुर्वासा जी! मैं सर्वथा भक्तों के आधीन हूँ। मुझ में तनिक भी स्वतंत्रता नहीं है। मेरे सीधे-सादे भक्तों ने मेरे हृदय को अपने वश में कर रखा है। इसलिए हे दुर्वासा जी! आप उन्हीं अम्बरीष के पास जाइए और उनसे क्षमा माँगिए। तभी आपको शान्ति मिलेगी।

दुर्वासा जी लौटकर अम्बरीष के पास गए और उनके पैरों में गिरकर बोले— मेरी रक्षा कीजिए। दुर्वासा जी द्वारा चरण पकड़ने से लज्जित होकर राजा अम्बरीष भगवान के सुदर्शन चक्र की स्तुति करने लगे। उनकी प्रार्थना से चक्र शान्त हो गया। दुर्वासा जी ने कहा कि आज मैंने भगवान के प्रेमी भक्तों का महत्त्व देखा है। अम्बरीष ने अब तक भोजन नहीं किया था केवल जल पीकर ही दिन व्यतीत कर रहे थे। दुर्वासा जी ने राजा अम्बरीष के चरण स्पर्श किए। फिर दोनों ने भोजन किया। दुर्वासा जी ने आज्ञा लेकर ब्रह्मलोक की यात्रा की।

५. इच्छवाकु के वंश का वर्णन, मान्धाता और सौभरि ऋषि की कथा

राजा अम्बरीष के विरुप, केतुमान और शम्भु नामक तीन पुत्र थे। विरुप के पुत्र का नाम पृषदश्व और पृषदश्व के पुत्र का नाम रथीतर था। रथीतर पुत्रहीन रहा। उसने अंगिरा ऋषि से प्रार्थना की। अंगिरा ऋषि ने उसकी पत्नी से कई पुत्र पैदा किए। उनका गोत्र रथीतर होना चाहिए था, परन्तु वे अंगिरस कहलाए। क्षत्रिय और ब्राह्मण दोनों गोत्रों से उनका सम्बन्ध था। श्री शुकदेव जी ने बताया कि मनु जी के छींकने पर उनकी नासिका से इक्ष्वाकु नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ। इक्ष्वाकु के सौ पुत्र थे। सबसे बड़े तीन पुत्रों के नाम विकुक्षि, निमि और दण्डक थे।

इक्ष्वाकु ने विकुक्षि को श्राद्ध के लिए मांस लाने को भेजा। उसने मांस एकत्र किया परन्तु उसे एक खरगोश खा गया। बाकी बचा वह घर ले आया। गुरुजी ने कहा— यह मांस दूषित है। क्रोध में भरकर पुत्र को देश निकाला दे दिया।

पिता के देहान्त के पश्चात् विकुक्षि को राजा बनाया गया। विकुक्षि के पुत्र का नाम पुरंजय था, परन्तु कोई उसे इन्द्रवाह और कोई ककुत्स्थ कहते थे। सत्युग की समाप्ति पर देवता और दानवों में युद्ध हुआ। देवता दानवों से हार गए। पुरंजय देवताओं की सहायता करने आया। पुरंजय ने तीखे बाण लेकर बैल के ककुद (डील) के

पास बैठकर युद्ध कर देवताओं को विजय दिला दी। उन्होंने नगर, धन और एश्वर्य सब इन्द्र को लौटा दिया। बैल इन्द्र को बनाया था। उसके ककुद के पास बैठने के कारण उसका नाम ककुत्स्थ पड़ गया और इन्द्र को वाहन बनाने के कारण इन्द्रवाह कहलाए। उनके पृथु नाम का पुत्र हुआ। पृथु के पुत्र का नाम विश्वरन्धि, विश्वरन्धि के पुत्र का नाम चन्द्र और चन्द्र के पुत्र का नाम युवानाश्व था। युवानाश्व के पुत्र का नाम शावस्तु, शावस्तु के पुत्र का नाम बृहदश्च और बृहदश्च के पुत्र का नाम कुवलयाश्व था। इन्होंने उत्तंक ऋषि को खुश करने हेतु अपने इक्कीस हज़ार पुत्रों को लेकर धुन्धु नामक दैत्य का वध किया था। इसी कारण इनका नाम धुन्धुमार पड़ा। दैत्य के मुख की आग से इनके सब पुत्र मारे गए। केवल दृढाश्व, कपिलाश्व, मद्राश्व शेष रह गए थे। दृढ़ाश्व के पुत्र का नाम हर्यश्च और हर्यश्च के पुत्र का नाम निकुम्भ था।

निकुम्भ के पुत्र का नाम वर्हणाश्व था। वर्हणाश्व के कृशाश्व, कृशाश्व के सेनजित और सेनजित के युवनाश्व पुत्र हुआ। युवनाश्व के पुत्र का नाम मान्धाता था जो चक्रवर्ती राजा बने। मान्धाता की पत्नी ने एक पुत्री को भी जन्म दिया जिसका नाम बिन्दुमती था। उनके पुरुकुत्स, अम्बरीष द्वितीय और योगी मुचुकुन्द पुत्र हुए।

इनके पचास बहनें थीं। इन सब बहनों ने सौभरि ऋषि से विवाह किया। सौभरि ऋषि इनके साथ

प्रसन्नतापूर्वक विहार में मग्न रहे, परन्तु उनको सन्तोष नहीं मिला। सौभरि ऋषि ने बैठे-बैठे देखा कि मत्स्यराज के क्षण भर के संग से मैं किस प्रकार अपनी तपस्या को गवाँ बैठा। मैंने दीर्घकाल से ब्रह्मदेव को अक्षुण्ण बनाए रखा था परन्तु जल के भीतर विहार करती हुई एक मछली के संसर्ग से मेरा ब्रह्मतेज नष्ट हो गया। अन्त में तपस्या के लिए वन में चले गए। वहाँ आहवनीय अग्नि के साथ परमात्मा में विलीन हो गए।



६. राजा त्रिशंकु और हरिशचन्द्र की कथा

श्री शुकदेव जी ने बताया कि मान्धाता के पुत्र अम्बरीष थे। उनके दादा युवनाश्व ने अम्बरीष को पुत्र रूप में स्वीकार कर लिया था। अम्बरीष के यौवनाश्व और यौनवाश्व के हारीत पुत्र हुआ। नागों ने अपनी बहिन नर्मदा का विवाह पुरुकुत्स से किया। नर्मदा अपने पति को रसातल में नागराज वासुकि की आज्ञा से ले गई। राजा पुरुकत्स का पुत्र त्रसद्दसु था। उसके पुत्र हुआ अनरण्य। अनरण्य के हर्यश्व, उसके अरुण और अरुण के त्रिबन्धन नामक पुत्र हुआ। त्रिबन्धन के सत्यव्रत नामक पुत्र हुआ। यही सत्यव्रत त्रिशंकु के नाम से विख्यात हुआ। यद्यपि त्रिशंकु अपने पिता और गुरु के श्राप से चाण्डाल हो गए थे परन्तु विश्वामित्र जी के आशीर्वाद से वे शरीर सहित स्वर्ग में चले गए। परन्तु देवताओं ने उन्हें वहाँ से ढकेल दिया और वे सिर को नीचे

किए हुए गिर पड़े परन्तु विश्वामित्र मुनि ने अपने तपोबल से उन्हें आकाश में ही स्थिर कर दिया। वे अब भी आकाश में ही लटके हुए दिखाई देते हैं।

त्रिशंकु के पुत्र का नाम हरिश्चन्द्र था। वे पुत्र की प्राप्ति के लिए वरुण देवता की शरण में गए। वरुण की कृपा से हरिश्चन्द्र के रोहित नाम का पुत्र हुआ। हरिश्चन्द्र ने वरुण देवता से प्रतिज्ञा की थी कि मेरे जो पुत्र होगा उस से आपका यज्ञ करूँगा। पुत्र प्राप्ति के पश्चात् वरुण ने हरिश्चन्द्र से कहा कि इसके द्वारा मेरा यज्ञ करो। हरिश्चन्द्र यह कहकर वरुण देव को टालते रहे कि जब आपका यह यज्ञपशु रोहित दस दिन से अधिक का हो जाएगा तब यज्ञ के योग्य होगा, फिर कहा— मुँह में दाँत निकल आने दो, फिर कहा— दुबारा दाँत आने दो, नए दाँत फिर से आने पर कहा— कवच धारण करने पर यज्ञ करूँगा। इस प्रकार राजा हरिश्चन्द्र पुत्र के प्रेम से हीला-हवाला करके समय को टालते रहे। इसका कारण यह था कि पुत्र प्रेम ने उनके हृदय को जकड़ लिया था।

जब रोहित को पता चला कि पिताश्री मेरा बलिदान करना चाहते हैं तो वह अपने प्राणो की रक्षा के लिए हाथ में धनुष लेकर वन में चले गए। कुछ दिन के बाद उन्हें पता चला कि वरुण देव ने रुष्ट होकर मेरे पिताश्री पर आक्रमण कर दिया है तो रोहित नगर की ओर चल दिए, परन्तु नारद जी उसे छः वर्ष तक रोकते रहे। सातवें वर्ष में उसने अजीगर्त से उनके मंझले पुत्र शुनः-शेप को मोल ले लिया और उसे यज्ञ पशु बनाने के लिए अपने पिता को सौंप कर

उनके चरणों में नमस्कार किया। तब राजा हरिश्चन्द्र ने पुरुष मेघ यज्ञ किया। उस यज्ञ में विश्वामित्र जी होता हुए। जमदग्नि ऋषि ने अध्वर्यु का काम किया। वशिष्ठ जी ब्रह्मा बने और अभास्य मुनि सामगान करने वाले उदगाता बने। उस समय इन्द्र ने प्रसन्न होकर उनको सोने का रथ प्रदान किया।



७. सगर चरित्र

रोहित के पुत्र का नाम हरित था। हरित के चम्प नामक पुत्र हुआ। चम्प के सुदेव और सुदेव के विजय नामक पुत्र हुआ। विजय का भरुक, भरुक का वृक, वृक का बाहुक पुत्र हुआ। शत्रुओं ने बाहुक से राज्य छीन लिया। इस पर वह अपनी पत्नी के साथ वन में चला गया। समय आने पर की वन में ही मृत्यु हो गयी। उसकी पत्नी बाहुक के साथ सती होना चाहती थी परन्तु महर्षि और्व ने उसको सती होने से रोक लिया क्योंकि वह गर्भवती थी। जब उसकी सौतों को यह बात मालूम हुई तो उन्होंने उसे भोजन के साथ विष दे दिया। परन्तु गर्भ पर उस विष का कोई प्रभाव नहीं हुआ बल्कि उस विष को लिए हुए ही एक पुत्र का जन्म हुआ। यही बालक सगर के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

सगर ने अपने गुरुदेव और्व की आज्ञा से अश्वमेघ यज्ञ किया। यज्ञ के घोड़े को इन्द्र ने चुरा लिया। महारानी

सुमति के गर्भ से उत्पन्न सगर के पुत्रों ने घोड़े के लिए सारी पृथ्वी छान डाली, परन्तु उन्हें कहीं घोड़ा नहीं मिला। अन्त में उन्हें उत्तर दिशा के कोने पर कपिल मुनि के आश्रम पर घोड़ा दिखाई दिया। घोड़े को देखकर वे साठ हज़ार राजकुमार शस्त्र उठाकर कपिल मुनि को मारने के लिए तैयार हो गए। कपिल मुनि ने उन्हें रोककर अपने क्रोध से भस्म कर दिया।

सगर की दूसरी पत्नी का नाम केशिनी था। उससे असमंजस नामक पुत्र हुआ। असमंजस के पुत्र का नाम अंशुमान था। अंशुमान घोड़े को खोजने निकला। उसने घोड़े को कपिल मुनि के आश्रम पर देखा और अपने चाचाओं की भस्म देखी। अंशुमान ने भगवान से प्रार्थना की। भगवान कपिल मुनि ने बताया— यह घोड़ा तुम्हारे पितामह का यज्ञ पशु है। इसे तुम ले जा सकते हो। तुम्हारे चाचाओं का गंगाजल से उद्धार होगा। राजा सगर ने यज्ञ पशु घोड़े के द्वारा अपना यज्ञ पूरा किया। सगर ने इसके पश्चात् राज्य को अपने पुत्र को सौंप दिया और महर्षि और्व के बताए हुए मार्ग पर चलकर परम पद की गति प्राप्त की।



८. भागीरथ चरित्र और गंगावतरण

अंशुमान ने गंगा जी को लाने के लिए वर्षों तक घोर तपस्या की, परन्तु उन्हें सफलता प्राप्त नहीं हुई।

अंशुमान के पुत्र दिलीप ने भी वैसी ही तपस्या की, परन्तु उन्हें भी सफलता नहीं मिली। समय आने पर उनकी भी मृत्यु हो गई। दिलीप के पुत्र भागीरथ ने भी बड़ी तपस्या की। उनकी तपस्या से प्रसन्न होकर भगवती गंगा ने उन्हें दर्शन दिए और कहा कि मैं तुम्हें वर प्रदान करने के लिए आई हूँ। उनके ऐसा कहने पर राजा भागीरथ ने बड़ी नम्रता से अपना अभिप्राय प्रकट किया कि आप मृत्युलोक में चलिए।

गंगा जी ने कहा— जिस समय मैं स्वर्ग से पृथ्वी तल पर गिरूँगी, उस समय मेरे वेग को कोई धारण करने वाला होना चाहिए। ऐसा न होने पर मैं पृथ्वी को फोड़कर रसातल में चली जाऊँगी। भागीरथ ने कहा— समस्त प्राणियों के आत्मा रुद्रदेव (शिवजी) तुम्हारा वेग धारण कर सकते हैं क्योंकि यह सारा विश्व भगवान रुद्र में ही ओत-प्रोत है।

भागीरथ ने तपस्या के द्वारा भगवान शंकर को प्रसन्न कर लिया। फिर शिवजी ने सावधान होकर गंगा जी को अपनी जटाओं में धारण कर लिया। इसके पश्चात् भागीरथ गंगा जी को वहाँ ले गए, जहाँ उनके पितरों के शरीर राख का ढेर बने पड़े थे। इस प्रकार गंगा को सागर-संगम पर पहुँचा कर उन पितरों को उद्धार करने में सफल रहे। वह स्थान गंगा सागर तीर्थ के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

भागीरथ के पुत्र का नाम श्रुत और श्रुत के पुत्र का नाम नाभ था। नाभ के पुत्र का नाम सिंधु द्वीप और

सिंधुद्वीप के पुत्र का नाम अयुतायु था। अयुतायु का पुत्र ऋतुपर्ण था जो नल का मित्र था। उसने नल को पासा फेंकने की विद्या का रहस्य समझाया था और बदले में उससे अश्वविद्या सीखी थी। ऋतुपर्ण का पुत्र सर्वकाम था। सर्वकाम के पुत्र का नमा सुदास और सुदास के पुत्र का नाम सौदास था। सौदास की पत्नी का नाम मदयन्ती था। सौदास वशिष्ठ के शाप से राक्षस बन गया था और अपने कर्मों के कारण सन्तानहीन रह गया।

एक बार सौदास शिकार के लिए गए हुए थे। वहाँ उन्होंने एक राक्षस को मार डाला और उसके भाई को छोड़ दिया। उसने राजा के इस काम को अन्याय समझा और उनसे अपने भाई का बदला लेने के लिए वह रसोइया बनकर उनके घर गया और रसोइये का काम करने लगा।

एक दिन जब गुरु वशिष्ठ उनके यहाँ भोजन करने आए तो उसने ऋषि को मनुष्य का मांस परोस दिया। वशिष्ठ जी ने जब देखा कि परोसी गई वस्तु अभक्ष्य है तो उन्होंने क्रोध में भरकर राजा को श्राप दे दिया कि तू राक्षस बन जा। इस समय सौदास भी अपनी अंजलि में जल लेकर गुरु को शाप देने को उद्यत हुए तो उनकी पत्नी मदयन्ती ने उनको ऐसा करने से रोका। राजा ने अपनी अंजलि के जल को अपने पैरों पर डाला। इससे सौदास का नाम मित्रसह पड़ गया। जल के गिरने से उनके पैर काले पड़ गए थे इसलिए उनका नाम कल्माषपाद भी हुआ। अब वे राक्षस हो चुके थे। एक

दिन राक्षस बने हुए राजा कल्माषपाद ने एक वनवासी ब्राह्मण दम्पति को सहवास के समय देख लिया। राक्षस ने उस ब्राह्मण को मार डाला। इस पर ब्राह्मणों ने शाप दिया कि तेरा कल्याण तब होगा जब तू स्त्री से सहवास करेगा।

बारह वर्ष व्यतीत होने पर राजा सौदास शाप से मुक्त हो गया। उसने अपनी पत्नी से सहवास किया। उसकी पत्नी सात वर्ष तक गर्भ धारण किए रही परन्तु बच्चा पैदा नहीं हुआ। तब वशिष्ठ जी ने पत्थर से उसके पेट पर आघात किया। पत्थर की चोट से पैदा होने के कारण वह अश्मक कहलाया। अश्मक के पुत्र का नाम मूलक था। जब परशुराम जी पृथ्वी को क्षत्रिय हीन कर रहे थे तो स्त्रियों ने उसे छिपा लिया था। इसी से उसका नाम कवच पड़ गया। उसे मूलक इसलिए कहते हैं कि वह पृथ्वी के क्षत्रियहीन हो जाने पर उस वंश का मूल (प्रवर्त्तक) बना। मूलक का पुत्र दशरथ. दशरथ का पुत्र ऐडविड और ऐडविड का पुत्र विश्वसह हुए। विश्वसह के पुत्र ही चक्रवर्ती सम्राट खटवांग हुए। युद्ध में उन्हें कोई जीत नही सकता था। उन्होंने देवताओं की प्रार्थना पर दैत्यों का वध किया। जब उन्हें देवताओं से पता चला कि अब मेरी आयु केवल दो ही घड़ी शेष है तो वे अपनी राजधानी लौट आए और अपने मन को भगवान में लगा दिया। भगवान की प्रेरणा से आत्मास्वरूप में स्थित हो गए। वह स्वरूप साक्षात् परब्रह्म था। वह सूक्ष्म से भी सूक्ष्म, शून्य के समान है। परन्तु

वह शून्य नहीं, परम सत्य है। भक्तजन उसी वस्तु को भगवान वासुदेव इस नाम से वरण करते हैं।



ए. भगवान श्री राम की लीलाओं का वर्णन

श्री शुकदेव जी कहते हैं— खटवांग के पुत्र दीर्घबाहु, दीर्घबाहु के पुत्र रघु, रघु के पुत्र अज और अज के पुत्र दशरथ हुए। देवताओं की प्रार्थना पर साक्षात् परब्रह्म श्रीहरि अपने अंशांश से चार रूप धारण करके राजा दशरथ के पुत्र हुए। उनके नाम थे— राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न। जब ये युवा हो गए तब विश्वामित्र जी अपने यज्ञ की रक्षा के लिए श्रीराम और लक्ष्मण को लाए। उन्होंने वहाँ पर अनेक राक्षसों का वध किया।

विश्वामित्र जी उनको साथ लेकर राजा जनक जी के सीता स्वयंवर में उपस्थित हुए। धनुष को तोड़कर सीता जी के साथ श्रीरामचन्द्र जी का विवाह हुआ। श्रीरामचन्द्र जी पिता की आज्ञा पाकर सीता जी और लक्ष्मण के साथ चौदह वर्ष के लिए वनों में चले गए। रास्ते में उन्होंने अनेक राक्षसों का विध्वंस किया। राक्षस राज रावण की बहिन शूर्पणखा के नाक, कान काट कर भेजा। रावण ने खर, दूषण, त्रिशिरा आदि बड़े-बड़े राक्षसों को अपनी बहिन के अपमान का बदला लेने भेजा। भगवान राम ने सब का वध कर दिया।

रावण ने मारीच को अद्भुत हरिण के वेष में उनकी पर्ण कुटि के पास भेजा। वह धीरे-धीरे भगवान श्रीराम को वहाँ से दूर ले गया। अन्त में भगवान श्रीराम ने अपने बाण से उसे बात की बात में वैसे ही मार डाला जैसे दक्ष प्रजापति को वीरभद्र ने मारा था। जब श्री राम जंगल में दूर निकल गए तब लक्ष्मण की अनुपस्थिति में नीच राक्षस रावण ने भेड़िए के समान सुकुमारी सीताजी को हर लिया। रास्ते में रावण का जटायु से युद्ध हुआ। रावण ने जटायु के पंख काटकर वध कर दिया। भगवान राम से उसकी भेंट हुई। फिर उन्होंने जटायु का अन्तिम संस्कार किया। जटायु ने ही श्रीराम को बताया कि रावण माताश्री सीताजी को ले गया है। फिर भगवान ने कबन्ध का संहार किया और इसके अनन्तर सुग्रीव आदि वानरों से मित्रता करके बालि का वध किया। तद्नन्तर वानरों के द्वारा अपनी प्राणप्रिया का पता लगवाया। ब्रह्मा और शंकर जिनके चरणों की वन्दना करते हैं, वे भगवान श्रीराम मनुष्य की सी लीला करते हुए बन्दरों की सेना के साथ समुद्र तट पर पहुँचे। श्री हनुमानजी सीताजी का पता लगाने हेतु गए तो वहाँ उन्होंने लंका को जला डाला। वानरों की सेना सहित समुद्र पर पुल बाँधकर लंका पर चढ़ाई की।

रावण को यह पता चलने पर कि राम समुद्र को पार कर लंका में आ गए हैं तो रावण ने सेना लेकर उन पर चढ़ाई की। रावण के पुत्र और भाई इस युद्ध में मारे गए। अन्त में भगवान श्रीराम ने रावण को भी मार डाला।

रावण के भाई विभीषण को लंका का राज्य सौंप कर सीता सहित अयोध्या लौट आए। अयोध्या वासियों ने बड़ी धूमधाम के साथ उनका स्वागत किया। विश्वामित्र, वशिष्ठ आदि ऋषियों ने उनका राजतिलक किया। भगवान ने प्रजा का स्वागत करके उनको धन, वस्त्र, और सोना तथा गाएँ आदि भेंट में दीं।

भगवान श्रीराम महात्माओं को पीड़ा नहीं पहुँचाते थे। एवं ब्राह्मणों को अपना इष्टदेव मानते थे। प्रजा की स्थिति जानने के लिए रात को घूमा करते थे। एक दिन एक धोबी अपनी पत्नी को पीट रहा था और कह रहा था— अरी दुष्टा और कुलटा! तू पराये घर में रह आई है। स्त्री लोभी राम भले ही सीता को रख लें, परन्तु मैं तुझे नहीं रख सकता। जब भगवान श्रीराम ने बहुतों के मुँह से ऐसी बातें सुनीं तो वे लोकयवाद से कुछ भयभीत हो गए। उन्होंने सीताजी का परित्याग कर दिया। वे बाल्मीकि मुनि के आश्रम में रहने लगीं। सीता जी उस समय गर्भवती थीं। समय आने पर लव और कुश नामक दो पुत्रों को उन्होंने जन्म दिया। बाल्मीकि मुनि ने उनके जातकर्मादि संस्कार किए। लक्ष्मण जी के भी अंगद और चित्रकेतू नाम के दो पुत्र हुए। भरत जी के भी तक्ष और पुष्कल दो पुत्र हुए। शत्रुघ्न के भी सुबाहु और श्रुतसेन दो पुत्र हुए।

भगवान श्री रामचन्द्र जी ने अश्वमेघ यज्ञ किया। यज्ञ का बलि घोड़ा छोड़ा गया। लव-कुश ने उस घोड़े को पकड़ लिया। लक्ष्मण जी ने घोड़े को छुड़ाने का

प्रयत्न किया किन्तु घोड़े को छुड़ाने में असफल रहे। भगवान श्रीराम स्वयं घोड़े को छुड़ाने आए। सीताजी ने लव-कुश से कहा— ये तो तुम्हारे पिताश्री हैं। इस पर भगवान श्रीराम ने उन्हें अपने हृदय से लगा लिया। सीताजी धरती माता की गोद में समा गईं। भगवान श्री रामचन्द्रजी अपने पुत्रों को राज्य सौंपकर ज्योतिर्मय धाम को चले गए।



१०. इच्छवाकु वंश के शेष राजाओं का वर्णन

श्री शुकदेव जी कहते हैं कि कुश का पुत्र अतिथि, अतिथि का पुत्र निषध, निषध का पुत्र नभ, नभ का पुत्र पुण्डरीक, पुण्डरीक का पुत्र क्षेमधन्वा, क्षेमधन्वा का पुत्र देवानीक, देवानीक का पुत्र अनीह, अनीह का पुत्र पारियात्र, पारियात्र का पुत्र बलस्थल, बलस्थल का पुत्र ब्रजनाभ हुआ। ब्रजनाभ का पुत्र खगण, खगण का पुत्र विधृति, विधृति का पुत्र हिरणनाभ हुआ। हिरणनाभ का पुत्र पुष्य, पुष्य का पुत्र ध्रुवसन्धि, ध्रुवसन्धि का पुत्र सुदर्शन, सुदर्शन का पुत्र अग्निवर्ण, अग्निवर्ण का पुत्र शीघ्र और शीघ्र का पुत्र मरु हुआ। मरु का प्रसुश्रुत और प्रसुश्रुत का पुत्र संधि तथा संधि का अमर्षण हुआ। अमर्षण का पुत्र महस्वान, महस्वान का विश्वसाह्न हुआ। उनका पुत्र प्रसेनजित, प्रसेनजित का तक्षक और तक्षक

का पुत्र वृहद्वल हुआ जिसको अभिमन्यु ने युद्ध में मार डाला था। इस वंश का अंतिम शासक सुमित्र होगा। सुमित्र के राजा होने पर कलियुग में इनका वंश समाप्त हो जाएगा।



११. राजा निमि के वंश का वर्णन

इक्ष्वाकु के पुत्र का नाम निमि था। निमि ने वशिष्ठ से यज्ञ कराने को कहा, परन्तु मुनि इन्द्र का यज्ञ पूरा कराने चले गए। निमि ने उनकी प्रतिक्षा न करके यज्ञ पूरा करा लिया। वापिस आने पर वशिष्ठजी ने निमि को श्राप दे दिया कि आपका शरीर समाप्त हो जाए। इस पर निमि ने अपना शरीर त्याग दिया। वशिष्ठजी ने भी अपना शरीर त्याग कर मित्रवरुण के वीर्य से उर्वशी के गर्भ से पुनः शरीर प्राप्त किया। श्रेष्ठ मुनियों ने राजा निमि के मृत शरीर को सुगन्धित वस्तुओं में रख दिया। देवताओं की इच्छा थी कि निमि के शरीर से फिर से प्राण आ जाए परन्तु निमि ने कहा— मुझे शरीर का बन्धन नहीं चाहिए। मैं वहाँ रहकर सूक्ष्म शरीर से भगवान का चिन्तन करता रहूँगा।

महर्षियों ने कहा— राजा के न रहने से राज्य में अशान्ति और अराजकता फैल जाएगी। इसलिए उन्होंने उनके शरीर का मन्थन किया, जिससे एक पुत्र हुआ जो जनक के नाम से प्रसिद्ध हुआ। मन्थन से उत्पन्न होने

के कारण बालक का नाम मिथिल रखा गया। उसने मिथिला पुरी बसाई। जनक का पुत्र उदावसु और उसका पुत्र नन्दिनवर्द्धन हुआ। नन्दिनवर्द्धन का पुत्र सुकेतु हुआ और उसका पुत्र देवराज हुआ। देवराज का पुत्र का नाम बृहद्रथ था और उसके महावीर्य पुत्र हुआ। महावीर्य के सुधृति पुत्र हुआ और उसके पुत्र का नाम धृष्टकेतु था। धृष्टकेतु का पुत्र हर्यश्व हुआ और उसके पुत्र का नाम मरु था। मरु के प्रतीपक, प्रतीपक के कृतिरथ, कृतिरथ के देवमीठ, देवमीठ के विश्रुत और विश्रुत के पुत्र का नाम महाधृति था। महाधृति के कृतिरात और कृतिरात के पुत्र का नाम महारोमा था। महारोमा का स्वर्णरोमा, स्वर्णरोमा के ह्रस्वरोमा, ह्रस्वरोमा का पुत्र महाराज सीरध्वज हुआ। यह जनक के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

वह यज्ञ के लिए ज़मीन को जोत रहे थे तो उनके हल (सीर) के अग्रभाग फाल से सीता माता की उत्पत्ति हुई। सीरध्वज का कुशध्वज, कुशध्वज का धर्मध्वज और धर्मध्वज के दो पुत्र कृतध्वज और मितध्वज हुए। कृतध्वज के केशिध्वज और मितध्वज के खाण्डिक्य हुए। केशिवध्वज का भानुमान, भानुमान का शतद्युम्न, शतद्युम्न का शुचि, शुचि का सनद्वाज और सनद्वाज का ऊर्ध्वकेतु, ऊर्ध्वकेतु का अज, अज का पुरुजित, पुरुजित का अरिष्टनेमि, अरिष्टनेमि का श्रतायु, श्रतायु का सुपाश्वर्क, सुपाश्वर्क का चित्ररथ, चित्ररथ का मिथिलापति, क्षेमधि का जन्म हुआ। क्षेमधि का समरथ, समरथ का सत्यरथ, सत्यरथ का उपगुरु और उपगुरु

का उपगुप्त, उपगुप्त का वस्वनन्त, वस्वनन्त का युयुध, युयुध का सुभाषण, सुभाषण का श्रुत, श्रुत का जय, जय का विजय और विजय का ऋतु हुआ। ऋतु का शुनक, शुनक का वीतहव्य, इनका धृति, धृति का बहुलाश्व, बहुलाश्व का कृति, कृति का महावशी हुआ। मिथिल वंश के राजा मैथिल कहलाए।



१२. चन्द्रवंश का वर्णन

श्री शुकदेव जी ने बताया कि ब्रह्माजी के पुत्र थे अत्रि। अत्रि ने नेत्रों से चन्द्रमा का जन्म हुआ। चन्द्रमा ने तीनों लोकों को विजय कर लिया और सजसूय यज्ञ किया। चन्द्रमा ने बलपूर्वक बृहस्पतिजी की पत्नी तारा का अपहरण कर लिया। देवगुरु बृहस्पतिजी ने तारा को लौटाने के लिए बार-बार प्रार्थना की, परन्तु उन्होंने उसे नहीं लौटाया। ऐसी स्थिति में तारा के लिए देवता और दानवों में युद्ध प्रारम्भ हो गया।

महादेव जी ने बृहस्पतिजी का पक्ष लिया। ब्रह्माजी के समझाने पर दैत्यों ने तारा को लौटा दिया। उस समय तारा गर्भवती थी। उसने सोने के समान चमकता हुआ एक बालक को जन्म दिया। उस बालक को देखकर बृहस्पतिजी तथा चन्द्रमा दोनों की इच्छा होने लगी कि यह हमें मिल जाए। तारा ने ब्रह्माजी को एकान्त में बुलाकर कहा कि यह बालक चन्द्रमा का है। इसलिए

उस बालक को चन्द्रमा ने ले लिया। बालक का नाम बुध रखा गया।

बुध के द्वारा इला के गर्भ से पुरुरवा का जन्म हुआ। इसका वर्णन पीछे हो चुका है। एक दिन इन्द्र की सभा में देवर्षि नारद पुरुरवा के रूप गुण, उदारता, शील, स्वभाव, धन, सम्पत्ति और पराक्रम का गुणगान कर रहे थे, जिसे सुनकर उर्वसी के हृदय मे कामवासना जाग्रत हो गई तथा वह पुरुरवा के पास चली गई। वह उससे बोली— मैं आपके साथ विहार करूँगी, परन्तु मेरी एक शर्त है। मैं आपको धरोहर के रूप में भेड़ के दो बच्चे सौंप रही हूँ। आप इनकी रक्षा करना। मैं केवल घी का सेवन करूँगी और मैथून के अतिरिक्त और कभी भी आपको वस्त्रहीन नहीं देखूँगी। पुरुरवा ने उसकी शर्त स्वीकार कर ली। जब इन्द्र ने उर्वशी को नहीं देखा तब उन्होंने गन्धर्वों को उसे लाने के लिए भेजा। गन्धर्व आधी रात के समय गए और भेड़ के दोनों बच्चों को उठा लाये। उर्वनी ने जब गन्धर्वों को भेड़ों के बच्चों को ले जाते हुए देखा तो वह बोली— इस कायर को अपना पति बनाकर मैं तो मारी गई। इस पर रजा पुरुरवा हाथ में तलवार लेकर वस्त्रहीन अवस्था में ही गन्धर्वों के पीछे दौड़े। उर्वशी ने पुरुरवा को वस्त्रहीन अवस्था में देखा तो वह शर्त के अनुसार पुरुरवा को छोड़ कर चली गई।

एक दिन कुरुक्षेत्र में सरस्वती नदी के तट पर पुरुरवा ने उर्वशी को उसकी पाँच सखियों के साथ देखा। उसने मीठी वाणी में उर्वशी से कहा— तनिक ठहर जाओ।

मेरी एक बात मान लो। तब उर्वशी ने पुरुरवा से कहा— स्त्रियों की किसी से मित्रता नहीं होती। घबराओ नहीं, मैं प्रतिवर्ष एक रात्रि को तुम्हारे साथ रहूँगी। तब तुम्हारे और भी सन्तानें होंगी। तुम इन गन्धर्वों की स्तुति करो। ये चाहे तो तुम्हें मुझे सौंप सकते हैं। तब राजा पुरुरवा ने गन्धर्वों की स्तुति की। उनकी स्तुति से प्रसन्न होकर गन्धर्वों ने उन्हें एक अग्निस्थाली (अग्नि स्थापित करने वाला पात्र) प्रदान की। राजा ने समझा यही उर्वशी है। इसलिए उसे हृदय से लगाकर वह वहीं पर वनों में घूमने लगे। जब उन्हें होश हुआ तब वे उसे वहीं वनों में छोड़कर अपनी राजधानी लौट गए तथा रात में उर्वशी का ध्यान करते रहे। इस प्रकार जब त्रेतायुग प्रारम्भ हुआ तब उनके हृदय से तीन वेद प्रकट हुए।

फिर वे उस स्थान पर गए जहाँ उन्होंने अग्निस्थाली को छोड़ा था। अब उस जगह पर शमीवृक्ष के गर्भ में एक पीपल का वृक्ष उग आया था। उन्होंने उससे दो अरणियाँ (मंथन काष्ठ) बनाईं। फिर उन्होंने उर्वशीलोक की कामना से नीचे की अरणी को उर्वशी, ऊपर की अरणी को पुरुरवा और बीच के काष्ठ को पुत्ररूप से चिन्तन करते हुए अग्नि प्रज्ज्वलित करने वाले मंत्रों से मन्थन किया। उनके मंथन से जातवेदा अग्नि प्रकट हुई। त्रेता के प्रारम्भ में पुरुरवा से ही वेदत्रयी और अग्नित्रयी का आविर्भाव हुआ। राजा पुरुरवा ने अग्नि को सन्तान के रूप में स्वीकार कर गन्धर्व लोक की प्राप्ति की।

१३. ऋचीक, जमदग्नि और परशुराम का चरित्र

शुकदेव जी कहते हैं कि उर्वशी के गर्भ से पुरुरवा के छः पुत्र हुए— आयु, श्रुतायु, रथ, सत्यायु, विजय और जय। श्रुतायु का वासुमान, सत्यायु का पुत्र श्रुंतंजय और जय का पुत्र अमित हुआ। विजय का भीम, भीम का कांचन, कांचन का होत्र और होत्र का पुत्र जहनु हुआ। ये जह्नु गंगाजी को अपनी अंजलि में लेकर पी गए थे।

जह्नु का पुरु, पुरु का बलाक और बलाक का अंजक था। अंजक का पुत्र कुश था और कुश के पुत्र कुशाम्बु, तनय, वसु और कुशनाभ थे। कुशाम्बु के पुत्र गाधि थे। गाधि की कन्या का नाम सत्यवती था। ऋचीक ऋषि ने गाधि से सत्यवती को माँगा। गाधि ने कहा— आप एक हज़ार ऐसे घोड़े लाकर मुझे शुल्करूप में दीजिए जिनका समस्त शरीर तो श्वेत हो परन्तु एक एक कान श्याम वर्ण का हो। ऋचिक ऋषि वरुण के पास जाकर वैसे ही घोड़े ले आए तथा उन्हें सौंपकर सत्यवती से विवाह कर लिया।

एक बार महर्षि ऋचिक से उनकी पत्नी और सास दोनों ने ही पुत्र प्राप्ति हेतु प्रार्थना की। महर्षि ने उनकी प्रार्थना स्वीकार करके दोनों के लिए अलग-अलग मंत्रों से चरु पकाया और स्नान करने के लिए चले गए। माँ और सत्यवती ने चरु बदल लिए। जब ऋचिक मुनि

को इस बात का पता चला तब उन्होंने अपनी पत्नी सत्यवती से कहा कि तुमने बड़ा अनर्थ कर डाला। अब तुम्हारा पुत्र तो लोगों को दण्ड देने वाला घोर प्रकृति का होगा और तुम्हारा भाई एक श्रेष्ठ ब्रह्मवेता होगा। सत्यवती ने ऋचिक मुनि को मनाया और प्रार्थना की— स्वामी! ऐसा नहीं होना चाहिए। तब उन्होंने कहा— अच्छी बात है। पुत्र के बदले पौत्र वैसा ही होगा।

सत्यवती के गर्भ से जमदग्नि का जन्म हुआ। सत्यवती समस्त लोकों को पवित्र करने वाली कौशिकी नदी बन गई। जमदग्नि का विवाह रेणु ऋषि की कन्या रेणुका से हुआ। रेणुका के गर्भ से कई पुत्र हुए। उनमें से छोटे पुत्र का नाम परशुराम था। उनका यश समस्त संसार में प्रसिद्ध है। कहते हैं कि हैहयवंश का अन्त करने के लिए स्वयं भगवान ने ही परशुराम के रूप में अंशावतार ग्रहण किया था। उन्होंने इस पृथ्वी को इक्कीस बार क्षत्रियहीन कर दिया था।

हैहयवंश का राजा अर्जुन क्षत्रिय था। उसने अनेकों प्रकार से सेवा शुश्रुषा करके भगवान नारायण के अंशावतार दत्तात्रेय जी को प्रसन्न कर लिया और उनसे एक हज़ार भुजाएँ तथा कोई भी शत्रु उन्हें युद्ध में पराजित न कर सके यह वरदान प्राप्त कर लिया। उनका नाम सहस्त्रबाहु अर्जुन पड़ा। एक दिन सहस्त्रबाहु अर्जुन शिकार हेतु घोर जंगल में जा निकला। दैववश वह जमदग्नि मुनि के आश्रम पर जा पहुँचा। वहाँ एक कामधेनु गाय थी। वे उस कामधेनु को बलपूर्वक लेकर महिष्मती पुरी

को चल दिया। जब परशुराम जी को पता चला तो वे धनुषबाण और फरसा लेकर उसके पीछे दौड़े। अकेले ही उन्होंने सहस्त्रबाहु की सेना को मार डाला और उसकी एक हज़ार भुजाओं को मय धनुषबाण के काट कर सफाया कर दिया। फिर उन्होंने पहाड़ की चोटी की तरह उसका सिर भी धड़ से अलग कर दिया। परशुराम जी ने बछड़े सहित कामधेनु को लाकर पिताश्री को सौंप दी। पिताश्री ने कहा— बेटा तीर्थों का सेवन करके अपने कर्मों को धो डालो।



१४. विश्वामित्र जी के वंश की कथा

श्री शुकदेव जी ने बताया कि सहस्त्रबाहु अर्जुन के पुत्र अपने अपने पिता के वध की याद करके महर्षि जमदग्नि जी के आश्रम में गए। वे बलपूर्वक उनका सिर काटकर ले आए। पिता श्री की इस दर्दनाक मृत्यु को देखकर परशुराम जी बहुत दुःखी हुए और पृथ्वी को क्षत्रियों से रिक्त करने का निश्चय कर लिया। परशुराम जी ने क्षत्रियों के सिर काट-काटकर पृथ्वी पर ढेर लगा दिया। उन्होंने अपने पिता को निमित्त बनाकर पृथ्वी को इक्कीस बार क्षत्रियहीन कर दिया। परशुराम जी ने अपने पिता जमदग्नि का सिर लाकर उनके धड़ पर रखकर जीवित कर दिया। यज्ञान्त स्नान करके वे समस्त पापों से मुक्त हो गए। सर्वशक्तिमान

विश्वात्मा भगवान श्रीहरि ने भृगुवंशियों में अवतार धारण कर मारभूत राजाओं का अनेकों बार वध किया।

महाराज गाधि के पुत्र अग्नि के समान परम तेजस्वी विश्वामित्र उत्पन्न हुए। उन्होंने अपने तपोबल से क्षत्रियत्व का त्याग करके ब्रह्मतेज प्राप्त कर लिया। विश्वामित्र जी के सौ पुत्र हुए। उनमें बिचले पुत्र का नाम मधुच्छन्दा था। इसलिए उनके सभी पुत्र मधुच्छन्दा के ही नाम से विख्यात हुए। विश्वामित्र जी ने भृगुवंशी अजीगर्त के पुत्र अपने भाँजे शुनः शेष को (इनका एक नाम देवरात है) पुत्र रूप में स्वीकार कर लिया और अपने पुत्रों से कहा कि— तुम लोग इसे अपना बड़ा समझोगे। यह वही प्रसिद्ध भृगुवंशी शुनः शेप था जो हरिशचन्द्र के यज्ञ में यज्ञ पशु के रूप में मोल लेकर लाया गया था।



१५. ययाति चरित्र और ग्रह त्याग

श्री शुकदेव जी ने बताया कि नहुष के छः पुत्र थे। उनके नाम इस प्रकार थे— यति, ययाति, संयाति, आयति, वियति और कृति। जब इन्द्र की पत्नी शचि से सहवास करने की चेष्टा करने के कारण नहुष को ब्राह्मणों ने इन्द्र पद से च्युत कर दिया और अजगर बना दिया, तब राजा के पद पर ययाति बैठे।

ययाति ने अपने चार छोटे भाइयों को चार दिशाओं में नियुक्त कर दिया और स्वयं शुक्राचार्य की पुत्री

देवयानी और दैत्य राज वृषपर्वा की पुत्री शर्मिष्ठा को पत्नी के रूप में स्वीकार करके पृथ्वी की रक्षा करने लगा।

राजा परीक्षित ने श्री शुकदेव जी से पूछा— भगवन् शुक्राचार्य जी तो ब्राह्मण थे और ययाति क्षत्रिय थे। फिर ब्राह्मण कन्या और क्षत्रिय वर, यह विलोम विवाह कैसे हुआ ?

दानवराज वृषपर्वा की पुत्री शर्मिष्ठा और गुरु पुत्री देवयानी सरोवर में एक बार स्नान कर रहीं थीं। अचानक भगवान शिव उधर से गुज़र रहे थे। उनको देखकर सभी ने अपने कपड़े पहन लिए। शीघ्रता के कारण शर्मिष्ठा ने अनजाने में देवयानी के वस्त्र पहन लिए। इस पर देवयानी आग बबूला हो गई। शर्मिष्ठा ने भी कड़ी बातें कहकर देवयानी से अपने वस्त्र छीनकर उसे कुएँ में धकेल दिया।

राजा ययाति उधर से निकले तो उन्होंने देवयानी को कुएँ में नग्न अवस्था में देखा। उन्होंने अपना दुपट्टा कुएँ में लटका कर हाथ पकड़कर उसे बाहर निकाला। देवयानी ने कहा कि आपने मेरा हाथ पकड़ लिया है, इस कारण मैं आपको पति रूप में स्वीकार करती हूँ। देवयानी इस घटना के बाद अपने पिता शुक्राचार्य जी के पास गई और उन्हें सारी बातों से अवगत कराया। उन्होंने देवयानी का विवाह ययाति से कर दिया और शर्मिष्ठा को दासी रूप में देकर कहा— राजन्! शर्मिष्ठा को कभी अपने सेज पर मत आने देना।

कुछ ही दिनों बाद देवयानी गर्भवती हो गई। शर्मिष्ठा ने भी अपने ऋतुकाल में देवयानी के पति ययाति से एकान्त में सहवास की याचना की। देवयानी के यदु और तुर्वसु दो पुत्र हुए। शर्मिष्ठा के द्रह्यु, अनु और पुरु तीन पुत्र हुए। देवयानी को पता चला कि शर्मिष्ठा की सन्तानें भी उसी के पति की हैं तो वह अपने पिता शुक्राचार्य जी के पास गई।

शुक्राचार्य ने क्रोधित होकर ययाति को शाप दे दिया कि तेरा शरीर बुढ़ापे का बन जाए। ययाति को बुढ़ापे ने घेर लिया। इस पर ययाति ने अपने पुत्रों से विनती की— कोई एक पुत्र अपना यौवन मुझे दे दे। इस पर सबसे छोटे पुत्र पुरु ने अपना यौवन पिता को दे दिया।

राजा ययाति जवानी लेकर पूर्ववत् विषयों का सेवन करने लगे। उसने श्रीहरि का बहुत बड़ी दक्षिणा वाले यज्ञों से पूजन किया जिसके कारण उसे एकाएक वैराग्य उत्पन्न हो गया। उन्होंने अपने छोटे पुत्र पुरु से बुढ़ापा लेकर उसका यौवन वापिस कर दिया। राजा ने एक क्षण में सब कुछ त्याग कर परब्रह्म परमात्मा वासुदेव से मिलकर भगवत गति को प्राप्त कर लिया। जब देवयानी को पता चला तो उसने भी सब कुछ त्याग कर भगवान श्रीकृष्ण में अपने को लीन कर दिया। वह भी भगवान को प्राप्त हो गई।



१६. पुरु के वंश, राजा दुष्यन्त और भरत के चरित्रों का वर्णन

श्री शुकदेव जी ने राजा परीक्षित को बताया कि तुम्हारा जन्म भी पुरु वंश में ही हुआ है। पुरु के पुत्र का नाम जन्मेजय था। जन्मेजय के पुत्र का नाम प्राचिन्वान, उसके पुत्र का नाम बहुगव था। बहुगव से संयाति, संयाति से अहंयाति और अहंयाति से रौद्राश्व हुआ। धृताची अप्सरा के गर्भ से रौद्रश्व के दस पुत्र हुए जिनके नाम इस प्रकार हैं— श्रतेयु, कुक्षेयु, स्थण्डिलेयु, कृतेयु, जलेयु, सन्ततेयु, धर्मेयु, सत्येयु, व्रतेयु, और वनेयु। रन्तिभार के सुमति, ध्रुव, अप्रतिरथ हुए।

अप्रतिरथ के कण्व, कण्व के मेधातिथि, मेधातिथि के मस्कण्ठ नाम का पुत्र हुआ। सुमति का पुत्र रैभ्य हुआ। इसी रैभ्य के पुत्र नाम दुष्यन्त था। दुष्यन्त शिकार खेलता हुआ कण्व ऋषि के आश्रम में जा पहुँचा। वहाँ उसने एक कन्या को देखा जिसका नाम शकुन्तला था। दुष्यन्त शकुन्तला पर मोहित हो गया। शकुन्तला ने दुष्यन्त को बताया कि मैं विश्वामित्र की पुत्री हूँ। मेनका मुझे वन में छोड़कर चली गई। दुष्यन्त ने शकुन्तला से गान्धर्व विधि से विवाह कर लिया। वह उससे सहवास करके दूसरे दिन अपनी राजधानी लौट गया। समय आने पर शकुन्तला के गर्भ से भरत का जन्म हुआ।

यह बालक भरत भगवान का अंशावतार था। उसे अपने साथ लेकर शकुन्तला अपने पति दुष्यन्त के पास

गई परन्तु राजा दुष्यन्त ने उसे स्वीकार नहीं किया। उस समय आकाशवाणी हुई कि शकुन्तला का कहना बिल्कुल सही है। इस गर्भ को धारण कराने वाले तुम ही हो। इसलिए हे दुष्यन्त! तुम शकुन्तला का तिरस्कार न करो। अपने पुत्र का भरण-पोषण करो। राजन्! वंश की वृद्धि करने वाला पुत्र अपने पिता को नरक से उबार लेता है।

पिता दुष्यन्त की मृत्यु के पश्चात् भरत चक्रवर्ती सम्राट हुआ। उसका जन्म भगवान के अंश से हुआ था। आज भी उनकी महिमा का गुणगान किया जाता है। भरत के दाहिने हाथ में चक्र का चिन्ह था और पैरों में कमल कोष था। उन्होंने यज्ञों द्वारा माया पर विजय प्राप्त की और भगवान श्रीहरि को प्राप्त करने में सफल रहे। उन्होंने ब्राह्मणों के द्रोही राजाओं को मौत के घाट उतार दिया।

पहले असुरों ने देवताओं पर विजय प्राप्त करके बहुत सी देवागनाओं को पाताल में ले गए थे। राजा भरत ने उन्हें छुड़ाकर पाताल से वापस ले आए। विदर्भराज की तीन कन्याएँ सम्राट भरत की पत्नियाँ थीं। जब भरत ने अपनी पत्नियों से कहा— हमारे पुत्र मेरे अनुरूप नहीं हैं तो वे डर गईं कि कहीं सम्राट हमें त्याग न दे। इस पर उन्होंने अपने बच्चों की हत्या कर दी। इससे भरत का वंश विच्छिन्न होने लगा। तब भरत ने सन्तान के लिए मरुत्स्तोम नामक यज्ञ किया। इससे प्रसन्न होकर मरुदगणों ने भरत को भारद्वाज नामक पुत्र प्रदान किया।

भरद्वाज की उत्पत्ति का प्रसंग यह है कि एक बार बृहस्पतिजी ने अपने भाई उतथ्य की गर्भवती पत्नी से मैथुन करना चाहा। उस समय गर्भ में स्थित बालक (दीर्घतमा) ने उनसे मना किया, किन्तु बृहस्पति जी ने उसकी बात को अनसुनी करके बालक को शाप दे डाला— तू अंधा हो जा और बलपूर्वक गर्भाधान कर डाला। बालक के पैदा होने पर उसकी माता ममता ने बालक को त्याग दिया। इस कारण इस लड़के का नाम भारद्वाज हुआ। यही वितथ (भारद्वाज) भरत का दत्तक पुत्र बना और भारद्वाज गौत्र प्रचलित हुआ।



१७. रन्तिदेव की कथा

वितथ अथवा भारद्वाज का पुत्र था मन्यु। मन्यु के पाँच पुत्र हुए— बृहत्क्षत्र, जय, महावीर्य, नर और गर्ग। नर का पुत्र था संकृति। संकृति के दो पुत्र हुए— गुरु और रन्तिदेव। रन्तिदेव का निर्मल यश लोक और परलोक सब जगह गया जाता है। रन्तिदेव बिना उद्योग के वस्तुओं का उपभोग करते थे इससे उनकी पूँजी दिनों दिन घट रही थी। एक बार तो उन्हें लगातार अड़तालीस दिन तक पीने को पानी तक नहीं मिला। उंचासवें दिन कुछ भोजन और पानी मिला। रन्तिदेव और उनके परिवार ने भोजन करना चाहा तो उसी समय एक ब्राह्मण अतिथि बनकर आ गया। उन्होंने अतिथि को भोजन करा दिया

तथा शेष बचे अन्न को आपस में बाँट लिया और भोजन करना चाहा। उसी समय एक दूसरा अतिथि शुद्र आ पहुँचा। रन्तिदेव ने भगावान का स्मरण करते हुए उस बचे हुए अन्न में से कुछ भाग शूद्र को खिला दिया। जब शूद्र खाकर चला गया तो कुत्तों को लिए एक और अतिथि उपस्थित हो गया। बचा हुआ सारा अन्न इस अतिथि को दे दिया। पीने के लिए पानी भी नहीं बचा।

ये सब अतिथि वास्तव में भगवान की रची हुई माया के विभिन्न रूप थे। भगवान की परीक्षा पूरी को जाने पर अपने भक्तों की अभिलाषा पूर्ण करने वाले त्रिभुवन स्वामी, ब्रह्मा, विष्णु और महेश उसके सामने प्रकट हुए। रन्तिदेव ने उनके चरणों में नमस्कार किया और अपने मन को भगवान वासुदेव में तन्मय कर दिया। वह भगवान के परम भक्त बन गए।

मन्युपुत्र गर्ग से शिनि, शिनि से गार्ग्य क्षत्रिय थे, फिर भी उससे ब्राह्मण वंश चला। महावीर्य का पुत्र था दुरितक्षय। दुरितक्षय के पुत्र थे— त्रप्यारुणि, कवि और पुष्करारुणि। ये तीनों ब्राह्मण हो गए। बृहत्क्षत्र का पुत्र हुआ हस्ती। हस्ती ने हस्तिनापुर बसाया था। हस्ती के अजीमीढ़, द्विमीढ़ और पुरुमीढ़ पुत्र हुए। अजमीढ़ के पुत्रों में प्रियमेध ब्राह्मण हुए।

अजमीढ़ को एक बृहदिषु पुत्र था। बृहदिषु का पुत्र बृहद्धनु हुआ, बृहद्धनु का पुत्र बृहत्काय और बृहत्काय का पुत्र जयदर्थ हुआ। जयदर्थ का पुत्र विशद, विशद का पुत्र सेनजित हुआ। सेनजित के चार पुत्र रुचिराश्व,

दृढ़हतु, काश्य और वत्स हुए।

रुचिराश्व के पार और पार के पृथुसेन हुआ। पार के दूसरे पुत्र का नाम नीप था। नीप के सौ पुत्र हुए। नीप ने छाया शुक की कन्या कृत्वी से विवाह किया था। इस कन्या से ब्रह्मदत्त नाम का बहुत बड़ा योगी पुत्र हुआ। ब्रह्मदत्त ने अपनी पत्नी सरस्वती से विष्वकसेन पुत्र उत्पन्न किया। विष्वकसेन का पुत्र उद्कस्वन और उद्क्सवन के भल्लाद पुत्र हुआ।

द्विमीढ़ का यवीनर, यवीनर का कृतिमन, कृतिमन का सत्यधृति, सत्यधृति का दृढ़नेमी, दृढ़नेमी का सुपार्श्व पुत्र हुआ। सुपार्श्व का सुमति, सुमति का सन्नतिमान और सन्नतिमान का कृति, कृति का पुत्र नीप हुआ। नीप का उग्रायुध, उग्रायुध का क्षेम्य, क्षेम्य का सुवीर, सुवीर का रिपुजंय पुत्र हुआ।

अजमीढ़ की दूसरी पत्नी नलिनी से नील नामक पुत्र का जन्म हुआ। नील का शांति, शांति का सुशांति, सुशांति का पुरुज, पुरुज का अर्क, अर्क का भर्म्याश्व पुत्र हुआ। इसके मुग्दल, यवीनर, बृहदिषु, काम्पिल्य और संजय नामक पाँच पुत्रों ने जन्म लिया। मुग्दल से मौग्दल्य, ब्राह्मण गौत्र प्रचलित हुआ। मुग्दल के जुड़वाँ पुत्र और पुत्री हुए। पुत्र का नाम दिवोदास और पुत्री का नाम अहिल्या था। अहिल्या का विवाह महर्षि गौतम के साथ हुआ। गौतम के पुत्र का नाम शतानन्द, शतानन्द के पुत्र का नाम, सत्यधृति, सत्यधृति का पुत्र शरद्वान था। उर्वशी को देखने से शरद्वान का वीर्य मूँज के झाड़

पर गिर पड़ा। उससे एक पुत्र और एक पुत्री का जन्म हुआ। महाराजा शान्तनुजी ने शिकार खेलते हुए उनको देखा और उन्हें उठाकर घर ले आए। पुत्र का नाम कृपाचार्य और पुत्री का नाम कृपी रखा। यह कृपी ही आगे चलकर द्रोणाचार्य की पत्नी बनी।



१८. पाँचाल, कौरव, मगधदेशीय राजाओं का वर्णन

श्री शुकदेवजी परीक्षित से कहते हैं— दिवोदास का पुत्र था मित्रेयु। मित्रेयु के चार पुत्र हुए— च्यवन, सुदास, सहदेव और सोमक। सोमक के सौ पुत्र हुए, जिनमें सबसे बड़े पुत्र का नाम जन्तु और सबसे छोटे पुत्र का नाम पृषत था। पृषत के पुत्र द्रुपद थे, द्रुपद के द्रोपदी नाम की पुत्री और धृष्टद्युम्न पुत्र हुआ। धृष्टद्युम्न के पुत्र का नाम धृष्टकेतु था। भर्म्याश्व वंश में उत्पन्न हुए। ये नरपति पाँचाल कहलाए। अजीम गढ़ का दूसरा पुत्र था ऋक्ष। ऋक्ष का संवरण हुआ। संवरण का विवाह सूर्य की पुत्री तपती के साथ हुआ। उन्हीं के गर्भ से कुरुक्षेत्र के स्वामी कुरु का जन्म हुआ। कुरु के चार पुत्र हुए— परीक्षित, सुधन्वा, जह्नु और निषधाश्वा। सुधन्वा के सुहोत्र, सुहोत्र के च्यवन, च्यवन के कृति, कृति के उपरिचरवसु, इनके ब्रहदर्थ पुत्र हुआ। ब्रहद्रथ के कुशाग्र, कुशाग्र का ऋषभ, ऋषभ का सत्यहित,

सत्यहित का पुष्पवान, पुष्पवान का जहु हुआ। बृहद्रथ की दूसरी स्त्री के गर्भ से एक शरीर के दो टुकड़े उत्पन्न हुए, जिन्हें माता ने बाहर फिकवा दिया। जरा नाम की एक राक्षसी ने उन दोनों टुकड़ों को जियो-जियो बोलकर खेल-खेल में जोड़ दिया। उस जोड़े गए बालक का नाम पड़ा जरासंध।

जरासंध का सहदेव, सहदेव का सोमापि और सोमापि का श्रुतश्रवा पुत्र हुआ। जहनु का पुत्र सुरथ, सुरथ का विदूरथ, विदूरथ का सार्वभौम, सार्वभौम का जयसेन, जयसेन का राधिक, राधिक का अचुत, अचुत का क्रोधन, क्रोधन का देवातिथि, देवातिथि का ऋष्य, ऋष्य का दिलीप, दिलीप का प्रतीप, प्रतीप के तीन पुत्र हुए— देवापि, शन्तनु और ब्राहलीका। देवापि राज्य छोड़कर वन को चला गया। शन्तनु को राजा बनाया गया। इसमें एक विशेषता थी कि यह जिसे छू लेता था वह युवा हो जाता था। इस कारण इसका नाम शन्तनु हुआ। शन्तनु के छोटे भाई बाह्लिक का पुत्र— सोमदत्त, सोमदत्त के तीन पुत्र हुए— भूरिश्रवा, भूरि और शल। शन्तनु से गंगा जी के गर्भ से भीष्म का जन्म हुआ जो भगवान श्रीहरि के भक्त और परमज्ञानी थे। शन्तनु के द्वारा दाशराज की कन्या सत्यवती के गर्भ से दो पुत्र हुए— चित्रांगद और विचित्रवीर्य। इसी दाशराज की कन्या सत्यवती से पराशर जी के द्वारा भगवान के कलावतार स्वयं भगवान श्री कृष्ण द्वैपायन व्यास जी अर्थात् मेरे पिताश्री का जन्म हुआ।

शन्तनु के दूसरे पुत्र विचित्रवीर्य ने काशीराज की पुत्री अम्बिका और अम्बालिका से विवाह किया। परन्तु उन दोनों को भीष्मजी स्वयंवर से बलपूर्वक ले आए। विचित्रवीर्य टी.बी. (राजयक्ष्मा) से पीड़ित होने के कारण उनकी मृत्यु हो गई। माता सत्यवती के कहने पर भगवान व्यास जी ने अपने सन्तानहीन भाई की पत्नियों से धृतराष्ट्र और पाण्डुपुत्र उत्पन्न किए। उनकी दासी से तीसरे पुत्र विदुर जी का जन्म हुआ।

धृतराष्ट्र जन्मान्ध थे। धृतराष्ट्र की पत्नी का नाम था गांधारी। उसके गर्भ से सौ पुत्रों का जन्म हुआ। उनमें सबसे बड़े पुत्र का नाम दुर्योधन था। गांधारी ने एक कन्या को भी जन्म दिया जिसका नाम दुःशला था। पाण्डु की पत्नी थीं कुंती और माद्री। शापवश पाण्डु को स्त्री सहवास वर्जित था। इसलिए उनकी पहली पत्नी कुन्ती के गर्भ से धर्म, वायु और इन्द्र के द्वारा क्रमशः युधिष्ठिर, भीमसेन और अर्जुन हुए। माद्री से दोनों अश्विनी कुमारों के द्वारा उसके गर्भ से नकुल और सहदेव का जन्म हुआ।

इन पाँच पाँडवों द्वारा द्रौपदी के पाँच पुत्र हुए। युधिष्ठिर के प्रतिविन्ध्य, भीम के श्रुतसेन, अर्जुन के श्रुतकीर्ति, नकुल के शतानीक और सहदेव के श्रुतकर्मा हुए। इसके अतिरिक्त युधिष्ठिर के पौरवी नामक पत्नी से देवक और भीमसेन की पत्नी हिडिम्बा से घटोत्कच और काली से सर्वगत नाम के पुत्र हुए। सहदेव के पर्वत कुमारी विजय से सुहोत्र और नकुल के करेणुमती से

नरमित्र नामक पुत्र हुआ। अर्जुन द्वारा नागकन्या उलूपी के गर्भ से इरावान और मणिपुर नरेश की कन्या से वभ्रुवाहन का जन्म हुआ। वभ्रुवाहन अपने नाना का ही पुत्र माना गया क्योंकि यह बात पहले ही तय हो चुकी थी। अर्जुन की पत्नी सुभद्रा से तुम्हारे पिता अभिमन्यु का जन्म हुआ। अभिमन्यु की पत्नी उत्तरा से परीक्षित तुम्हारा जन्म हुआ। परीक्षित के जन्मेजय, श्रुतसेन, भीमसेन और उग्रसेन तुम्हारे पुत्र तुम्हारे सामने बैठे हैं।

जन्ममेय का शतानीक, शतानी का सहस्त्रानीक, उनके अश्वमेधज, अश्वमेधज का असीमकृष्ण और असीमकृष्ण का नेमिचक्र पैदा हुआ। नेमिचक्र का चित्ररथ, चित्ररथ का कविरथ, कविरथ का वृष्टिमान, वृष्टिमान का सुषेण, सुषेण का सुनीथा, सुनीथा का नृचक्षु, नृचक्षु का सुखीनल, सुखीनल का परिपल्व, परिपल्व का सुनय, सुनय का मेधावी, मेधावी का नृपंजय, नृपंजय का दूर्व, दूर्व का तिमि हुआ। तिमि के बृहद्रथ, बृहद्रथ के सुदामा, सुदामा के शतानीक, शतानीक के दुर्दमन, दुर्दमन के वहीनर, वहीनर के दण्डपाणि, दण्डपाणि के निमि के राजा क्षेमक का जन्म होगा। इस प्रकार सोमवंश के ब्राह्मण और क्षत्रिय का वर्णन है।

अब मगध देश के राजाओं का वर्णन सुनो। जरासंध का पुत्र सहदेव, सहदेव से मार्जारि, मार्जारि का श्रुतश्रवा, श्रुतश्रवा से अयुतायु, अयुतायु से निरमित्र, निरमित्र से सुनक्षत्र, सुनक्षत्र से बृहत्सेन, इनसे कर्मजित, कर्मजित से सुतंजय होंगे। ये सब बृहद्रथ वंश के राजा होंगे।

१९. अनु, द्रुह्यु, तर्वसु और यदुवंश का वर्णन

श्री शुकदेव जी कहते हैं कि ययातिनन्दन अनु के तीन पुत्र थे— समानर, चक्षु और परोक्ष। समानर का कालनर, कालनर का सुंजय, सुंजय का जन्मेजय, जन्मेजय का महाशील, महाशील का महामना, महामना का उशीनर और तितिक्षु के दो पुत्र हुए। उशीनर के चार पुत्र हुए— शिबि, वन, शमी और दक्ष। शिबि के भी चार पुत्र हुए— वृषादर्भ, सुबीर, मद्र और कैकेय। तितिक्षु के रूशद्रथ, रूशद्रथ के हेम, हेम के सुतपा, सुतपा के बलि हुआ। राजा बलि की पत्नी के गर्भ से दीर्घतमा मुनि से छह पुत्र उत्पन्न हुए— अंग, बंग, कलिंग, सुह्य, पुण्ड्र और अन्ध्र।

अंग के खनपान, खनपान के दिविरथ, दिविरथ के धर्मरथ और धर्मरथ के चित्ररथ नामक पुत्र हुए। चित्ररथ रोमपाद के नाम से प्रसिद्ध हुआ। यह अयोध्या पति महाराज दशरथ के मित्र थे। इन्होंने अपनी पुत्री शान्ता को रोमपाद (चित्ररथ) को गोद दे दी थी। शान्ता की शादी ऋष्यश्रृंग मुनि के साथ हुई। ऋष्यश्रृंग मुनि के पिता का नाम ऋषि विभाण्डक और माता का नाम हरिणी था। ऋष्यश्रृंग मुनि ने इन्द्र देवता का यज्ञ कराया था। इस यज्ञ से रोमपाद के चतुरंग पुत्र उत्पन्न हुआ। पुत्र विहीन दशरथ ने भी उन्हीं के प्रयत्न से चार पुत्र प्राप्त किए थे। रोमपाद का पुत्र हुआ। चतुरंग और चतुरंग

के पुत्र हुआ पृथुलाक्ष। पृथुलाक्ष के बृहद्रथ, बृहत्कर्मा और बृहद्भानु नामक तीन पुत्र हुए।

बृहद्रथ का पुत्र हुआ बृहन्मना और बृहन्मना का पुत्र था जयदर्थ। जयदर्थ की पत्नी का नाम था सम्भूति। उसके गर्भ से विजय उत्पन्न हुआ। विजय का धृति, धृति का धृतव्रत, धृतव्रत के सत्कर्मा, सत्कर्मा के अधिरथ का जन्म हुआ। अधिरथ सन्तानहीन था। एक दिन वह गंगातट पर क्रीड़ा कर रहा था तो उसने देखा कि एक पिटारी में एक नन्हा सा शिशु गंगा में बहा चला जा रहा है। वह बालक कर्ण था, जिसे कुन्ती ने कन्या अवस्था में उत्पन्न होने के कारण बहा दिया था। अधीरथ ने उसको अपना लिया। कर्ण के पुत्र का नाम था वृषसेन।

ययाति के पुत्र द्रहु से बभ्रु का जन्म हुआ। बभ्रु का सेतु, सेतु का आरब्ध, आरब्ध का गान्धार, गान्धार का धर्म, धर्म का धृत, धृत का दुर्मना, दुर्मना से प्रचेता का जन्म हुआ। प्रचेता के सौ पुत्र हुए। ये उत्तर दिशा में मलेच्छों के राजा बने। ययाति के पुत्र तुर्वसुका बह्नि, बह्नि का भर्ग, भर्ग का भानुमान, भानुमान का त्रिभानु, त्रिभानु का करन्धम, करन्धम का मरुत उत्पन्न हुआ। मरुत संतानहीन था, इसलिए पुरुवंशी दुष्यन्त को उसने अपना पुत्र बना लिया परन्तु दुष्यन्त राज्य की कामना से अपने ही वंश में लौट गया।



ययाति के बड़े पुत्र यदु के वंश का वर्णन

इस वंश में स्वयं भगवान श्रीहरि ने श्री कृष्ण बनकर मनुष्य रूप में अवतार लिया था। यदु के चार पुत्र थे— सहस्रजित, क्रोष्टा, नल और रिपु। सहस्त्रजीत से शतजित का जन्म हुआ। शतजित के तीन पुत्र थे— महाहय, वेणुहय और हैहय। हैहय का धर्म, धर्म का नेत्र, नेत्र का कुन्ति, कुन्ति का सोहंजि, सोहंजि का महिष्मान, महिष्मान का भद्रसेन, भद्रसेन के दुर्मद और धनक दो पुत्र हुए। धनक के चार पुत्र हुए-कृतवीर्य, कृताग्नि, कृतवर्मा और कृतौजा। कृतवीर्य का पुत्र अर्जुन था। उसने श्री दत्तात्रेय जी से योग विद्या और अणिमा लघिमा आदि बड़ी-बड़ी सिद्धियाँ प्राप्त की थीं। वह सात द्वीपों का एक छत्र सम्राट था। सहस्त्रबाहु अर्जुन पचासी हज़ार वर्ष तक छः इन्द्रियों से अक्षय विषयों का भोग करता रहा। उसके हज़ारों पुत्रों में से जयध्वज, सूरसेन, वृषभ, मधु और अर्जित शेष बचे रहे। शेष पुत्र परशुराम जी की क्रोधाग्नि में भस्म हो गए।

जयध्वज के पुत्र का नाम था तालजंघ, तालजंघ के सौ पुत्र हुए। वे तालजंघ क्षत्रिय कहलाए। उन सौ पुत्रों से सबसे बड़े पुत्र का नाम था वीतिहोत्र। वीतिहोत्र के पुत्र का नाम था मधु। मधु के भी सौ पुत्र हुए। उनमें सबसे बड़ा था वृष्णि। इन्हीं मधु, वृष्णि और यदु के कारण यह वंश माधव, वार्ष्णेय और यादव के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

यदुनन्दन क्रोष्टु का पुत्र था वृजितवान। वृजितवान का श्राहि, श्राहि का रूशेकु, रूशेकु का चित्ररथ, चित्ररथ का शशबिन्दु पुत्र था। शशबिन्दु के दस हज़ार रानियाँ थीं। उनमें से प्रत्येक के एक-एक लाख सन्तानें हुईं। इस प्रकार उनके एक अरब सन्तानें हुईं। उनमें पृथुश्रवा आदि छः पुत्र प्रधान थे। पृथुश्रवा के पुत्र का नाम था धर्म। धर्म का पुत्र था उशना। उशना का रूचक, रूचक के पाँच पुत्र थे— पुरुजित, रुक्म, रुक्मेषु, प्रथु और ज्यामघ। ज्यामघ की पत्नी का नाम था शैब्या। एक बार ज्यामघ ने शत्रु के घर से भोज्या नाम की कन्या को हरण कर लिया। उसने शैब्या से कहा— यह तुम्हारी पुत्र वधू है। शैब्या ने मुस्कराकर अपने पति से कहा— मैं तो जन्म से बाँझ हूँ और मेरे कोई सौत भी नहीं है। फिर यह मेरी पुत्र वधु कैसे हो सकती है? ज्यामघ ने कहा— तुम्हें जो पुत्र होगा, उसकी यह पत्नी बनेगी। राजा ज्यामघ के इस कथन का विश्वेदेव और पितरों ने अनुमोदन किया। इससे शैब्या गर्भवती हो गई और समय पूरा होने पर उसके एक सुन्दर बालक ने जन्म लिया। उसका नाम विदर्भ रखा गया। विदर्भ ने शैब्या की साध्वी पुत्र वधू भोज्या को अपनी पत्नी बनाया।



२०. विदर्भ के वंश का वर्णन

श्री शुकदेव जी कहते हैं— हे परीक्षित! विदर्भ की पत्नी भोज्या से तीन पुत्र हुए— कुश, कुथ और रोमपाद।

रोमपाद विदर्भ वंश में बहुत ही श्रेष्ठ पुरुष हुए। रोमपाद का पुत्र बभ्रु, बभ्रु का कृति, कृति का उशिक और उशिक का चेदि हुआ। इस चेदि के वंश में ही दमघोष और शिशुपाल आदि हुए। कृथ का कुन्ती, कुन्ती का धृष्टि, धृष्टि का निवृत्ति, निवृत्ति का दशार्ह, दशार्ह का व्योम पुत्र हुआ। व्योम का पुत्र जीमूत, जीमूत का विकृति, विकृति का भीमरथ, भीमरथ का नवरथ, नवरथ का पुत्र दशरथ हुआ। दशरथ के शकुनि, शकुनि के सरम्भि, सरम्भि के देवरात, देवरात के देवक्षत्र, देवक्षत्र के मधु, मधु के कुरुवंश और कुरुवंश के अनु हुए। अनु के पुत्र पुरुहोत्र, पुरुहोत्र के आयु, आयु के सात्वत, सात्वत के सात पुत्र हुए— भजमान, भजि, दिव्य, वृष्णि, देवावृध, अन्धक और महाभोज। भजमान के दो पत्नियाँ थीं। प्रत्येक से तीन पुत्र हुए। उनमें शताजित सहसत्राजित और अयुताजित दूसरी पत्नी से और पहली पत्नी से निम्लोचि, किंकिण और धृष्टि हुए।

वृष्णि के दो पुत्र हुए सुमित्र और युधाजित। युधाजित के शिनि और अनमित्र ये दो पुत्र थे। अनमित्र से निम्न पुत्र हुआ। निम्न के पुत्र सत्राजित और प्रसेन प्रसिद्ध यदुवंशी हुए। अनमित्र का एक और पुत्र था शिनि। शिनि से सत्यक, सत्यक से युयुधान उत्पन्न हुए। सत्यकि का जय, जय का कुणि, कुणि का युगन्धर पुत्र हुआ।

अनमित्र के तीसरे पुत्र का नाम वृष्णि था। वृष्णि के श्वफल्क और चित्ररथ नाम के दो पुत्र थे। श्रफल्क की पत्नी गान्दिनी के गर्भ से अक्रूर के अतिरिक्त बारह

और पुत्रों ने जन्म लिया। उनके सुचीरा नाम की एक बहिन भी थी। अक्रूर जी के दो पुत्रों के नाम थे— देववान और उपदेव। श्वफल्क के भाई चित्ररथ के पृथु, विदुरथ आदि पुत्र उत्पन्न हुए। सात्वत के पुत्र अन्धक के चार पुत्र थे— कुकुर, यजमान, शचि और कम्बलवर्हि। कुकुर का पुत्र वह्नि, वह्नि का विलोमा, विलोमा का कपोतरोमा, कपोतरोमा का अनु, अनु का अन्धक, अन्धक का दुन्दुभि, दुन्दुभि का परिद्योत, परिद्योत का पुनर्वसु, पुनर्वसु के आहुक नाम का पुत्र और आहुकी नाम की पुत्री हुई।

आहुक के देवक और उग्रसेन नाम के दो पुत्र हुए। देवक के चार पुत्र हुए— देववान, उपदेव, सुदेव, और देववर्धन। इसके साथ ही देवक के सात पुत्रियाँ भी हुईं जिनके नाम थे— धृतदेवा, शान्तिदेवा, उपदेवा, श्रीदेवा, देवरक्षिता, सहदेवा और देवकी।

देवकी का विवाह वसुदेव जी के साथ हुआ। उग्रसेन के नौ पुत्र और पाँच कन्याएँ थीं। पुत्रों के नाम थे— कंस, सुनामा, न्यग्रोध, कंकु, शंकु, सुहू, राष्ट्रपाल, सृष्टि और तुष्टिमान तथा पुत्रियों के नाम थे— कंसा, कंसवती, कंका, शूरभू और राष्ट्रपालिका। उनकी पुत्रियों का विवाह देवभाग और वसुदेव के छोटे भाइयों के साथ हुआ था।

चित्ररथ के पुत्र विदुरथ से शूर, शूर से भजमान, भजमान से शिनि, शिनि से स्वयंभोज, स्वयंभोज के हृदीक और हृदीक के देवमीढ़, शतधन्वा और कृतवर्मा

नामक तीन पुत्र हुए। देवमीढ़ के पुत्र शूर की पत्नी मारिषा के दस पुत्र हुए, जिनके नाम थे— वसुदेव, देवभाग, देवश्रवा, आनक, सुंजय, श्यामक, कंक, शमीक, वत्सक, और वृक।

वसुदेव जी भगवान श्री कृष्ण के पिता हुए और देवकी माता हुईं। शूरसेन के पाँच कन्याएँ थीं— प्रथा (कुन्ती), श्रुतदेवी, श्रुतकीर्ति, श्रुतश्रवा और राजाधिदेवी। वसुदेव के पिता शूरसेन के मित्र का नाम था— कुन्तीभोज। कुन्तीभोज के कोई सन्तान न होने के कारण कुन्ती भोज ने शूरसेन की पुत्री पृथा को गोद ले लिया था। पृथा (कुन्ती) ने देवताओं को बुलाने की विद्या दुर्वासा ऋषि से सीख ली थी। एक दिन कुन्ती ने सूर्य भगवान का आह्वान किया। भगवान सूर्य से कुन्ती कन्या रूप में ही गर्भवती हो गई। कुन्ती के सन्तान उत्पन्न हुई, जिसे उसने एक टोकरी में रखकर नदी में बहा दिया।

कुन्ती का विवाह महाराज पाण्डु से हुआ। कुन्ती की छोटी बहिन श्रुतदेवी का विवाह वृद्धशर्मा से हुआ जिसका पुत्र दन्तवक्त्र हुआ। धृष्टकेतु की पत्नी श्रुतकीर्ति से पाँच कैकय राजकुमार उत्पन्न हुए। चेदिराज दमघोष की पत्नी श्रुतश्रुवा से शिशुपाल का जन्म हुआ। वसुदेव के भाई देवभाग की पत्नी कंसा ने चित्रकेतु और बृहद्बल दो पुत्रों को जन्म दिया। देवश्रवा की पत्नी कंसवती से सुवीर इषुमान नाम के दो पुत्र हुए। आजक की पत्नी कंका से शत्रुजित और पुरुजित नामक दो पुत्र हुए। सृंजय की पत्नी राष्ट्रपालिका से दो पुत्र हुए— वृष और दुर्मषण।

श्यामक की पत्नी शूरभूमि से हरिकेश और हिरण्याक्ष नाम के दो पुत्रों का जन्म हुआ। मिश्रकेशी अप्सरा से वत्सक द्वारा वृक का जन्म हुआ। वृक की पत्नी दुर्वाक्षी से तक्ष, पुष्कर, शाल हुए। शमीक की पत्नी सुदामिनी से सुमित्र और अर्जुनपाल हुए। रोहिणी के गर्भ से वसुदेव जी के बलराम हुए। वसुदेव जी ने देवकी के गर्भ से आठ पुत्रों को जन्म दिया, जिनके नाम थे— कीर्तिमान, सुषेण, भद्रसेन, ऋजु, समर्दन, भद्र और शेषावतार श्री बलराम तथा आठवें पुत्र स्वयं श्री कृष्ण थे। सौभाग्यवती सुभद्रा भी देवकी की पुत्री थी।

लीला धारी पुरुषोत्तम भगवान श्री कृष्ण अवतीर्ण तो हुए मथुरा में लेकिन वसुदेव जी उन्हें नन्दबाबा के घर छोड़ आए। वहाँ पर अपना प्रयोजन पूरा कर श्री कृष्ण मथुरा लौट आए। उन्होंने बहुत सी स्त्रियों से विवाह कर हज़ारों पुत्रों को जन्म दिया। विश्व में अर्जुन की विजय का डंका बजवाया। उद्धव जी को आत्मत्व का उपदेश दिया तथा बाद में वे अपने लोक को सिधार गए।



दशम स्कन्ध

१. वसुदेव देवकी का विवाह

श्री शुकदेव जी कहते हैं— परीक्षित! अब भगवान श्री कृष्ण की लीलाओं को विस्तार से सुनो। ब्रह्माजी ने देवताओं से कहा— मैंने समाधि अवस्था में

आकाशवाणी सुनी है। तुम लोग भी उसे जान लो। भगवान को पृथ्वी के कष्ट का पहले से ही ज्ञात है। वे ईश्वरों के भी ईश्वर हैं। अतः अपनी काल शक्ति के द्वारा पृथ्वी का भार हरण करते हुए वे जब तक पृथ्वी पर लीला करें, तब तक तुम से सब लोग भी अपने अंशों के साथ यदुकुल में जन्म लेकर उनकी लीला में सहयोग करो। वसुदेव जी के घर स्वयं पुरुषोत्तम भगवान श्री कृष्ण प्रकट होंगे। उनकी और उनकी प्रियतमा श्री राधा की सेवा के लिए देवांगनाएँ जन्म ग्रहण करें। यह कहकर ब्रह्मा जी अपने लोक को चले गए।

प्राचीन काल में यदुवंशी राजा थे शूरसेन। वे मथुरा पुरी में रहकर मथुरा मण्डल और शूरसेन मण्डल का शासन करते थे। एक बार मथुरा में शूरसेन के पुत्र वसुदेव जी विवाह करके अपनी नवविवाहिता पत्नी देवकी के साथ घर जाने के लिए रथ पर सवार हुए। उग्रसेन का पुत्र कंस अपनी चचेरी बहिन देवकी को प्रसन्न करने के लिए उसके रथ के घोड़ों की रास्सी पकड़ ली। वह स्वयं रथ हाँकने लगा; उस समय आकाशवाणी ने उसे सम्बोधन करके कहा— अरे मूर्ख! जिसको तू रथ में बैठकर ले जा रहा है उसके आठवें गर्भ की सन्तान तुझे मार डालेगी। वह भोजवंश का कलंक ही था। आकाशवाणी को सुनते ही उसने तलवार खींच ली और अपनी बहिन की चोटी पकड़ कर उसे मारने को तैयार हो गया। उसका यह काम देखकर उसको शान्त करते हुए वसुदेव जी बोले—राजकुमार! इधर एक

तो यह स्त्री है, दूसरे आपकी बहिन है, तीसरे यह विवाह का शुभ अवसर है, ऐसी स्थित में आप इसे कैसे मार सकते हैं? आपको देवकी से तो कोई भय है नहीं, जैसा कि आकाशवाणी ने कहा है। भय है पुत्रों से, इसलिए इसके पुत्रों को मैं लाकर आपको सौंपता रहूँगा।

यह सुनकर कंस प्रसन्न हो गया और देवकी को छोड़ दिया। देवकी का पहला पुत्र कीर्तिमान उत्पन्न हुआ। वसुदेव जी ने उसे कंस को सौंप दिया। कंस ने सोच-समझकर उसको लौटा दिया। इसके बाद कंस के पास नारद जी आकर बोले कि दैत्यों के कारण पृथ्वी का भार बढ़ गया है इसलिए देवताओं की ओर से तुम्हारे वध की तैयारी की जा रही है। इतना कहकर नारद जी चले गए। तब कंस को निश्चय हो गया कि सब यदुवंशी देवता हैं और देवकी के गर्भ से विष्णु भगवान ही मुझे मारने के लिए पैदा होने वाले हैं तो उसने देवकी और वसुदेव को हथकड़ी बेड़ी से जकड़ कर जेल में डाल दिया। उसने अपने पिता उग्रसेन को भी कैद कर लिया और स्वयं राजा बन गया।



२. भगवान का गर्भ प्रवेश और कंस द्वारा देवकी के पुत्रों की हत्या

श्री शुकदेव जी बताते हैं— परीक्षित! कंस स्वयं बड़ा बली था और उसे मगध नरेश जरासंध की सहायता

प्राप्त थी। इसके अतिरिक्त उसके साथी थे—प्रलम्बासुर, बकासुर, चाणूर, तृणावर्त, अधासुर, मुष्टिक, अरिष्टासुर, द्विविद, पूतना, केशी, और धेनुक तथा बाणासुर और भौमासुर आदि बहुत से दैत्य राजा उसके सहायक थे। इनको साथ लेकर वह यदुवंशियों को नष्ट करने लगा। वे लोग भयभीत होकर कुरु, पाँचाल, केकय, शाल्व, विदर्भ, निषध, विदेह और कौशल आदि देशों में जाकर बस गए। जब कंस ने एक-एक करके देवकी के छः बालक मार डाले तब देवकी के गर्भ में भगवान के अंश रूप श्री शेष जी पधारे। विश्वात्मा भगवान ने अपनी योगमाया को आदेश दिया कि देवकी के गर्भ से श्री शेष जी को वसुदेव की दूसरी पत्नी रोहिणी के गर्भ से स्थानान्तरित कर दो। तुम नन्द बाबा की पत्नी यशोदा के गर्भ से पैदा होना, मैं देवकी का पुत्र बनूँगा। पृथ्वी के लोग तुम्हारे लिए बहुत से स्थान बनाएँगे और दुर्गा, भद्रवाली, माधवी, कृष्णा, चण्डिका, कुमुदा, वैष्णवी, विजया, शारदा, ईशानी, नारायणी, माया, कन्या और अम्बिका आदि अनेक नामों से पुकारेंगे।

आठवें गर्भ में भगवान ने प्रवेश किया तो सबकी बुद्धि फिर गई। यद्यपि कंस देवकी को मार सकता था, परन्तु स्वयं ही वह इस अत्यन्त क्रूरता के विचार से निवृत्त हो गया। चारों ओर अन्धकार छाया हुआ था। उसी समय सबके हृदय में विराजमान भगवान विष्णु देवकी के गर्भ से प्रकट हुए।

वसुदेव जी ने देखा उनके सम्मुख एक अद्भुत बालक है। उसके नेत्र कमल के समान कोमल और विशाल हैं। चार हाथों में शंख, गदा, चक्र और कमल धारण कर रखा है। वक्षस्थल पर श्रीवत्स का चिन्ह अंकित है। गले में कौस्तुभमणि झिलमिला रही है। उनका रूप देखकर सबको बड़ी प्रसन्नता हुई। अपनी बुद्धि को स्थिर करके उन्होंने भगवान के चरणों में अपना सिर झुकाया और हाथ जोड़कर उनकी स्तुति करने लगे। इधर देवकी ने देखा कि मेरे पुत्र में पुरुषोत्तम भगवान के सभी लक्ष्ण उपस्थित हैं। वे भी पवित्रभाव से मुस्कराती हुई स्तुति करने लगीं।

भगवान श्री कृष्ण दोनों से बोले— मैंने अपना चतुर्भुजी रूप इसलिए दिखाया है कि तुम्हें मेरे पूर्व अवतारों का स्मरण हो जाए। तुम दोनों मेरे प्रति पुत्र भाव तथा ब्रह्मभाव रखना। इस प्रकार वात्सल्य स्नेह और चिन्तन के द्वारा तुम्हें मेरे परमपद की प्राप्ति होगी। भगवान ने कहा— देवी! स्वायम्भुव मन्वन्तर में जब तुम्हारा जन्म हुआ था तब तुम्हारा नाम पृश्नि और वसुदेव जी का नाम सुतपा प्रजापति था। उस समय मैं पृश्नि गर्भ के नाम से प्रसिद्ध हुआ। दूसरे जन्म में तुम अदिति और वसुदेव जी कश्यप थे। उस समय मैंने तुम्हारे गर्भ से जन्म लिया था और मेरा नाम उपेन्द्र था तथा मेरा नाम वामन अवतार के रूप में प्रसिद्ध हुआ। अब तीसरी बार आपका पुत्र बनकर प्रकट हुआ हूँ। इतना बताकर भगवान चुप हो गए और शिशु रूप धारण कर लिया।

तब वसुदेव जी ने भगवान की प्रेरणा से अपने पुत्र को लेकर सूतिकागृह से बाहर निकलने की इच्छा प्रकट की। उसी समय नन्द की पत्नी यशोदा के गर्भ से उस योगमाया का जन्म हुआ जो भगवान की शक्ति होने के कारण उनके समान ही जन्म रहित है।

वसुदेव जी अपनी योगमाया से श्री कृष्ण को लेकर गोकुल की तरफ चले। घनघोर वर्षा हो रही थी। श्री शेष जी ने छत्रछाया कर रखी थी। यमुना नदी उमड़ रही थी। यमुना जी ने रास्ता दे दिया। वसुदेव जी नन्दबाबा के यहाँ से उस कन्या को ले आए और अपने पुत्र को यशोदा जी के पास सुला दिया। जेल में पहुँचकर वसुदेव जी ने उस कन्या को देवकी के पास सुला दिया और अपने पैरों में बेड़ियाँ धारण कर लीं तथा दरवाज़ों पर ताले लग गए।



३. कंस के हाथ से कन्या छूटकर आकाश में भविष्यवाणी करना

श्री शुकदेव जी कहते है— हे परीक्षित! जब वसुदेव जी लौट आए तब नगर के बाहरी और भीतर के सब द्वारा अपने आप पहले की तरह बन्द हो गए। इसके बाद नवजात शिशु के रोने की ध्वनि सुनकर द्वारपाल भी जग गए। उन्होंने कंस के पास जाकर सन्तान होने की सूचना दी।

कंस सूचना पाकर जेल में आ गया। देवकी कन्या को अपनी गोद में छिपाकर दीनता के साथ रोते-रोते याचना करने लगी, परन्तु कंस बड़ा निर्दयी था। उसने देवकी को झिड़क कर उसके हाथ से वह कन्या छीन ली। उस नवजात कन्या का पैर पकड़कर उसे एक चट्टान पर बड़े ज़ोर से पटका। वह कन्या कंस के हाथ से छूटकर तुरन्त आकाश में चली गई और कंस से कहा— अरे मूर्ख! तेरे पूर्व जन्म का शत्रु तुझे मारने के लिए किसी दूसरे स्थान पर उत्पन्न हो चुका है। कंस से इस प्रकार कहकर भगवती योगमाया अन्तर्धान हो गई।

कन्या की यह बात सुनकर कंस को बड़ा आश्चर्य हुआ। कंस ने उसी समय देवकी और वसुदेव को छोड़ दिया तथा अपनी दुष्टता के लिए दोनों से क्षमा माँगने लगा। जब देवकी ने देखा कि भाई कंस को पश्चताप हो रहा है तब उन्होंने उसे क्षमा कर दिया। तब कंस उनसे अनुमति लेकर अपने महल को चला गया।

अगले दिन कंस ने अपने मंत्रियों से योगमाया के कथन पर विचार-विमर्श किया। उसके राक्षसवृत्ति के सलाहकारों ने उसकी बुद्धि भ्रष्ट कर दी। कंस ने ऐलान कर दिया कि जितने भी छोटे शिशु जो आज उत्पन्न हुए हों उनका कत्ल कर दिया जाए। उसने हिंसा प्रेमी राक्षसों को संत पुरुषों और ब्राह्मणों की हिंसा करने का आदेश दे दिया।



४. गोकुल में भगवान का जन्म महोत्सव

गोकुल में नन्द बाबा ने पुत्र उत्पन्न होने की खुशी में बड़े-बड़े उत्सव किए। साथ ही देवता और पितरों की विधिपूर्वक पूजा भी करवाई। उन्होंने ब्राह्मणों को वस्त्र और आभूषणों से सुज्जित दो लाख गौ दान की। रत्नों और सुनहले वस्त्रों से ढके हुए तिल के सात पहाड़ दान किए। नन्दबाबा के अभिनन्दन करने पर परम सौभाग्यवती रोहिणी जी दिव्य वस्त्र, माला और गले के भाँति-भाँति के गहनों से सुसज्जित होकर गृहस्वामिनी की भाँति आने-जाने वाली महिलाओं का सत्कार करती हुई विचर रहीं थीं। आनन्द मंगल बड़े धूमधाम से मनाया जा रहा था।



५. भगवान की लीलाएँ

१. बाल लीला पूतना वध।
२. बाल लीला तृणावत वध।
३. माखन चोर लीला की।
४. ऊखली से बंध जाना। अर्जुन वृक्षों की मुक्ति करना जो यमराज के पुत्र थे। इनका नाम नल कुबर और मणीग्रीव था जो नारद जी के शाप से वृक्ष बन गए थे।
५. वृत्सासुर और बकासुर का उद्धार किया।
६. अधासुर का वध किया जो पूतना और वकासुर का छोटा भाई था।
७. ब्रह्माजी के मोह का नाश किया। भगवान ने स्वयं

एक माह तक बछड़े और ग्वाल बालों के रूप में रहकर ब्रह्माजी को लज्जित किया।

८. धेनासुर का वध किया।
९. कालिया का मर्दन किया और मोक्ष दिया।
१०. अग्निपान किया।
११. प्रलम्बासुर का बलराम जी ने वध किया।
१२. भगवान ने गायों और ग्वालों को दावानल से बचाया।
१३. अरिष्टासुर का वध किया जो बैल का रूप धर कर आया था।
१४. जरासंध और बानर राज का वध किया।
१५. शम्बरासुर, नरकासुर और बाणासुर का वध किया।
१६. कुवलया पीड़ का वध किया।
१७. मुष्ठिक, चाणूर, कूट, शल, तोशल पहलवानों का वध किया।
१८. केशी दैत्य का वध किया।
१९. शंखासुर, कालयावन, मुसर, नरकासुर का वध किया।
२०. जामवन्ती के सथ स्यमन्तक मणि को जाम्बवान से लाए।
२१. युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में दन्तवक्त्र, चेदिराजा और शिशुपाल का वध किया।
२२. व्योमासुर जो ग्वाले का रूप धरकर आया था, उसका वध किया।
२३. कुब्जा, कूबड़ी जो भोजराज कंस के चंदन का पात्र लेकर जाती थी, उसका कुबड़ापन मिटाया।
२४. कंस का वध किया।

६. पूतना उद्धार (वध किया)

श्री शुकदेव जी कहते हैं— हे परीक्षित! पूतना नाम की एक बड़ी क्रूर राक्षसी थी। उसका एक ही काम था, बच्चों को मारना। कंस की आज्ञा से एक दिन वह नन्दबाबा के गोकुल के पास जाकर उसने अपने को एक सुन्दर युवती में परिवर्तित कर लिया और गोकुल में प्रवेश कर गई। वह अनायास ही नन्दबाबा के घर में घुस गई। उस समय श्री कृष्ण शैय्या पर लेटे हुए थे। पूतना को आया देखकर भगवान श्री कृष्ण ने अपनी आँखें बन्द कर लीं। इधर भयानक राक्षसी पूतना ने बालक श्री कृष्ण को अपनी गोद में उठाया और अपना स्तन उनके मुँह में दे दिया। उसने अपने स्तनों पर ज़हर का लेप लगा रखा था। भगवान श्री कृष्ण ने क्रोध में भरकर दोनों हाथों से उसके स्तनों को ज़ोर से दबाकर उसके प्राणों के साथ उसका दूध पीने लगे (वे स्वयं दूध पी रहे थे और उनका क्रोध उसके प्राण पीने लगा)।

पूतना सटपटाकर पृथ्वी पर गिर पड़ी। उसके नेत्र उलट गए। उसकी चिल्लाहट का वेग इतना तीव्र था कि सातों पाताल और दिशाएँ गूँज उठीं। वह राक्षसी रूप में प्रकट हो गई। उसके शरीर से प्राण निकल गए। मुँह फट गया, बाल बिखर गए और हाथ पैर फैल गए। जिस प्रकार इन्द्र के वज्र से घायल होकर वृत्रासुर गिर पड़ा था, वैसी ही बाहर गोष्ठ में आकर वह गिर पड़ी। पूतना के उस शरीर को देखकर सब ग्वाल और गोपी

डर गए। जब गोपियों ने देखा कि बालक श्री कृष्ण उसकी छाती पर खेल रहे हैं तो उन्होंने श्री कृष्ण को उठा लिया। इसके बाद यशोदा और रोहिणी ने गोपियों के साथ मिलकर गाय की पूँछ घुमाने आदि उपायों से श्री कृष्ण नज़र उतारी। यशोदा जी ने स्तनपान कराया और फिर उन्हें पालने में सुला दिया। भगवान ने पूतना का शरीर दबाकर स्तनपान किया था। इस कारण पूतना को उत्तम गति प्राप्त हुई।



७. संकट-भंजन और तृणावर्त उद्धार

श्री शुकदेव जी कहते हैं— परीक्षित! भगवान श्री कृष्ण ने प्रथम बार करवट बदलने का अभिषेक उत्सव मनाया जा रहा था। उसी दिन उनका जन्म नक्षत्र भी था। यशोदा जी ने पुत्र का अभिषेक किया। शिशु श्री कृष्ण एक छकड़े के नीचे सो रहे थे। यशोदा जी श्री कृष्ण को सुलाकर घर का कामकाज निबटाने लगीं। कुछ समय बाद वे ज़ोर-ज़ोर से रोने लगे, परन्तु किसी ने उस तरफ ध्यान नहीं दिया। श्री कृष्ण रोते-रोते अपने पाँव उछालने लगे। उनका पाँव लगते ही विशाल छकड़ा पलट गया। इस प्रकार हिरण्याक्ष के पुत्र उत्कच का उद्धार किया। वह शाप वश केंचुल हो गया था। वह छकड़े पर आकर बैठ गया था। भगवान के चरण स्पर्श से उत्कच का उद्धार हो गया। इस विचित्र व अनोखी

घटना को देखकर सब ग्वाल बाल व गोप व्याकुल हो गए। ब्राह्मणों से वेद मंत्रों द्वारा शांति पाठ कराया। ब्राह्मणों ने हवन किया और दही, अक्षत, कुश और जल से भगवान और छकड़े की पूजा की और फिर यशोदा जी ने उन्हें स्तनपान कराया।

एक दिन यशोदा जी कृष्ण को गोद में लेकर दुलार रही थीं। सहसा श्री कृष्ण चट्टान के समान भारी बन गए। वे उनका भार न सह सकीं। उन्होंने बालक श्री कृष्ण को गोद मे उतार कर पृथ्वी पर बैठा दिया।

तृणावर्त नाम का एक दैत्य था। वह कंस का निजी सेवक था। कंस की प्रेरणा से बवंडर के रूप में वह प्रकट हुआ और बैठे हुए बालक श्री कृष्ण को उड़ाकर आकाश में ले गया। तृणावर्त ने आँधी और धूल से सारे गोकुल को ढक दिया और लोगों की देखने की शक्ति को हर लिया। सारा ब्रज दो घड़ी तक रज और तम से ढका रहा। यशोदा जी ने श्री कृष्ण को जहाँ बैठाया था वहाँ पर श्री कृष्ण उन्हें नहीं मिले। चारों तरफ रोना-पीटना चालू हो गया।

तृणावर्त बवंडर रूप से जब भगवान श्री कृष्ण को उठाकर आकाश में ले गया तो उनके भारी बोझ को न संभाल सकने के कारण उसका वेग शान्त हो गया। वह अधिक न चल सका। भगवान श्री कृष्ण ने उसका गला पकड़ कर इतनी ज़ोर से दबाया कि उसने प्राण पखेरु उड़ गये और वह बालक श्री कृष्ण के साथ नीचे गिर पड़ा। इस प्रकार भगवान का स्पर्श पाकर तृणावर्त

का उद्धार हो गया। नन्दबाबा ने यज्ञ और दान देकर ब्राह्मणों को तृप्त किया।

एक दिन की बात है यशोदा जी श्री कृष्ण को स्तनपान करा रही थीं। जब वे दूध पी चुके तो माता वत्सल्य रूप से उनका मुख घूमने लगीं। उसी समय श्री कृष्ण ने जम्भाई ली। माता ने उनके मुख में आकाश, अन्तरिक्ष, ज्योतिर्मण्डल, दिशाएँ, सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि, वायु, समुद्र, द्वीप, पर्वत, नदियाँ, वन और समस्त चराचर प्राणियों के दर्शन किए। अपने पुत्र के मुँह में इस प्रकार सहसा समस्त संसार के दर्शन कर वे घबरा गईं। उन्होंने अपनी आँखें बन्द कर लीं।



८. नामकरण संस्कार और बाललीला

श्री शुकदेव जी कहते हैं— परीक्षित! एक दिन यदुवंशियों के कुल पुरोहित श्री गर्गाचार्य नन्दबाबा के घर पधारे। उन्हें देखकर नन्दबाबा ने खड़े होकर उनके चरणों में प्रणाम किया। उन्होंने गर्गाचार्य जी से निवदेन किया कि मेरे इन दोनों बालकों का नामकरण संस्कार करा दीजिए।

गर्गाचार्य जी ने कहा— यह रोहिणी का पुत्र है। इसलिए इसका एक नाम रौहिणेय और दूसरा नाम राम है तथा इसका नाम बल भी है। अर्थात् यह बालक बलराम के नाम से प्रसिद्ध होगा और यह दूसरा साँवला

सा बालक है इसका नाम श्री कृष्ण होगा। नन्दजी यह तुम्हारा पुत्र पहले कभी वसुदेव जी के घर भी पैदा हुआ था, इसलिए इस रहस्य को जानने वाले लोग इसे श्री वसुदेव भी कहेंगे। यह बालक साक्षात् भगवान नारायण के समान है। इससे प्रेम करने वालों को भीतर या बाहर किसी भी प्रकार के शत्रु नहीं जीत सकते। इतना बताकर श्री गर्गाचार्य जी अपने आश्रम को प्रस्थान कर गए।

जब उनके दोनों नन्हें-नन्हें शिशु अपने शरीर पर कीचड़ का अंगराग लगाकर लौटते तब उनकी सुन्दरता में चार चाँद लग जाते। माताएँ उन्हें दोनों हाथों से गोद में लेकर हृदय से लगा लेतीं और दूध पिलाने लगतीं। जब बलराम और कुछ बड़े हुए तो बछड़ों की पूँछ पकड़ने लगे। बछड़े भागते तो उनके साथ भागते-भागते ज़मीन पर गिर जाते और बछड़े उन्हें घसीटते हुए दौड़ने लगते। गोपियाँ घर का काम धन्धा छोड़कर उनकी बाल लीलाओं का आनन्द उठातीं। वे बछड़ों को गायों के पास खोल देते। एक दिन सब गोपियाँ मिलकर यशोदा जी के पास गईं और कृष्ण कन्हैया की शिकायत करने लगीं। उन्होंने कहा— यह दूध-दही चुराकर खा जाता है तथा वानरों को खिला देता। मटकों को फोड़ देता है। इस प्रकार दोनों भाई बलराम और श्री कृष्ण माखन चोरी की लीलाएँ करते और गोपियों को रिझाते रहते थे।

एक दिन दोनों भाई ग्वाल बालकों के साथ खेल रहे थे। उन लोगों ने यशोदा जी से कन्हैया की शिकायत की कि इसने मिट्टी खाई है। यशोदा मैया ने डाँटकर

कहा— क्यों रे नटखट! तू बहुत ढीठ हो गया है। तूने मिट्टी क्यों खाई? इस पर श्री कृष्ण ने मुँह फाड़कर दिखाते हुए कहा— माँ! मैंने मिट्टी नहीं खाई है। ये सब झूठ बोल रहे हैं। यशोदा जी को मुँह में सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड, चन्द्रमा, तारे, पहाड़ आदि दिखाई दिए। तब माता कृष्ण का तत्त्व समझ गईं। भगवान ने उनके हृदय में योगमाया का संचार कर दिया। यशोदा जी वह घटना भूल गईं और अपने दुलारे को गोद में उठा लिया। नन्द और यशोदा को उनका अपार सुख मिलने लगा।

नन्द बाबा पूर्व जन्म में एक श्रेष्ठ वसु थे। उनका नाम द्रोण और पत्नी का धरा था। उन्होंने ब्रह्माजी के आदेशों का पालन करने की इच्छा से उनसे कहा— भगवन्! जब हम पृथ्वी पर जन्म लें, तब जदीश्वर भगवान श्री कृष्ण में हमारी अनन्य भक्ति हो। ब्रह्माजी ने कहा— ऐसा ही होगा। वे ही परम यशस्वी भगवन्तय द्रोण ब्रज में पैदा हुए और उनका नाम रखा गया नन्द। उनकी पत्नी धरा इस जन्म में यशोदा के नाम से उनकी पत्नी बनीं। ब्रह्माजी की बात सत्य कहने के लिए भगवान श्री कृष्ण बलराम जी के साथ ब्रज में रहकर समस्त ब्रजवासियों को अपनी बाल लीलाओं से आनन्दित करने लगे।



ए. श्री कृष्ण का ऊखल से बंध जाना

श्री शुकदेव जी कहते हैं— परीक्षित! एक बार की बात है यशोदा जी स्वयं दही मथने लगीं। उसी समय भगवान श्री कृष्ण स्तनपान हेतु माता के पास आए। वे उन्हें दूध पिलाने लगीं। इसी बीच अंगीठी पर रखे दूध में उफान आया तो वे श्री कृष्ण को बीच में ही गोद से उतारकर दूध को अंगीठी पर से उतारने के लिए चली गईं। श्री कृष्ण को बहुत क्रोध आया और उनके लाल-लाल होठ फड़कने लगे। उन्होंने अपने दाँतों से पास में रखे लोटे से दही का मटका फोड़ डाला और बनावटी आँसू आँखों में भरकर दूसरे कमरे में जाकर माखन खाने लगे।

यशोदा जी दूध के बर्तन को उतार कर आईं तो मटके के टुकड़े-टुकड़े देखे। परन्तु श्री कृष्ण नहीं दिखाई दिए। इधर-उधर ढूँढने पर देखा कि कृष्ण एक उलटे हुए ऊखल पर चढ़े हुए हैं और छींके पर रखे माखन को खा रहे हैं और अपने मित्रों को भी खिला रहे हैं। यशोदा जी हाथ में छड़ी लिए उनके पास पहुँची तो फौरन ऊखल से कूद पड़े और भयभीत होकर दौड़ने लगे। उन्हें पकड़ने के लिए यशोदा जी भी दौड़ पड़ीं। जैसे-तैसे करके यशोद जी ने श्री कृष्ण को पकड़ लिया। उनके हृदय में वात्सल्य प्रेम उमड़ने लगा और उन्होंने छड़ी को फेंक दिया। उन्होंने श्री कृष्ण को ऊखल से बांधने की सोची। वे एक रस्सी लाकर श्री कृष्ण को

बांधने लगीं तो रस्सी दो अँगुल छोटी पड़ गई। उन्होंने इसमें दूसरी रस्सी लाकर जोड़ी परन्तु वह भी दो अँगुल छोटी पड़ गई। उन्होंने कई रस्सियाँ लाकर जोड़ीं, परन्तु हर बार रस्सी छोटी पड़ जाती थी। जब श्री कृष्ण ने देखा कि माता का शरीर पसीने से लथपथ हो गया है तो वे स्वयं ही ऊखल से बंध गए।

इसके बाद यशोदा जी तो घर के काम में व्यस्त हो गईं और ऊखल से बंधे हुए श्री कृष्ण ने सोचा उन दोनों अर्जुन वृक्षों को मुक्त कर देना चाहिए जो पहले कुबेर के पुत्र थे। वे दोनों वृक्षों के बीच ऊखल को घसीट कर ले गए। रस्सी को ज़ोर से खींचने पर दोनों वृक्ष पृथ्वी पर गिर पड़े। ये नारद जी के शाप से वृक्ष बन गए थे। ये दोनों वृक्ष एक साथ ही अर्जुन वृक्ष बनकर यमलार्जुन नाम से प्रसिद्ध हो गए थे। इस प्रकार से नलकूबर और मणिग्रीव का उद्धार हो गया जो कुबेर के पुत्र थे।



१०. गोकुल से वृन्दावन जाना और वत्सासुर एवं बकासुर का उद्धार

जब नन्द बाबा आदि बड़े बूढ़े गोपों ने देखा कि गोकुल में बड़े-बड़े उत्पात होने लगे हैं जो बच्चों के लिए बहुत ही अनिष्टकारी हैं इसलिए हमें कहीं दूसरे स्थान पर चले जाना चाहिए। पास में ही वृन्दावन नाम

का एक वन है। उसमें छोटे-छोटे हरे-भरे वन हैं, पवित्र पर्वत और हरी-भरी लता-वनस्पतियाँ हैं। हमारे पशुओं के लिए भी हितकारी हैं।

सब लोगों ने विचार कर गायों, बछड़ों को आगे कर छकड़ों में अन्य सामान रखकर श्री कृष्ण और बलदाऊ के साथ वृन्दावन को चल दिए। वन में प्रवेश करके ग्वालों ने अपने छकड़ों को अर्द्धचन्द्रकार मण्डल में बाँधकर खड़ा कर दिया। वृन्दावन का हरा-भरा वन, अत्यन्त मनोहर गोवर्धन पर्वत और यमुना नदी के सुन्दर-सुन्दर पुलिनों को देखकर भगवान श्री कृष्ण और बलराम के हृदय में उत्तम प्रीति का उदय हुआ।

एक दिन की बात है कि कृष्ण और बलराम अपने प्रेमी सखा ग्वाल बालों के साथ यमुना तट पर गाय बछड़ों को चरा रहे थे। उसी समय ,उन्हें मारने की इच्छा से एक दैत्य आ गया। भगवान श्री कृष्ण ने देखा कि वह बनावटी बछड़े का रूप धारण कर हमारे बछड़ों के झुंड में शामिल हो गया है। वे आँखों के इशारे से बलराम को दिखाते हुए धीरे से उसके पास पहुँच गए। उन्होंने पूँछ के साथ उसके पिछले दोनों पैर पकड़ कर आकाश में घुमाया और मृत्यु हो जाने पर कैथ के वृक्ष पर पटक दिया। ग्वाले वाह-वाह करके कन्हैया की प्रशंसा करने लगे। देवता भी प्रसन्न होकर फूलों की वर्षा करने लगे। इस प्रकार उन्होंने वत्सासुर का उद्धार किया।

कभी-कभी वे तड़के ही उठकर कलेवे की सामग्री ले लेते और बछड़ों को चराते हुए एक वन से दूसरे वन

में घूमा करते। एक दिन की बात है कि ग्वाल बालों ने देखा कि वहाँ एक बहुत बड़ा जीव बैठा है जिसे देखकर वे डर गए। वह बक नाम का एक बड़ा भारी असुर था जो बगुले का रूप धारण कर आया था। उसकी चोंच बड़ी तीखी थी और बड़ा बलवान था उसने झपट्टा मारकर श्री कृष्ण को निगल लिया। सब ग्वाल यह देखकर अचेत हो गए।

इधर जब श्री कृष्ण बगुले के तालु के नीचे पहुँचे तब वे आग के समान उसका तालु जलाने लगे। इस पर उस दैत्य ने श्री कृष्ण को तुरन्त उगल दिया और अपने कठोर चोंच से उन पर वार करने लगा। वह कंस का मित्र बकासुर था। इस पर श्री कृष्ण ने अपने दोनों हाथों से उसके दोनों ठोर पकड़ कर बीच में से चीर डाला। सब ग्वालों ने भगवान श्री कृष्ण को गले लगाया। इस प्रकार उन्होंने बकासुर का उद्धार किया।



११. अधासुर का उद्धार

श्री शुकदेव जी कहते हैं कि प्रतिदिन की तरह बछड़ों को आगे कर श्री कृष्ण बंसी को बजाते हुए और ग्वाल बाल रास्ते में विविध प्रकार की क्रीड़ाएँ करते हुए वन को जाते। बहुत से ग्वाल बाल नदी में मेंढक की तरह फुदक-फुदक कर लीलाएँ करते, कुछ बन्दरों की पूँछ पकड़कर उनके पीछे दौड़ कर क्रीड़ाएँ

करते। इसी समय अघासुर नाम का महान दैत्य वहाँ आ धमका। देवता भी उससे अपने जीवन की रक्षा करने के लिए चिंता करते रहते थे और यह प्रतीक्षा करते रहते थे कि किसी प्रकार से इसकी मृत्यु हो जाए। अघासुर पूतना और बकासुर का छोटा भाई था और कंस द्वारा भेजा गया था।

वह दुष्ट दैत्य अजगर का रूप धरकर मार्ग में लेट गया। उसकी इच्छा सब बालकों को निगल जाने की थी। इसलिए उसने गुफा के समान अपना मुँह फाड़ रखा था। उसका नीचे का होंठ पृथ्वी से और ऊपर का होंठ आकाश से लग रहा था। उसके जबड़े कन्दराओं के समान थे और दाढ़े पर्वत के शिखर की भाँति जान पड़ती थीं। मुँह के भीतर की जीभ एक चौड़ी लाल रंग की सड़क सी दिखती थी।

ग्वाल बाल खेलते हुए उसके मुँह में बछड़ों सहित प्रवेश कर गए। भगवान श्री कृष्ण ने देखा तो उनको बचाने के लिए स्वयं भी उसके मुँह में प्रवेश कर गए। उन्होंने बड़ी फुर्ती से अपने शरीर को बढ़ाया। इससे उसका गला रुंध गया। आँखें बाहर निकल पड़ीं और वह छटपटाने लगा। अन्त में उसके प्राण ब्रह्मरन्ध्र को फोड़ कर निकल गए। सब ग्वाल बालों और बछड़ों को श्री कृष्ण भगवान ने अपनी अमृतमयी दृष्टि डालकर जीवित कर दिया। वे सब उसके मुँह से बाहर निकल आए।

उसी समय अजगर के स्थूल शरीर से महान ज्योति

प्रकट हुई जो श्री कृष्ण के शरीर में प्रविष्ट हो गई। देवताओं ने फूलों की वर्षा की। ये सब लीलाएँ भगवान ने अपनी छोटी सी आयु अर्थात् पाँच वर्ष की अवस्था में कीं।



१२. ब्रह्माजी का मोह और उनका मोहनाश

एक दिन भगवान श्री कृष्ण और ग्वाल-बाल गाय बछड़ों को चराने वन में गए। लीलाएँ और क्रीडाएँ करते बहुत दिन चढ़ गया। उन सब ग्वाल बालों ने गोला सा बनाकर बैठ गए और बीच में श्री कृष्ण को बैठा कर भोजन करना प्रारम्भ कर दिया। गाय-बछड़े हरी-भरी घास चरते हुए दूर निकल गए। ब्रह्माजी आकाश में पहले से ही उपस्थित थे। उन्होंने सोचा कि भगवान श्री कृष्ण की मनोहर लीला देखनी चाहिए। ब्रह्माजी ने गाय-बछड़ों को ले जाकर एक गुप्त स्थान पर छिपा दिया। जब भगवान ने गाय-बछड़ों को वहाँ नहीं पाया तो ग्वाल बालों को वहीं पर छोड़कर स्वयं ढूँढने के लिए निकले।

श्री कृष्ण के चले जाने पर ब्रह्माजी ने ग्वाल बालों को भी उसी स्थान पर छिपा दिया जहाँ पर गाय बछड़ों को छिपा रखा था। भगवान श्री कृष्ण गाय-बछड़े न मिलने पर यमुना जी के तट पर लौट आए। परन्तु वहाँ पर उन्हें ग्वाल बाल भी नहीं दिखाई दिए। इस पर

भगवान श्री कृष्ण ने उन्हें चारों ओर ढूँढा परन्तु वे कहीं नहीं दिखाई दिए।

उन्होंने अपने अन्तर चक्षु से जान लिया कि यह सब ब्रह्माजी की करतूत है। अब भगवान श्री कष्ण ने गाय-बछड़ों और ग्वाल बालों की माताओं को तथा ब्रह्माजी को आनन्दित करने के लिए स्वयं बछड़ों और ग्वाल बालों दोनों के रूप में परिवर्तित कर लिया। वे बालक और गाय-बछड़े संख्या में जितने थे, जितने उनके छोटे शरीर थे, उनके हाथ पैर जैसे-जैसे थे, उनके पास जितनी और जैसी छड़ियाँ, सींग, बाँसुरी, पत्ते और छीकें थे, जैसे और जितने वस्त्राभूषण थे, उनके शील, स्वभाव, गुण, नाम, रूप और अवस्थाएँ जैसी थीं, जिस प्रकार वे ग्वाले खाते-पीते और चलते थे, ठीक वैसे ही और उतने ही रूपों में प्रकट हो गए।

भगवान ने जिस ग्वाल बाल के जो गाय-बछड़े थे उन्हें उसी ग्वाल बाल के रूप से अलग-अलग ले जाकर उसके घर में घुसा दिया। ग्वाल बालों की माताएँ बाँसुरी की तान सुनते ही जल्दी से दौड़ आईं। ग्वाल बाल बने हुए परब्रह्म श्री कृष्ण को अपने बच्चे समझकर हाथों में उठाकर अपने हृदय से लगा लिया। इस प्रकार प्रतिदिन सन्ध्या समय भगवान श्री कृष्ण उन ग्वाल बालों के रूप में वन से लौट आते और अपनी बाल सुलभ लीलाओं से माताओं को आनन्दित करते। वे माताएँ उन्हें उबटन लगातीं, नहलातीं, चन्दन का लेप करतीं। दूध पिलाकर लाड़ प्यार करतीं। इस तरह अन्तर्यामी श्री

कृष्ण गाय-बछड़े और ग्वाल बालों के बहाने, गोपाल बनकर अपने बालक रूप में वत्स रूप का पालन करते हुए एक वर्ष तक वन में क्रीड़ा करते रहे।

जब एक वर्ष पूरा होने में पाँच दिन शेष थे, तब एक दिन भगवान श्री कृष्ण बलराम जी के साथ गाय-बछडों को चराने वन में गए। उस समय गाय-बछड़े गोवर्धन की चोटी पर घास चर रहे थे। वहाँ से उन्होंने ब्रज के पास ही घास चरते हुए बहुत दूर अपने गाय बछड़ों को देखा। बछड़ों को देखते ही गौओं का वात्सल्य प्रेम उमड़ आया। वे दौड़कर उन बछड़ों के पास आईं। वे बड़े चाव से बछड़ों के अंगों को चाटने लगीं। उन्होंने बछड़ों के साथ बालकों को भी देखा। बलराम जी ने पूछा— ये मायाजाल कहाँ से आ गया? तब भगवान श्री कृष्ण ने कहा कि यह सब करतूत ब्रह्माजी की है।

तब तक ब्रह्माजी ब्रह्मलोक से ब्रज में लौट आए। वे विचार करने लगे गोकुल में जितने भी ग्वाल बाल और गाय बछड़े थे वे सब तो मेरी मायामयी शैय्या पर सो रहे हैं। ये उतने ही संख्या में दूसरे बालक और बछड़े कहाँ से आ गए तथा भगवान के साथ एक वर्ष से खेल रहे हैं। इन दोनों में कौन से पहले और कौन से पीछे बना लिए गए? ब्रह्माजी जिन भगवान श्री कृष्ण को अपनी माया से मोहित करने चले थे, किन्तु उनको मोहित करना तो दूर रहा था, वे अजन्म होने पर भी अपनी माया में अपने आप मोहित हो गए।

ब्रह्माजी विचार कर ही रहे थे कि उसी क्षण सभी

ग्वाल बाल और गाय-बछड़े श्री कृष्ण रूप में दिखाई देने लगे। सब के सब चतुर्भुज रूप में दिखाई देने लगे। इस प्रकार ब्रह्माजी ने सबको परब्रह्म परमात्मा श्री कृष्ण के ही स्वरूप में देखा। वे भगवान के तेज से निस्तेज होकर मौन हो गए। उस समय ऐसे स्तब्ध होकर खड़े हो गए मानो कि ब्रज के अधिष्ठातृ देवता के पास एक पुतली खड़ी हो। ब्रह्माजी ने भगवान श्री कृष्ण की स्तुति की। ब्रह्माजी ने भगवान की तीन परिक्रमाएँ कीं और उनसे स्वीकृति लेकर अपने धाम को प्रस्थान कर गए।



१३. धेनुकासुर का उद्धार और ग्वाल बालों को कालियानाग के विष से बचाना

श्री शुकदेव जी कहते हैं— परीक्षित! परम सुन्दर वृन्दावन को देखकर भगवान श्री कृष्ण बहुत ही आनन्दित हुए। वे गोवर्धन पर्वत की तराई में, यमुना के तट पर गौओं को चराते हुए लीलाएँ करने लगे। ग्वाल बाल बड़े प्रेम से बोले— यहाँ से थोड़ी दूरी पर एक बहुत बड़ा वन है। वहाँ एक दैत्य रहता है, जिसका नाम धेनुक है। वह गधे के रूप में रहता है। उसी के रूप के अनुसार अनेकों दैत्य उसके साथ रहते हैं।

श्री कृष्ण और बलराम दोनों हँसते हुए उसी वन की ओर चल दिए। बलराम जी ने पेड़ हिलाकर बहुत से फल नीचे गिराए। धेनुक दैत्य ने जब फलों के गिरने

की आवाज़ सुनी तो वह उधर को दौड़ा। उसने आकर अपने पिछले पैरों से उनकी छाती पर दुलत्ती लगाई। बलराम जी ने अपने एक ही हाथ से उसके दोनों पैर पकड़ लिए और उसे घुमाकर ताड़ के पेड़ से दे मारा। उस समय धेनुकासुर के मर जा़ने से उसके साथी आग बबूला हो उठे।

सब मिलकर श्री कृष्ण पर टूट पड़े। जो-जो राक्षस श्री कृष्ण और बलराम के पास आया उसे उन्होंने पकड़ कर वृक्षों पर पटकर मारा। वह वन दैत्यों के मृत शरीरों से पट गया। देवताओं ने श्री कृष्ण और बलराम जी पर फूलों की वर्षा की। सभी ग्वाल बाल निडर होकर ताड़ फल खाने लगे। इस प्रकार श्री कृष्ण ने धेनुकासुर का उद्धर किया।

इसके बाद बलराम जी और श्री कृष्ण ब्रज में लौट आए। बंसी की आवाज़ सुनकर गोपियाँ एक साथ अपने घरों से बाहर निकल आईं। गोपियों ने अपने नेत्रों रूपी भ्रमरों से भगवान श्री कृष्ण चन्द्र के मुखारबिन्द का मकरन्द रसपान कर दिनभर के विरह की जलन को शान्त किया। यशोदा और रोहिणी ने उनके शरीर पर तेल और उबटन मल कर स्नान कराया और आभूषण पहनाकर स्वादिष्ट भोजन कराया।

भगवान श्री कृष्ण एक दिन ग्वाल बालकों के साथ यमुना तट पर गए। उस दिन बलराम जी साथ नहीं गए थे। प्यास लगने पर सबने यमुना जी का जल पीकर अपनी प्यास बुझाई परन्तु सब गौएँ और ग्वाल बाल उस जल को पीकर प्राणहीन होकर यमुना जी के तट

पर ही गिर पड़े। परन्तु भगवान श्री कृष्ण ने अपनी अमृतमयी दृष्टि से सबको जीवित कर दिया। उन सब ग्वाल बालों ने सोचा कि हम सब विषैला पानी पीने से मर चुके थे। परन्तु भगवान श्री कृष्ण ने हमें जीवित कर दिया है।

यमुना जी में कालिया नाग का एक कुण्ड था। उसका जल विष की गर्मी के कारण खौलता रहता था। यहाँ तक कि उसके ऊपर उड़ने वाले पक्षी भी झुलसकर उसमें गिर पड़ते थे। उस कुण्ड में कालिया नाग रहता था। भगवान श्री कृष्ण जी ने अपनी कमर का फेंटा कसा और कदम्ब के पेड़ पर चढ़ गए। वहाँ से ताल ठोककर जल में कूद पड़े। भगवान श्री कृष्ण कालियादह में कूदकर गजराज के समान जल उछालने लगे। कालिया नाग चिढ़कर भगवान श्री कृष्ण के सामने आ गया और श्री कृष्ण को अपने बन्धन में जकड़ लिया। तब वे एक मुहूर्त तक सर्प के बन्धन में रहकर बाहर निकल आए। भगवान श्री कृष्ण ने अपना शरीर फुलाकर खूब मोटा कर लिया। इससे साँप का शरीर टूटने लगा। वह अपना नागपाश छोड़कर अलग खड़ा हो गया और क्रोध में आग बबूला होकर अपना फन ऊँचा करके फुफकारे मारने लगा। अपने वाहन गरुड़ के समान भगवान श्री कृष्ण उसके साथ खेलते हुए पैंतरा बदलने लगे। साँप भी उन पर चोट करने का दाँव देखता हुआ पैंतरा बदलने लगा। पैंतरा बदलते- बदलते सर्प का बल क्षीण हो गया। तब भगवान श्री कृष्ण ने उसके सिर के फनों को

तनिक दबा दिया और उछलकर उस पर सवार हो गए।

वे उसके फनों पर नृत्य करने लगे। उस समय नाग पत्नियाँ घबरा गईं। उन्होंने हाथ जोड़कर स्तुति की— भगवान! हम पर कृपा कीजिए। अब नाग मरने वाला है। हमें हमारा पतिदेव देने की कृपा करें। भगवान ने दया कर उसे छोड़ दिया। श्री कृष्ण जी ने उनसे कहा— अब तुम्हें यहाँ नहीं रहना चाहिए। तुम अपने जाति भाई, पुत्र, पत्नियों के साथ शीघ्र ही समुद्र में चले जाओ। अब गौएँ और मनुष्य यमुना जल का उपयोग करेंगे। मैंने इस कालिया दह में क्रीड़ा की है। इसलिए जो पुरुष इसमें स्नान करके जल से देवता और अपने पितरों को तर्पण करेगा एवं उपवास करके मेरा स्मरण करता हुआ मेरी पूजा करेगा वह सब पापों से मुक्त हो जाएगा।

कालिया नाग ने भगवान की पूजा की और परिक्रमा करके रमणक द्वीप जो समुद्र में सर्पों के रहने का स्थान है, वहाँ अपने कुटुम्ब सहित चला गया। अब यमुना जी का जल अमृत के समान पवित्र हो गया। नन्द बाबा और गोप बहुत प्रसन्न हुए।



१४. भगवान का ब्रजवासियों को दावानल से बचाना

भगवान श्री कृष्ण दिव्य माला, गन्ध, वस्त्र, महामूल्य मणि और सुवर्णमय आभूषणों से विभूषित हो

उस कुण्ड से बाहर निकले। उनको देखकर सब के सब ब्रजवासी इस प्रकार उठ कर खड़े हो गए जैसे प्राणों को पाकर इन्द्रियाँ सचेत हो जाती हैं। सभी गोपों का हृदय प्रफुल्लित हो गया। यशोदा रानी, रोहिणी, नन्दबाबा, गोपी और गोप, सभी श्री कृष्ण को पाकर सचेत हो गए।

ब्रजवासी और गौएँ सब बहुत ही थक गए थे। ऊपर से भूख भी सता रही थी। इसलिए उस रात वे ब्रज में न जाकर यमुना के तट पर ही सो गए। आधी रात को जंगल में आग लग गई। उस आग ने सोए हुए ब्रजवासियों को चारों ओर से घेर लिया और उन्हें जलाने लगी। इससे ब्रजवासी घबराकर उठ खड़े हुए और लीलाधारी भगवान श्री कृष्ण की शरण में गए और कहा— देखो, वन की आग तुम्हारे सगे सम्बन्धियों और हम स्वजनों को जलाना चाहती है। हमारी रक्षा करो। यह देख सुनकर भगवान श्री कृष्ण उस भयंकर आग को स्वयं पी गए। इस प्रकार भगवान श्री कृष्ण ने सभी को दावानल से बचा लिया।

१५. प्रलम्बासुर उद्धार

ऐसा सुन्दर वन देखकर श्याम सुन्दर श्री कृष्ण और गौर वर्ण बलराम जी ने उसमें विहार करने की इच्छा व्यक्त की। आगे-आगे गौएँ चलीं, पीछे पीछे ग्वाल बाल और बीच में अपने बड़े भाई के साथ बाँसुरी बजाते हुए

श्री कृष्ण।

जिस समय श्री कृष्ण नाचने लगते, उस समय कुछ ग्वाल बाल गाने लगते और कुछ बाँसुरी तथा सींग बजाने लगते। कुछ हथेली से ही ताल देते तो कुछ वाह-वाह करने लगते। इस प्रकार बलराम और श्याम वृन्दावन की नदी, पर्वत, घाटी, कुँज, वन और सरोवरों में वे सभी खेल खेलते जो साधारण बच्चे संसार में खेला करते हैं।

एक दिन जब बलराम और श्री कृष्ण ग्वाल बालों के साथ उस वन में गौएँ चरा रहे थे, तब ग्वाल बालों के वेष में प्रलम्ब नाम का एक असुर आया। उसकी इच्छा थी कि मैं श्री कृष्ण और बलराम को हर ले जाऊँ। श्री कृष्ण उसे देखते ही पहचान गए फिर भी उन्होंने उसकी मित्रता का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। श्री कृष्ण मन की मन यह सोच रहे थे कि किस युक्ति से इसका वध करना चाहिए। ग्वाल बालों में सबसे बड़े खिलाड़ी खेलों के आचार्य श्री कृष्ण ही थे। उन्होंने सब ग्वालबालों को बुलाकर कहा— मेरे प्यारे मित्रों! आज हम लोग अपने को उचित रीति से दो दलों में विभक्त कर लें। एक दल के नायक बलराम और दूसरे दल के नायक श्री कृष्ण बने। फिर उन्होंने निश्चित किया कि जो दल हार जाएगा वह दूसरे दल के व्यक्तियों को पीठ पर लादकर एक निश्चित स्थान तक ले जाएगा। एक बार बलराम के नेतृत्व वाले दल ने बाज़ी मार ली। उस दल में श्रीदामा और वृषभ भी थे।

श्रीकृष्ण ने सुदामा को, भद्रसेन ने वृषभ को और प्रलम्ब दैत्य ने बलराम जी को अपनी पीठ पर चढ़ाया। प्रलम्ब बलराम जी को निश्चित स्थान पर न उतार कर आगे ले गया। वह आकाश मार्ग से कहीं ले जाने लगा। तब बलराम जी ने उसके सिर पर एक कसकर घूंसा मारा। उसका सिर चकनाचूर हो गया। वह प्राणहीन होकर पृथ्वी पर लुढ़क गया। इस प्रकार असुर प्रलम्बासुर का उद्धार हो गया। देवताओं ने श्री कृष्ण व बलराम जी पर फूलों की वर्षा की।



१६. चीर हरण

जब हेमन्त ऋतु आई तो उसके पहले ही महीने से अर्थात् मार्गशीर्ष में नन्दबाबा के ब्रज की कुमरियाँ कात्यायनी देवी की पूजा और व्रत करने लगीं। वे कहतीं— हे कात्यायनी! हे महामाया! हे महायोगिनी! हे सबकी एक मात्र स्वामिनी! आप नन्द नन्दन श्री कृष्ण को हमारा पति बना दीजिए। हम आपके चरणों मे नमस्कार करती हैं। वे प्रतिदिन उषाकाल में ही एक दूसरी सखी को बुला लेती और परस्पर हाथ में हाथ डाल कर ऊँचे स्वर से भगवान श्री कृष्ण की लीलाओं तथा नामों का गान करती हुईं यमुना जल में स्नान करने के लिए जातीं।

एक दिन सब कुमारियों ने प्रतिदिन की तरह यमुना

जी के तट पर जाकर अपने-अपने कपड़े उतार दिए और भगवन श्री कृष्ण के गुणगान करती हुई जल क्रीड़ा करने लगीं। श्री कृष्ण उनका अभिप्राय जानकर अपने सखा ग्वाल बालों के साथ उन कुमारियों की साधना सफल करने के लिए यमुना तट पर पहुँच गए। श्री कृष्ण ने उन गोपियों के सारे वस्त्र उठा लिए और बड़ी फुर्ती से एक कदम्ब के वृक्ष पर चढ़ गए तथा हँसते हुए गोपियो से हँसी की बात कहने लगे— अरी कुमारियों! तुम यहाँ मेरे पास आकर अपने-अपने वस्त्र ले जा सकती हो। तुम लोग व्रत करने के कारण दुबली हो गई हो। तुम्हारी इच्छा हो तो अलग-अलग आकर वस्त्र ले जाओ या सब एक साथ आकर वस्त्र ले जाओ। वे ठण्डे पानी में कण्ठ तक डूबी हुईं थीं और उनका शरीर थर-थर काँप रह था। उन्होंने श्री कृष्ण से कहा— ऐसी अनीति मत करो। हम जानती हैं तुम नन्दबाबा के लाडले हो। हमारे प्यारे हो। देखो हम सर्दी के कारण ठिठुर रही हैं। तुम हमें हमारे वस्त्र दे दो।

भगवान श्री कृष्ण ने गोपियों से कहा— जब तुम अपने को मेरी दासी स्वीकार करती हो तो मेरी आज्ञा का पालन करो और यहाँ आकर अपने-अपने वस्त्र ले लो। भगवान की ऐसी बात सुनकर अपने दोनों हाथों से गुप्त अंगों को ढककर यमुना जी से बाहर निकलीं। उन्हें अपने पास आई देखकर उनके वस्त्र अपने कंधों पर रखकर मुस्कराते हुए बोले— तुमने जो व्रत लिया था उसे अच्छी तरह से निभाया है, परन्तु वस्त्रहीन होकर

तुमने जल में स्नान किया है इससे वरुण देवता और यमुना जी का तुमसे अपराध हुआ है। अतः इस दोष की निवृत्ति के लिए तुम अपने हाथ जोड़कर सिर पर रखो और उन्हें झुककर प्रणाम करो। तद्नन्तर अपने वस्त्र ले जाओ।

भगवान श्री कृष्ण की बात सुनकर उन्हें ज्ञान हुआ कि वास्तव में वस्त्रहीन होकर स्नान करने से हमारे व्रत में त्रुटि उत्पन्न हो गई है। अतः उसकी निर्विघ्न पूर्ति के लिए उन्होंने समस्त कर्मों के साक्षी श्री कृष्ण को नमस्कार किया। उन्हें नमस्कार करने से सारी त्रुटियों और अपराध का मार्जन हो जाता है। जब भगवान श्री कृष्ण ने देखा कि सब की सब गोपियाँ मेरी आज्ञा के अनुसार प्रणाम कर रहीं हैं तो उन्होंने उनके वस्त्र लौटा दिए।

श्री कृष्ण ने उनसे कहा— अब तुम अपने-अपने घर जाओ। तुम्हारी साधना सिद्ध हो गई है। तुम आने वाली शरद ऋतु की रात्रियों में मेरे साथ विवाह करोगी। इसी उद्देश्य से ही तुम लोगों ने यह व्रत और कात्यायनी देवी की पूजा की थी।

१७. यज्ञ पत्नियों पर कृपा

श्री शुकदेव जी कहते हैं कि भगवान श्री कृष्ण और बलराम, ग्वाल बालों के साथ गौएँ चरा रहे थे। तब भूखे ग्वाल बालों ने भगवान श्री कृष्ण से प्रार्थना

की— हमें बहुत ज़ोर से भूख सता रही है। इसे शान्त करने का कोई उपाय बताइए। तब श्री कृष्ण बोले— यहाँ से थोड़े ही दूर पर वेद पाठी ब्राह्मण स्वर्ग की कामना से अंगरिस नाम का यज्ञ कर रहे हैं। तुम यज्ञशाला में चले जाओ। तुम वहाँ जाकर मेरा और बलराम जी का नाम लेकर थोड़ा सा भात एवं भोजन सामग्री ले आओ।

ग्वाल बालों ने वहाँ पहुँच कर पृथ्वी पर गिरकर दण्डवत् प्रणाम किया और बोले— भगवान श्री कृष्ण और बलराम जी की आज्ञा से हम आपके पास आए हैं। हमें भोजन के लिए भात की सामग्री चाहिए। उन ब्राह्मणों ने गोप बालकों की बातों पर ध्यान नहीं दिया। जब उन ब्राह्मणों ने हाँ या ना में कुछ नहीं कहा तो वे लौट आए और उन्होंने श्री कृष्ण और बलराम से वहाँ की सब बात बता दी।

भगवान श्री कृष्ण ने कहा— इस बार तुम उनकी पत्नियों के पास जाओ और उनसे कहना कि बलराम व कृष्ण आए हैं। आप उनके लिए कुछ भोजन प्रदान करें। अबकी बार वे उनके पास जाकर बोले— यहाँ से थोड़ी दूरी पर श्री कृष्ण आए हुए हैं। उनके एवं गोप बालकों के लिए कुछ भोजन दे दीजिए।

श्री कृष्ण के आने की बात सुनकर उन्होंने चारों प्रकार की सामग्री लेकर तथा भाई बन्धु, पति, पुत्रों के रोकने पर भी नहीं रुकीं और अपने प्रियतम भगवान श्री कृष्ण से मिलने के लिए चल दीं।

वहाँ पहुँचने पर भगवान श्री कृष्ण ने कहा— महाभाग्यवति देवियों! तुम्हारा स्वागत है। आओ बैठो। तुम लोग हमारे दर्शन की इच्छा से यहाँ आई हो। मैं तुम्हारे प्रेम का अभिनन्दन करता हूँ। अब तुम लोग मेरे दर्शन कर चुकी हो। अतः अब अपनी यज्ञशाला को लौट जाओ। क्योंकि तुम्हारे पति तुम्हारे साथ मिलकर ही अपना यज्ञ पूर्ण कर सकेंगे। तुम अपना मन मुझ में लगा दो। तुम्हें बहुत जल्दी ही मेरी प्राप्ति हो जाएगी।

जब भगवान श्री कृष्ण ने इस प्रकार उन्हें समझाया तो वे ब्राह्मण पत्नियाँ यज्ञशाला में लौट गईं। उन ब्राह्मणों ने श्री कृष्ण का तिरस्कार किया था। अतः उन्हें अपने अपराध की स्मृति से बड़ा पश्चाताप हुआ और उनके हृदय में श्री कृष्ण बलराम के दर्शनों की तीव्र इच्छा हुई परन्तु कंस के डर से उनका दर्शन करने न जा सके।



१८. इन्द्र यज्ञ निवारण और गोवर्धन धारण, श्री कृष्ण का अभिषेक

श्री शुकदेव जी कहते हैं— भगवान श्री कृष्ण बलराम जी के साथ वृन्दावन में तरह-तरह की लीलाएँ कर रहे थे। उन्होनें एक दिन देखा कि सब गोप इन्द्र यज्ञ की तैयारी कर रहे हैं। श्री कृष्ण ने नन्दबाबा से पूछा— सब लोग किस चीज़ की तैयारी कर रहे हैं? नन्द बाबा बोले— बेटा! भगवान इन्द्र वर्षा करने वाले

मेघों के स्वामी हैं। ये मेघ उन्हीं के रूप हैं। वे सब प्राणियों को तृप्त करने वाले और जीवन दान देने वाले जल को बरसाते हैं। हम और अन्य व्यक्ति भी उन्हीं मेघों के स्वामी भगवान इन्द्र की यज्ञ के द्वार पूजा करते हैं।

भगवान श्री कृष्ण ने कहा— पिताजी! इसमें भला इन्द्र का क्या लेना देना है? वह भला क्या कर सकता है? न तो हमारे पास किसी देश का राज्य है। हमारे पास तो गाँव या घर भी नहीं हैं। हम तो वनवासी हैं। वन और पहाड़ ही हमारे घर हैं। इसलिए हम लोगों को गौओं, ब्राह्मणों और गिरिराज का भजन करने की तैयारी करनी चाहिए। इन्द्र यज्ञ के लिए जो सामग्री है उस से मेरे द्वारा बताए यज्ञ का अनुष्ठान होने दें। अनेकों प्रकार के पकवान— खीर, पूरी, हलवा, पुआ आदि बनवाया जाए। ब्रज का समस्त दूध एकत्र करा जाए। इसके बाद गोवर्धन को दूध से स्नान कराकर उनको सब पकवानों का भोग लगाया जाए। सभी इसके लिए तैयार हो गए। गोप और गोपियों ने गोवर्धन की परिक्रमा की।

जब इन्द्र को ज्ञात हुआ कि मेरी पूजा बन्द कर दी गई है तब वे नन्दबाबा और गोपों पर बहुत क्रोधित हुए। इन्द्र ने प्रलयकारी मेघों को आज्ञा प्रदान की— ब्रज पर मूसलाधार वर्षा कर इनको पीड़ित करो। मूसलाधार वर्षा के कारण पशु और ग्वाल बाल ठिठुरने लगे। भगवान श्री कृष्ण ने जब देखा कि वर्षा और ओलों की मार से पीड़ित होकर सब बेहोश हो रहे हैं तो वे समझ गए कि यह सब करतूत इन्द्र की है। इस पर भगवान श्री कृष्ण

ने अपनी योग माया को बुलाया और उसके द्वारा ब्रज की रक्षा की।

भगवान ने सोचा इन्द्र को उसकी करतूत का जबाव देना चाहिए। भगवान ने खेल ही खेल में एक ही हाथ से गिरिराज पर्वत को उखाड़ कर अपने हाथ पर धारण कर लिया। इसके बाद उन्होंने गोपों से कहा— तुम सब लोग अपनी गौओं और समस्त सामग्री के साथ इस पर्वत के गढ्ढों में आकर बैठ जाओ। वे सात दिन तक लगातार उस पर्वत को धारण किए रहे। सात वर्ष के बालक श्री कृष्ण की योगमाया को देखकर इन्द्र के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। अपना संकल्प पूरा न होने के कारण उसका सारा घमण्ड चूर-चूर हो गया। वे भौचक्के से रह गए। इसके बाद इन्द्र ने मेघों को वर्षा करने से रोक दिया। जब गोवर्द्धनधारी श्री कृष्ण ने देखा कि भयंकर आँधी और घनघोर वर्षा बन्द हो गई है और सूर्य दिखाई देने लगा तो गोपों से कहा— अब तुम निडर होकर अपनी स्त्रियों, गोधन तथा बच्चों सहित बाहर निकल आओ।

भगवान श्री कृष्ण ने सब प्राणियों के देखते-देखते गिरिराज पर्वत को पूर्ववत उसके स्थान पर रख दिया। पर्वत को रखते ही जनसमुदाय उनके पास उमड़ आया। कोई उन्हें चूमने लगा कोई हृदय से लगाने लगा। सबने उनका सत्कार किया। स्वर्ग में देवता लोग शंख और नौबत बजाने लगे एवं फूलों की वर्षा की। परम तेजस्वी भगवान श्री कृष्ण का प्रभाव देखकर इन्द्र का घमण्ड

चूर-चूर हो गया। इन्द्र ने भगवान की स्तुति की।

श्री शुकदेव जी कहते हैं कि भगवान श्री कृष्ण से कहकर कामधेनु ने अपने दूध से और देवताओं की प्रेरणा से देवराज इन्द्र ने एरावत की सूँड के द्वारा लाए हुए आकाश गंगा के जल से देवर्षियों के साथ भगवान श्री कृष्ण का अभिषेक किया और उन्हें गोविन्द नाम से सम्बोधित किया। अब भी गोवर्धन की पूजा होती आ रही है। इन्द्र यज्ञ की पूजा बंद कर दी गई। इसके बाद भगवान श्री कृष्ण ने ब्रज की यात्रा की। उनकी बगल में बलराम जी चल रहे थे और उनके प्रेमी ग्वाल बाल उनकी सेवा कर रहे थे। गोपियाँ भी उनकी लीलाओं का वर्णन करती हुईं आनन्दपूर्वक ब्रज में लौट आईं।



१९. वरुण लोक से नन्द जी को छुड़ाकर लाना

श्री शुकदेव जी कहते हैं— परीक्षित! नन्दबाबा ने कार्तिक शुक्ल एकादशी का व्रत किया और भगवान की पूजा की तथा उसी दिन रात में द्वादशी लगने पर स्नान करने के लिए यमुना के जल में प्रवेश किया। नन्द बाबा को यह ज्ञात नहीं था कि यह असुरों की बेला है। इस कारण वे रात के समय ही यमुना जी ने प्रवेश कर गए। उनको वरुण के एक सेवक असुर ने पकड़ लिया और अपने स्वामी वरुण के पास ले गया।

स्नान करने के पश्चात् नन्दबाबा के न लौटने पर घर में कोहराम मच गया। श्री कृष्ण को जब यह पता चला कि पिताश्री को वरुण का सेवक ले गया है तो वे वरुण के पास गए। भगवान के दर्शन से वरुण का रोम-रोम आनन्द से खिल उठा। उसने भगवान को प्रणाम कर कहा— भूल से सेवक नन्दबाबा को ले आया। आप कृपा कर उसका अपराध क्षमा करें। आप इनको ले जाइए। लोकपाल वरुण ने स्तुति करके भगवान को प्रसन्न किया। फिर भगवान श्री कृष्ण अपने पिताश्री नन्दबाबा को लेकर ब्रज में लौट आए।

नन्दबाबा ने वरुण लोक में लोकपाल के इन्द्रियातीत ऐश्वर्य और सुख सम्पत्ति को देखा तथा यह भी देखा कि वहाँ के निवासी उनके पुत्र श्री कृष्ण के चरणों में झुक-झुक कर प्रणाम कर रहे हैं। उन्हें बड़ा विस्मय हुआ। उन्होंने ब्रज में आकर अपने जाति भाइयों को सब बातें बताईं।

जिस जलाशय में अक्रूर जी को भगवान ने अपना स्वरूप दिखाया था, उसी जलाशय में भगवान गोपों को ले गए। वहाँ उन लोगों ने उसमें डुबकी लगाई। वे ब्रह्महृद में प्रवेश कर गए। तब भगवान ने उनमें से उन्हें निकालकर अपने परमधाम के दर्शन कराए। उस दिव्य भगवत्स्वरूप लोक को देखकर नन्द आदि गोप परमानन्द में मग्न हो गए। वहाँ उन्होंने देखा कि सारे मूर्तिमान होकर भगवान श्री कृष्ण की स्तुति कर रहे हैं। यह देखकर वे सब विस्मत रह गए और प्रभु परमेश्वर की सराहना करने लगे।

२०. रास लीला आरम्भ

श्री शुकदेव जी कहते हैं कि श्री कृष्ण ने अपनी योगमाया के द्वारा रासक्रीड़ा करने का संकल्प किया। भगवान ने अपनी बाँसुरी पर ब्रज सुन्दरियों के मन को हरण करने वाली कामबीज मधुर तान छेड़ी। बंसी की ध्वनि सुनते ही उनकी विचित्र गति हो गई। जो गोपियाँ दूध दुह रहीं थीं, दूध गरम कर रहीं थीं, वे घर का काम छोड़कर चल दीं। पिता और पतियों ने, भाई और जाति बन्धुओं ने उन्हें रोका, परन्तु वे इतनी मोहित हो चुकीं थीं कि उनके रोकने पर भी न रुकीं। वे रुकतीं कैसे? भगवान श्री कृष्ण ने उनके प्राण, मन और आत्मा सब कुछ अपहरण कर लिया था।

भगवान श्री कृष्ण ने उनसे कहा— महाभाग्यवती देवियों! तुम्हारा स्वागत है। बतलाओ, तुम्हें प्रसन्न करने के लिए मैं क्या करूँ? तुम सब तुरन्त ब्रज में लौट जाओ। तुम्हें न देखकर तुम्हारे माँ-बाप, पति-पुत्र, भाई-बन्धु, ढूँढ रहे होंगे। घर के नन्हें-नन्हें बच्चे और गाँव के बछड़े रम्भा रहे हैं। तुम उन्हें दूध पिलाओ और गौएँ दुहो। स्त्रियों का परम धर्म यही है कि वे पति और भाई-बन्धुओं की निष्कपट भाव से सेवा करें। किसी भी तरह से पति का परित्याग न करें। भगवान श्री कृष्ण का यह अप्रिय भाषण सुनकर गोपियाँ उदास और खिन्न हो गईं। सब गोपियों ने कहा— आप घट-घट के स्वामी हैं। हमारे हृदय की बात आप जानते हैं। आपको इस

प्रकार के निष्ठुरता भरे वचन नहीं कहने चाहिएँ। हम सब कुछ छोड़कर केवल तुम्हारे ही चरणों में प्रेम करती हैं। हमारा परित्याग मत करो। गोपियों की व्याकुलता से भरी वाणी सुनकर भगवान श्री कृष्ण का हृदय प्रेम से भर गया। उन्होंने हँसकर उनके साथ क्रीड़ा करनी प्रारम्भ कर दी। भगवान की प्रेम भरी चितवन से और उनके दर्शन से गोपियों का मुख कमल खिल गया।

भगवान श्री कृष्ण ने गोपियों के साथ यमुना जी के तट पर क्रीड़ाएँ कीं। आलिंगन करना, हाथ दबाना, उनकी चोटी, जांघ और स्तन आदि को स्पर्श करना, विनोद करना, नखक्षत करना, विनोद पूर्ण चितवन से देखना और मुस्कराना इन क्रियाओं के द्वारा गोपियों को क्रीड़ा द्वारा आनन्दित करने लगे। तब वहीं भगवान श्री कृष्ण उनके बीच में से अन्तर्धान हो गए।



२१. श्री कृष्ण के विरह में गोपियों की दशा

श्री शुकदेव जी कहते हैं कि प्रेम की मतवाली गोपियाँ श्री कृष्णमयी हो गई। अपने प्रियतम श्री कृष्ण की चाल-ढाल, हास-विलास और चितवन बोलन आदि में श्री कृष्ण की प्यारी गोपियाँ उनके समान बन गईं। वे अपने को कहती हैं कि मैं श्री कृष्ण हूँ और आपस में वैसी ही लीलाएँ करके अपने को सन्तुष्ट करने लगीं।

गोपियों ने वृक्षों के पास जाकर पूछा— नन्द-नन्दन श्याम सुन्दर हमारा चितवन चुराकर चले गए हैं। क्या तुम लोगों ने उन्हें देखा है? श्री कृष्ण के बिना हमारा जीवन व्यर्थ है। हमें उन्हें पाने का रास्ता बता दो। अन्त में वे भगवान की विभिन्न लीलाओं का अनुसरण करने लगीं। एक पूतना बन गई तो दूसरी श्री कृष्ण बनकर उसका स्तनपान करने लगी। कोई छकड़ा बन गई तो किसी ने बाल कृष्ण बनकर रोते हुए उसे पैर की ठोकर मारकर उलट दिया। कोई सखी बाल कृष्ण बनकर बैठ गई तो कोई तृणावर्त दैत्य का रूप धारण करके उसे हर ले गई। जैसे श्री कृष्ण वन में करते थे उसी प्रकार एक गोपी बाँसुरी बजा-बजाकर आपस में क्रीड़ाएँ करती। भगवान को ढूँढती हुई वे आगे बढ़ीं। उन्हें श्री कृष्ण के चरण चिन्हों के साथ किसी दूसरी युवती के चरण चिन्ह दिखाई दिए। वे आपस में कहने लगीं— श्याम सुन्दर के कंधे पर हाथ रखकर चलने वाली युवती के ये चरण चिन्ह हैं। गोपियों को अपने शरीर की सुध नहीं थी। वे कृष्ण लीलाओं का गान कर रहीं थीं।

श्री कृष्ण की भावना में डूबी हुई गोपियाँ यमुना जी के पवित्र तट पर लौट आईं। वे एक साथ मिलकर भगवान श्री कृष्ण के गुणों का गान करने लगीं— हमारे प्यारे मित्र, हमसे रुठा मत करो, हमसे प्रेम करो। हम तो तुम्हारी दासी हैं, तुम्हारे चरणों पर न्यौछावर हैं। हम अबलाओं को अपना परम सुन्दर साँवला मुख कमल दिखाओ। हमारा हृदय आपके विरह रूपी आग से जल

रहा है। आप अपने चरणों को हमारे वक्ष स्थल पर रखकर ज्वाला को शान्त कर दो। हम आपकी सेवा करने को प्रस्तुत हैं।

गोपियाँ कहती हैं— हे प्यारे श्याम सुन्दर! हम अपने पति, पुत्र, भाई, बन्धु, और परिवार का त्याग कर उनकी इच्छा और आज्ञा का उल्लंघन करके आपके पास आई हैं। भगवान के विरह में गोपियाँ फूट-फूट कर रोने लगीं।

ठीक उसी समय उनके बीचों बीच विरह में भगवान श्री कृष्ण प्रकट हो गए। श्री कृष्ण को आया देखकर गोपियों के नेत्र प्रेम और आनन्द से खिल उठे। एक गोपी ने श्री कृष्ण के कर कमलों को अपने दोनों हाथ में ले लिया। दूसरी गोपी ने उनके चरण कमलों को वक्ष स्थल पर रख लिया। तीसरी गोपी अपने नयनों से मुख कमल का मकरन्द पान करने लगी। अलग-अलग गोपियों ने अपनी-अपनी क्रीड़ाएँ करके अपने को सन्तुष्ट किया। सभी गोपियों को भगवान के दर्शन प्राप्त होने से उनकी विरह पीड़ा दूर हो गई। सभी उल्लास से भर गईं।

इसके बाद भगवान श्री कृष्ण ने उन ब्रज की गोपियों को साथ लेकर यमुना के मुलिन में प्रवेश किया। सर्वशक्तिमान भगवान यमुना जी की रेती में गोपियों की ओढ़नी बिछाकर उस पर बैठ गए। भगवान श्री कृष्ण गोपियों के अलौकिक सौन्दर्य के द्वारा उनके प्रेम और आकाँक्षा को उत्साहित कर रहे थे। किसी गोपी ने उनके चरणों को अपनी गोद में रख लिया। भगवान श्री

कृष्ण ने कहा— मेरी प्रिय सखियों! जो प्रेम करने पर प्रेम करते हैं, उनका सारा प्रयत्न स्वार्थ को लेकर होता है। ले.-देन मात्र होता है। जो व्यक्ति प्रेम न करने वाले से प्रेम करते हैं उनका हृदय सौहार्दपूर्ण होता है तथा सत्य एवं पूर्ण धर्म भी यही है।

श्री कृष्ण ने कहा— गोपियों! इसमें संदेह नहीं कि तुम लोगों ने मेरे लिए लोक मर्यादा, सगे-सम्बन्धियों को भी छोड़ दिया। तुम लोग मेरे प्रेम में दोष मत ढूँढो। मुझसे तुम्हारा यह मिलन आत्मिक संयोग सर्वथा निर्मल और सर्वथा निर्दोष है। मैं जन्म-जन्म के लिए तुम्हारा ऋणी हूँ।



२२. महारास

श्री शुकदेव जी कहते हैं कि भगवान श्री कृष्ण की प्रेयसी और सेविका गोपियाँ एक-दूसरे की बाँह में बाँह डालकर खड़ीं थीं। भगवान श्री कृष्ण ने प्रेम भरी अपनी रासक्रीड़ा शुरू की। भगवान श्री कृष्ण दो-दो गोपियों के बीच में प्रकट हो गए। उनके गले में हाथ डाल दिया। इस तरह सहस्त्र-सहस्त्र गोपियों के साथ श्री कृष्ण ने दिव्य रासोत्सव प्रारम्भ किया। रासमण्डल में सभी गोपियाँ अपने प्रियतम श्री कृष्ण के साथ नृत्य करने लगीं। सभी देवता अपनी-अपनी पत्नियों के साथ वहाँ पहुँच गए। स्वर्ग की दिव्य दुन्दुभियाँ बजने लगीं

और पुष्पों की वर्षा होने लगी। नृत्य के वक्त गोपियाँ ठुमुक-ठुमुक कर कभी अपने पैर आगे बढ़ातीं तो कभी पीछे हटातीं तो कभी अपने हाथ उठा-उठा कर भाव जतातीं। नाचते हुए उनकी कमर लचक जाती थी। झुकने, चलने से उनके स्तन हिल रहे थे तथा वस्त्र उड़ रहे थे। इस तरह नटवर नन्दलाल की परम प्यारी गोपियाँ उनके साथ गा-गाकर नाच रहीं थीं। एक गोपी ने अपने कपोलों को भगवान श्री कृष्ण के कपोलों से सटा दिया। भगवान ने अपना चबाया हुआ पान उसके मुँह में डाल दिया। श्री कृष्ण कभी उन्हें हृदय से लगा लेते तो कभी हाथ से उनके अंग स्पर्श करते। इस प्रकार ब्रज सुन्दरियों के साथ श्री कृष्ण ने क्रीड़ा और विहार किया।

सभी ने अपनी थकान को मिटाने के लिए यमुना नदी में स्नान किया। श्री कृष्ण जी ने भी गोपियों के साथ क्रीड़ा करने के लिए जल में प्रवेश किया। यमुना में गोपियों ने प्रेम भरी चितवन से भगवान की ओर देख-देखकर हँसते हुए उन पर जल की बौछार करने लगीं। इसके बाद वे यमुना नदी के तट के उपवन में गए। उसमें श्री कृष्ण भगवान ने अपनी प्रेयसी गोपियों के साथ यमुना जी के उपवन में विहार किया। ब्रजवासी गोपों ने उनकी योगमाया से मोहित होकर ऐसा समझा कि हमारी पत्नियाँ हमारे पास ही हैं। भगवान की आज्ञा से वे सब अपने-अपने घर चली गईं। भगवान का यह रास अति पवित्र और आकर्षित था।

२३. सुदर्शन और शंख चूड़ का उद्धार

श्री शुकदेव जी कहते है कि एक बार नन्दबाबा और गोपों ने शिवरात्रि के अवसर पर गाड़ियों में बैलों को जोतकर अम्बिका वन की यात्रा की। उन लोगों ने सरस्वती नदी में स्नान किया और भगवान शंकर तथा भगवती अम्बिका का पूजन किया। रात होने पर वे नदी के तट पर ही बेखटके सो गए।

उस वन में एक बहुत बड़ा अजगर रह रहा था। उस दिन वह भूखा था। दैव वश वह उधर ही आ निकला और सोते हुए नन्दबाबा को पकड़ लिया। नन्दबाबा चिल्लाने लगे। उनके चिल्लाने पर भगवान श्री कृष्ण ने अपने चरणों से अजगर को छू दिया। पैर से छूते ही अजगर ने नन्दबाबा को छोड़ दिया और अजगर का शरीर छोड़कर भगवान श्री कृष्ण के सामने मनुष्य के रूप में हाथ जोड़कर खड़ा हो गया। उन्होंने उससे पूछा— तुम कौन हो ?

इस पर अजगर के शरीर से प्रकट हुआ मनुष्य बोला— मैं पहले एक विद्याधर था। मेरा नाम सुदर्शन था। एक दिन मैंने एक कुरूप ऋषि को देखा जिसका नाम अंगिरा था। मैं उनकी हँसी उड़ाने लगा। मेरे इस अपराध से क्रोधित होकर उन्होंने मुझे अजगर बन जाने का शाप दे डाला। यह उसी का असर है कि आपके चरण कमलों के स्पर्श से मेरे समस्त अशुभ कर्म नष्ट हो गए। इस प्रकार सुदर्शन का उद्धार हुआ।

एक दिन भगवान श्री कृष्ण और बलराम जी रात्रि के समय गोपियों के साथ विहार कर रहे थे। उसी समय वहाँ शंखचूड़ नाम का एक यक्ष आया। वह कुबेर का अनुचर था। दोनों भाइयों के देखते-देखते वह गोपियों को लेकर उत्तर दिशा की ओर भाग चला। उसी समय दोनों भाई भी उसके पीछे दौड़े। यक्ष ने जब देखा कि काल और मृत्यु के समान दोनों भाई मेरे निकट आ गए हैं तो उसने गोपियों को छोड़ दिया और अपने प्राण बचाने को भागा। श्री कृष्ण भी उसके पीछे दौड़ते गए। वे चाहते थे कि उसके सिर की चूड़ामणि निकाल लें। कुछ ही दूर जाने पर भगवान ने उसे पकड़ लिया और उसके सिर पर कसकर घूंसा मारा तो चूड़ामणि के साथ उसका सिर धड़ से अलग हो गया। श्री कृष्ण ने चूड़ामणि को निकाला और ब्रज में लौट आए। उन्होंने वह मणि बलराम जी को दे दी। इस प्रकार उन्होंने शंखचूड़ का उद्धार किया।



२४. अरिष्टासुर का उद्धार और कंस का श्री अक्रूर जी को ब्रज भेजना

श्री शुकदेव जी कहते हैं कि जिस समय भगवान श्री कृष्ण ब्रज में प्रवेश कर रहे थे और वहाँ आनन्दोत्सव की धूम मची हुई थी उसी समय अरिष्टासुर नाम का एक दैत्य बैल का रूप धारण कर के आया। उस तीखे

सींग वाले बैल को देखकर सभी गोप गोपियाँ भयभीत हो गए। श्री कृष्ण उससे बोले— अरे देख! तुझ जैसे दुरात्मा के बल का घमण्ड चूर-चूर करने वाला हूँ। उन की आवाज़ सुनकर वह तिलमिला उठा और अपने खुरों से धरती को खोदता हुआ श्री कृष्ण की ओर झपटा। भगवान श्री कृष्ण ने अपने दोनों हाथों से उसके सींग पकड़ कर लातें मारकर ज़मीन पर गिरा दिया और अपने पैरों से दबाकर उसका कचूमर निकाल दिया। इस प्रकार उसका वध कर उसका उद्धार कर दिया।

भगवान की लीला बड़ी अद्‌भुत है। महर्षि नारद कंस के पास पहुँचे। उन्होंने उससे कहा— कंस! जो कन्या तुम्हारे हाथ से छूटकर आकाश में चली गई थी वह यशोदा की पुत्री थी और ब्रज में जो इस वक्त हैं वह देवकी के पुत्र श्री कृष्ण हैं। वसुदेव जी तुमसे डर कर उसे यशोदा के पास छोड़ आए थे। इतना बताकर नारद जी चले गए। तब कंस ने केशी नायक दैत्य को बुलाया और कहा— तुम ब्रज में जाकर बलराम और श्री कृष्ण का वध कर डालो। इसके बाद मुष्टिक, चाणूर, शल और तोशल आदि पहलवानों को बुलाकर कंस ने कहा— तुम लोग कुश्ती लड़ने के बहाने कृष्ण और बलराम को मार डालना। दंगल के फाटक पर अपने कुबलयापीड़ हाथी को खड़ा करना और जब वे उधर से निकले तब हाथी द्वारा उन्हें मार डालना।

अब कंस ने युदवंशी अक्रूर जी को बुलवाया और उनसे कहा— भोजवंशी और वृष्णिवंशी यादवों के पास

जाकर वसुदेव के दोनों पुत्रों कृष्ण बलराम को अपने रथ पर बैठाकर यहाँ ले आओ तथा नन्द और गोपों को भी लेते आना। उनसे केवल इतना ही कहना कि वे लोग धनुष यज्ञ के दर्शन और यदुवंशियों की राजधानी मथुरा की शोभा देखने के लिए यहाँ पधारें।



२५. केसी दैत्य तथा व्योमासुर का वध

श्री शुकदेव जी कहते हैं— परीक्षित! कंस ने केसी दैत्य को भेजा था। वह भारी घोड़े के रूप में आया। उसकी हिनहिनाहट से सब डर से काँपने लगे। केसी दैत्य सिंह के समान गरजता हुआ श्री कृष्ण के पास आकर उन्हें ललकारने लगा और उनकी तरफ दुलत्ती झाड़ने लगा। भगवान श्री कृष्ण ने अपने को बचाकर उसकी पिछली दोनों टाँगे पकड़कर आकाश की ओर घुमाकर चार सौ हाथ दूर फेंक दिया। वह तिलमिला गया और फिर अपना मुँह फाड़कर उन पर झपटा। भगवान ने अपना बाँया हाथ उसके मुँह में घुसेड़ दिया। भगवान का हाथ उसके मुँह में बढ़ने लगा। इससे उसका दम घुट गया और ज़मीन पर गिरकर मर गया। इस प्रकार केसी को मारकर उसका उद्धार किया।

ब्रजवासी और ग्वाल बाल अपने-अपने कार्यों में व्यस्त हो गए। एक बार ग्वाल बाल गायों को पहाड़ की चोटी पर चरा रहे थे तथा आँख-मिचौली का खेल

रहे थे। उसी समय ग्वाले का वेषधर कर व्योमासुर वहाँ पहुँच गया। वह आचार्य मयासुर का पुत्र था। वह बहुत ही मायावी था। वह खेल ही खेल में बालकों को चुराकर पहाड़ की गुफा में छिपा आता। भगवान श्री कृष्ण ने देखा कि ग्वाल बाल संख्या में कम होते जा रहे हैं। वे व्योमासुर दैत्य की करतूत को समझ गए।

जब वह ग्वालों को ले जा रहा था तो उन्होंने पीछे से उसे दबोच लिया। व्योमासुर दैत्य बहुत ही बलशाली था। उसने अपने शरीर को पहाड़ के समान कर लिया परन्तु वह अपने को श्री कृष्ण की पकड़ से न छुड़ा सका। भगवान श्री कृष्ण ने अपने दोनों हाथों से जकड़कर उसे पृथ्वी पर गिरा दिया और उसका गला दबाकर उसे मृत्यु के मुँह में पहुँचा दिया।

भगवान ने गुफा के द्वार पर लगी चट्टान को तोड़कर ग्वाल बालों को बाहर निकाला। देवता और ग्वाल बालों ने भगवान श्री कृष्ण की स्तुति की। भगवान ब्रज में ग्वाल बालों के साथ चले आए।



३६. अक्रूर जी की ब्रजयात्रा

अक्रूर जी प्रातः काल होते ही रथ पर सवार होकर नन्दबाबा के गोकुल की ओर चल दिए। वे सोचने लगे मैंने ऐसा कौन-सा शुभ कार्य किया है? ऐसी कौन सी श्रेष्ठ तपस्या की है या किसी सत्पात्र को ऐसा कौन सा

महत्त्वपूर्ण दान किया है जिसके कारण मैं आज भगवान श्री कृष्ण के दर्शन करूँगा।

ब्रज में पहुँचकर अक्रूर जी ने बलराम श्री कृष्ण को गाय दुहने के स्थान पर विराजमान देखा। उन्हें देखते ही अक्रूर जी प्रेमावेग से अधीर होकर रथ से कूद पड़े और भगवान श्री कृष्ण तथा बलराम के चरणों में साष्टाँग लेट गए। श्री कृष्ण ने उन्हें अपने गले से लगा लिया और दोनों भाइयों ने उनका एक-एक हाथ पकड़ कर उन्हें अपने घर ले गए।

घर पर उनका बड़ा स्वागत सत्कार किया तथा कुशल-मंगल पूछकर उन्हें श्रेष्ठ आसन पर बैठाया। उनको प्रेमपूर्वक भोजन कराया। अक्रूर जी की रास्ते की सब थकावट दूर हो गई। उन्होंने कंस के निमंत्रण की बात कही।



२७. श्री कृष्ण बलराम का मथुरागमन

श्री शुकदेव जी कहते है कि नन्दबाबा आदि गोपों ने दूध, दही, मक्खन, घी आदि के मटके तथा भेंट की अनेक सामग्री लेकर उन्हें छकड़ों में रखकर मथुरा को चल दिए। उनके जाने की बात सुनकर गोपियों को बड़ा दुःख हुआ। अब वे अपने प्रियतम श्यामसुन्दर से कुछ सन्देश पाने की इच्छा से वहाँ जाकर खड़ी हो गईं। भगवान श्री कृष्ण ने देखा कि मेरे मथुरा जाने से गोपियों

के हृदय में बड़ी जलन हो रही है। तब उन्होंने अपने दूत के द्वारा प्रेम संदेश भिजवाया कि मैं अवश्य लौटकर आऊँगा। इसलिए धीरज धारण करो। यह सूचना भेजकर वे मथुरा को प्रस्थान कर गए।

अक्रूर जी ने दोनों भाइयों को रथ पर बैठाकर उनसे आज्ञा लेकर यमुना में स्नान करने चले गए। जल में डूबकी लगाकर वे गायत्री मंत्र का जाप करने लगे। जल के भीतर अक्रूर जी ने देखा कि बलराम व श्रीकृष्ण दोनों एक साथ बैठे हैं। उनके मन में शंका हुई कि मैं तो दोनों भाईयों को रथ पर बैठाकर आया हूँ तो ये यहाँ जल में कैसे आ गए? जब ये यहाँ हैं तो रथ पर नहीं होने चाहिएँ। ऐसा सोचकर उन्होंने सिर को जल से बाहर निकाल कर देखा तो वे उन्हें रथ पर बैठे दिखाई दिए। भगवान की यह झाँकी देखकर अक्रूर जी का हृदय आनन्द से लबालब भर गया। अक्रूर जी ने भगवान की स्तुति की फिर रथ पर बैठकर चल पड़े। दिन के ढलते-ढलते वे मथुरा में पहुँच गए।

भगवान श्री कृष्ण ने अक्रूर जी का हाथ अपने हाथ में लेकर कहा— चाचा जी! पहले आप अपने घर जाइए। हम लोग यहीं उतर जाते हैं। अक्रूर जी ने कहा— आप दोनों के बिना मैं मथुरा नहीं जा सकता। भगवान श्री कृष्ण ने कहा— मैं दाऊ भैया के साथ आपके घर आऊँगा और पहले यदुवंशियों के द्रोही कंस को मारकर तब अपने सभी सुहृदय स्वजनों का प्रिय होऊँगा। दूसरे दिन बलराम जी और ग्वाल बालों के साथ श्री कृष्ण

मथुरा नगरी को देखने गए। राजमार्ग से मथुरा नगरी में प्रवेश किया। उस समय उन्हें देखने के लिए स्त्रियाँ अपने मकानों की अटारियों पर चढ़ गईं।

मथुरा की स्त्रियाँ भगवान की बाल लीलाएँ सुन चुकीं थीं। इस कारण उन्हें देखने के लिए व्याकुल हो रहीं थीं। भगवान को देखकर सबका हृदय प्रफुल्लित हो गया। उन्होंने उनके ऊपर फूलों की वर्षा की।

इसी समय भगवान श्री कृष्ण ने एक धोबी को जो कपड़े रंगने का भी काम करता था, अपनी ओर आते देखा। भगवान श्री कृष्ण ने उससे धुले हुए उत्तम वस्त्र माँगे। भगवान ने उससे कहा— भाई! तुम हमें ऐसे वस्त्र दो जो हमारे शरीर पर ठीक आ जाएँ। धोबी उनसे बहकी-बहकी बाते करने लगा तो भगवान श्री कृष्ण ने कुपित होकर उसके एक तमाचा जड़ दिया और उसका सिर धड़ से अलग होकर नीचे ज़मीन पर गिर पड़ा। यह देखकर धोबी के अन्य साथी डर कर कपड़े छोड़कर भाग गए।

भगवान श्री कृष्ण और बलराम जी ने मन-पसन्द वस्त्र धारण किए तथा शेष वस्त्रों को ग्वालों ने पहन लिया। भगवान श्री कृष्ण और बलराम कुछ आगे बढ़े, तब उन्हें एक दर्ज़ी मिला। उसने उन रंग-बिरंगे सुन्दर वस्त्रों को उनके शरीर पर ऐसे ढंग से सजा दिया कि वे सब ठीक-ठीक लगने लगे। बदले में भगवान श्री कृष्ण ने उसे मोक्ष प्रदान किया।

इसके बाद भगवान श्री कृष्ण सुदामा माली के घर

गए। दोनों भाइयों को देखकर सुदामा उठ खड़ा हुआ और पृथ्वी पर सिर रखकर उन्हे प्रणाम किया तथा उनके चरण पखार कर फूलों के हार, पान, चन्दन आदि सामग्रियों से विधिपूर्वक पूजा की।



२८. कुब्जा पर कृपा, धनुष भंग और कंस की घबराहट

श्री शुकदेव जी राजा परीक्षित को बताते हैं कि इसके बाद भगवान श्री कृष्ण जब अपनी मण्डली के साथ राजमार्ग पर आगे बढ़े तो उन्हें एक सुन्दर स्त्री दिखाई दी, परन्तु वह शरीर से कुबड़ी थी। इसी से उसका नाम कुब्जा पड़ गया था। वह अपने हाथ में चन्दन का पात्र ले जा रही थी। उन्होंने उससे पूछा— सुन्दरी! तुम कौन हो ? यह चन्दन किसके लिए ले जा रही हो ? हमें सच-सच बता दो। यह उत्तम चन्दन और अंगराज हमें भी दे दो। इस दान से तुम्हारा परम कल्याण होगा। कुब्जा ने चन्दन और अंगराज दोनों भाइयों को देकर कहा— मैं प्रतिदिन इसे कंस महाराज को देने जाती हूँ। आज मैं अपने हाथों से आप दोनों के शरीर पर इसकी मालिश करूँगी। उसने श्री कृष्ण के पीले रंग का और बलराम को लाल रंग का अंगराज लगाया तथा नाभि से ऊपर के भाग में अनुरंजित होकर वे अत्यन्त सुशोभित हुए।

भगवान श्री कृष्ण ने उसे अपने दर्शन का प्रत्यक्ष फल दिखलाने के लिए तीन जगह से टेढ़ी किन्तु सुन्दर मुख वाली कुब्जा को सीधी करने का विचार किया। भगवान श्री कृष्ण ने अपने चरणों से कुब्जा के पैर के दोनों पंजे दबा लिए और हाथ ऊँचा करके अपनी दो अंगुलियों को उसकी टोढ़ी में लगाकर उसके शरीर को तनित ऊँचा किया। उचकाते ही उसके सारे अंग सीधे हो गए। उसने उनके दुपट्टे का छोर पकड़ कर कहा— घर चलो।

भगवान ने कहा— कार्य पूर्ण करने के बाद अवश्य आऊँगा। इसके बाद भगवान श्री कृष्ण पुरवासियों से धनुष यज्ञ का स्थान पूछते हुए रंगशाला में पहुँचे। वहाँ उन्होंने इन्द्रधनुष के समान एक अदभुत धनुष को देखा। भगवान श्री कृष्ण ने रक्षकों के मना करने पर धनुष को अपने बाएँ हाथ से उठाया और उस पर डोरी चढ़ाई और उसे बीचों बीच से दो टुकड़े कर दिए। इस पर धनुष के रक्षकों ने श्री कृष्ण को चारों ओर से घेर लिया। इस पर भगवान ने टूटे धनुष के टुकड़ों से रक्षकों और कंस के सैनिकों को भगा दिया। जब कंस ने सुना कि श्री कृष्ण ने धनुष को तोड़ डाला है तथा रक्षकों एवं सैनिकों का भी संहार कर डाला है तो वह बहुत घबरा गया।



२९. कुवलयापीड़ का उद्धार और अखाड़े में प्रवेश

श्री शुकदेव जी कहते हैं— हे परीक्षित! दरवाज़े पर कुवलयापीड नामक हाथी को खड़ा कर रखा था। उस हाथी ने क्रोध में भरकर भगवान श्री कृष्ण की ओर झपटकर सूँड में लपेट लिया परन्तु वे उसकी सूँड से बाहर सरक आए। एक घूँसा मारकर उसके पैरों के बीच छिप गए।

भगवान उसकी पूँछ पकड़कर उसे घसीटने लगे और उसकी पूँछ पकड़कर चारों तरह घुमाकर पृथ्वी पर पटक दिया। उसके आगे के दोनों दाँत उखाड़ लिए और उन दाँतों से हाथी और महावत को मार डाला। भगवान श्री कृष्ण और बलराम जी ने हाथ में हाथी दाँत को पकड़े हुए अखाड़े में प्रवेश किया। वहाँ चारों तरफ मथुरावासी थे और एक तरफ पहलवान आदि विराजमान थे।



३०. चाणूर, मुष्टिक आदि पहलवानों तथा कंस का उद्धार

चाणूर से श्री कृष्ण और बलराम जी मुष्टिक पहलवान से मल्लयुद्ध करने लगे। वे दाँव-पेंच करते-करते अपने-अपने जोड़ीदार को पकड़कर इधर-उधर, घुमाते हुए ढकेले देते, ज़ोर से जकड़ लेते, लिपट जाते,

उठाकर पटक देते, छूटकर निकल भागते और कभी छोड़कर पीछे हट जाते थे। कभी कोई नीचे गिर जाता तो दूसरा उसे घुटनों और पैरों को दबाकर उठा लेता। हाथों से पकड़कर ऊपर ले जाता। इस प्रकार दाँव पेंच लगाकर आपस में लड़ रहे थे। देखने वाले दर्शक कंस को गालियाँ दे रहे थे कि कहाँ तो कोमल शरीर वाले श्री कृष्ण और बलराम और कहाँ ये बलवान पहलवान के बीच अधर्म युक्त युद्ध करवाया जा रहा है। प्रजाजन यह दृश्य देखकर अत्यन्त व्याकुल हो रहे थे।

भगवान श्री कृष्ण ने चाणूर की दोनों भुजाएँ पकड़कर उसे अंतरिक्ष में बड़े वेग से कई बार घुमाकर धरती पर पटक दिया, जिससे उसके प्राण पखेरू उड़ गए। इसी प्रकार बलराम जी ने मुष्टिक को बड़े ज़ोर का एक घूँसा मारा। घूसा लगने से मुष्टिक प्राणहीन होकर खून की उल्टी करता हुआ पृथ्वी पर धराशायी हो गया। उसी समय भगवान श्री कृष्ण ने अपने पैर की ठोकर से शल का सिर धड़ से अलग कर दिया और तोशल को तिनके की तरह चीरकर दो टुकड़े में बाँट दिया।

उधर बलराम जी ने कूट नामक पहलवान को खेल-खेल में अपने बाएँ हाथ के घूंसे से मार डाला। जब चाणूर, मुष्टिक, कूट, शल और तोशल— ये पाँचों पहलवान मर गए तो शेष पहलवान अपने प्राण बचाने के लिए मैदान छोड़कर भाग गए। भगवान श्री कृष्ण और बलराम जी की इस अदभुत लीला को देखकर

सभी दर्शक उनकी प्रशंसा करने लगे। इससे कंस बहुत चिढ़ गया। इस पर कंस बढ़-चढ़ कर बकवाद करने लगा तो भगवान श्री कृष्ण कुपित होकर फुर्ति से वेगपूर्वक उछलकर उस ऊँचे मंच पर चढ़ गए। कंस ने सिंहासन से उठकर हाथ में ढाल तथा तलवार पकड़ ली। परन्तु भगवान का प्रचण्ड तेज अत्यन्त दुस्सह होता है, जिस प्रकार साँप को गरुड़ पकड़ लेता है उसी प्रकार भगवान श्री कृष्ण ने कंस को पकड़ लिया। कंस का मुकुट भय के मारे पृथ्वी पर गिर पड़ा। भगवान श्री कृष्ण ने कंस के केश पकड़ कर उसे भी ऊँचे मंच से रंग भूमि में गिरा दिया। उसके ऊपर स्वयं भी कूद पड़े। उनके कूदते ही कंस की मृत्यु हो गई। फिर भगवान श्री कृष्ण ने कंस की लाश को घसीटकर सामने रंग मंच पर ला पटका।

कंस के कंक और न्यग्रोध आदि आठ छोटे भाई थे। वे अपने बड़े भाई का बदला लेने के लिए क्रोध में भरकर भगवान श्री कृष्ण और बलराम की ओर दौड़े तो भगवान श्री कृष्ण ने परिध उठाकर उन्हें वैसे ही मार डाला जैसे सिंह जंगली पशुओं को मार डालता है। आकाश में दुन्दुभियाँ बजने लगीं। अप्सराएँ नाचने लगीं। देवता पुष्पों की वर्षा करने लगे। कंस और उसके भाईयों की पत्नियाँ स्वजनों की मृत्यु से विलाप करने लगीं। इस पर भगवान श्री कृष्ण ने रानियों को ढाढस बँधाया। भगवान के हाथ से मृत्यु होने पर कंस का उद्धार हो गया और अंत में भगवान श्री कृष्ण और बलराम जी ने

जेल में जाकर अपने माता-पिता को बँधन से छुड़ाया और सिर से स्पर्श कर उनके चरणों की वन्दना की। वसुदेव जी ने जगदीश्वर समझकर हृदय से लगाया।



३१. श्री कृष्ण बलराम का यज्ञोपवीत और गुरुकुल प्रवेश

भगवान श्रीकृष्ण ने देखा कि माता-पिता को मेरे ऐश्वर्य और भगवान होने का ज्ञान हो गया है तो उन्होंने सोचा कि इससे इन्हें पुत्र स्नेह का सुख नहीं मिल सकेगा। ऐसा सोचकर उन्होंने अपने माता-पिता पर योग माया फैला दी और बोले— हम आपके पुत्र हैं और आप हमारे लिए सर्वदा माता-पिता रहेंगे। दैववश हम लोगों को आपके पास रहने का सौभाग्य नहीं मिला। यदि कोई मनुष्य सौ वर्ष जीकर माता-पिता की सेवा करता रहे तब भी वह माता-पिता के उऋण से ऋण नहीं हो सकता। जो पुत्र सार्मथ्य रहते भी माँ-बाप की सेवा नहीं करता उसके मरने पर यमदूत उसे अपने शरीर का माँस खिलाते हैं। मेरी माँ और मेरे पिता जी आप दोनों हमें क्षमा करें। दुष्ट कंस ने आपको इतने कष्ट दिए परन्तु हम परतंत्र रहने के कारण आपकी कोई सेवा शुश्रुषा न कर सके।

वसुदेव और देवकी ने भगवान श्री कृष्ण की वाणी से मोहित होकर उन्हें अपनी गोद में उठा लिया और

अपने हृदय से लगाकर परमानन्द प्राप्त किया। भगवान श्री कृष्ण ने अपने माता-पिता को सांत्वना देकर अपने नाना जी उग्रसेन को युदवंशियों का राजा बना दिया। राजा ययाति का श्राप होने के कारण 'यदुवंशी राज सिंहासन पर नहीं बैठ सकते, परन्तु मेरी ऐसी ही इच्छा है इसलिए आपको कोई दोष न होगा।

नन्दबाबा ने अधीर होकर दोनों गले से लगाया और नेत्रों में अश्रु भरकर गोपों के साथ ब्रज के लिए प्रस्थान किया। ब्रज में पहुँचकर वसुदेव जी ने अपने पुरोहित गर्गाचार्य को बुलाकर दोनों पुत्रों का यज्ञोपवीत संस्कार करवाया। उन्होंने ब्राह्मणों को विविध प्रकार के वस्त्र और आभूषण तथा बछड़ों वाली गाएँ दीं। सभी गाएँ गले में सोने की माला पहने हुए थीं। श्रीकृष्ण और बलराम जी विधिपूर्वक अध्ययन करने के लिए संदीपनी मुनि के पास गए जो अंवतिपुर (उज्जैन) में रहते थे। उन दोनों भाईयों ने विधिपूर्वक गुरुजी के पास रहकर उपनिषदों सहित सम्पूर्ण वेदों की शिक्षा ग्रहण की। इसके अतिरिक्त मंत्र और देवताओं के ज्ञान के साथ धनुर्वेद, मनुस्मृति आदि धर्म शास्त्र, सिमांसा आदि, न्यायशास्त्र, विग्रह, संधि, यान, आसन, द्वैद और आश्रय-इन छः वेदों से युक्त राजनीति का अध्ययन किया। केवल चौंसठ दिनों में ही दोनों भाइयों ने चौंसठ कलाओं का ज्ञान प्राप्त कर लिया। अध्ययन समाप्त होने पर उन्होंने गुरु से गुरुदक्षिणा माँगने की विनती की।

गुरु संदीपनि ने अपनी पत्नी से सलाह करके गुरु

दक्षिणा में माँग की— प्रभास क्षेत्र में हमारे पुत्र समुद्र में डूबकर मर गए थे। उन्हें लाने की कृपा करें। भगवान श्रीकृष्ण ने गुरु की आज्ञा स्वीकार की और रथ पर सवार होकर प्रभास क्षेत्र में गए। वे समुद्र तट पर क्षण भर बैठे रहे तो अनेक प्रकार की पूजा सामग्री लेकर समुद्र उनके सामने उपस्थित हुआ। भगवान ने समुद्र से कहा— तुम यहाँ अपनी बड़ी-बड़ी तरंगों से हमारे जिस गुरुपुत्र को बहा ले गए थे उसे लाकर हमें शीघ्र दो।

समुद्र ने उत्तर दिया— मेरे जल में पंचजन नामक एक दैत्य असुर शंख के रूप में रहता है। वह उन बालकों को ले गया है। भगवान तुरन्त जल में घुस गए और शंखासुर को मार डाला, परन्तु बालक उसके पेट में नहीं मिले। वहाँ से बलराम के साथ यमराज की पुरी में जाकर शंख बजाया। यमराज ने भगवान का स्वागत किया और पूजा की। श्रीकृष्ण जी ने कहा कि कर्म बन्धन के अनुसार मेरे गुरु पुत्र लाए गए हैं। भगवान का आदेश स्वीकार कर गुरु पुत्र ला दिए। भगवान ने गुरुजी को उनके पुत्र देकर उनसे विदा माँगकर मथुरा लौट आए।



३२. उद्धवजी की ब्रज यात्रा गोपियों से बातचीत

श्री शुकदेव जी कहते हैं कि उद्धवजी वृष्णि वंशियों के प्रधान व्यक्ति थे। वे भगवान श्री कृष्ण के मित्र व

मंत्री भी थे। एक दिन भगवान श्रीकृष्ण ने उद्धव जी से कहा— तुम ब्रज की यात्रा करो। वहाँ मेरे माता-पिता नन्दबाबा और यशोदा मैया हैं। उन्हें आनन्दित करो और गोपियाँ मेरे विरह में बहुत दुःखी हो रही हैं, उन्हें मेरा सन्देश सुनाकर वेदना से मुक्त करो।

जब श्री कृष्ण ने यह बात कही, तब उद्धव जी आदर से अपने स्वामी का सन्देश लेकर रथ पर आरूढ़ हुए और सूर्यास्त के समय नन्दबाबा के ब्रज में पहुँच गए। नन्दबाबा उनसे मिलकर अति प्रसन्न हुए। मानो श्री कृष्ण स्वयं आ गए हों। उद्धव जी श्री कृष्ण का हृदय बड़ा उदार है। उनकी शक्ति अनन्त है। उन्होंने सात दिन तक एक अंगुली से गिरिराज पर्वत को उठाए रखकर हमारी सबकी रक्षा की थी। खेल ही खेल में उन्होंने बड़े-बड़े असुरों का नाश कर दिया था। जिनमें प्रलम्ब, धेनुक, अरिष्ठ, तृणावर्त और बक प्रमुख थे।

उनकी लीलाओं को सुनकर यशोदा रानी और नन्दबाबा बड़े प्रसन्न हो रहे थे। उद्धव और नन्दबाबा इसी प्रकार आपस में बात करते रहे और वह रात व्यतीत हो गई। कुछ रात्रि शेष रहने पर गोपियाँ उठीं और दीपक जलाकर उन्हें घर की देहरियों पर रखकर वासुदेव का पूजन किया। भगवान श्री कृष्ण के चरित्रों का गुणगान किया और दही मथने की आवाज़ में ध्वनि मिलाकर भगवान की भक्ति में लीन हो रहीं थीं। उद्धव जी नित्य कर्म से निवृत्त होकर गोपियों के पास पहुँचे।

गोपियों ने देखा की श्री कृष्ण के सेवक उद्धव जो

की आकृति और वेषभूषा श्री कृष्ण से मिलती-जुलती है। जब उन्हें ज्ञात हुआ कि ये तो भगवान श्री कृष्ण का सन्देश लेकर आए हैं, तब उन्हें एकान्त में ले जाकर उनसे कहने लगीं— हे उद्धवजी! हमारे लिए क्या सन्देश लेकर आए हो? पुरुषों का स्त्रियों से स्वार्थ का प्रेम सम्बन्ध होता है। वे अब हमें क्यों याद करने लगे? जब वृक्ष पर फल नहीं रहते तो पक्षीगण स्वयं बिना सोचे-विचारे उस पेड़ से सम्बन्ध तोड़कर उड़ जाते हैं।

हे उद्धव जी! आप भी कपटी के मित्र हैं, इसलिए आप भी कपटी हुए। आपके कपटी मित्र श्री कृष्ण हम भोली भाली गोपियों को छोड़कर यहाँ से प्रस्थान कर गए। गोपियाँ लालायित हो रहीं थीं और उनके लिए तड़प रहीं थीं। उनकी बातें सुनकर उद्धव जी ने उन्हें उनके प्रियतम का सन्देश सुनाकर सात्वना देते हुए कहा— हे गोपियों ! इसमें सन्देह नहीं कि मैं तुम्हारे नयनों का ध्रुव तारा हूँ। तुम्हारे जीवन का सर्वस्व हूँ।

श्री कृष्ण का सन्देश पाकर गोपियों को बड़ा आनन्द प्राप्त हुआ। गोपियाँ बोलीं कि हम तो गाँव की गँवार ग्वालिने ठहरीं, परन्तु भगवान श्री कृष्ण ने हमारे ऊपर अपना अनन्य प्रेम रखकर हमारे गले में बाँह डालकर हमारी इच्छाएँ पूरी की हैं। कई महीनों तक ब्रज में रहकर उद्धव जी ने गोपियों से भ्रमरगीत सुना। अब उद्धव जी ने नन्दबाबा और यशोदा मैया से मथुरा जाने के लिए आज्ञा प्राप्त की। उद्धव जी ने आकर भगवान श्री कृष्ण को प्रणाम किया और उन्हें ब्रजवासियों की प्रेममयी भक्ति का दृश्य जैसा

उन्होंने देखा था कह सुनाया। इसके बाद नन्दबाबा ने भेंट में जो-जो सामग्री दी थी वह सब श्रीकृष्ण, बलराम, वसुदेव तथा राजा उग्रसेन को दे दी।



३३. भगवान का कुब्जा और अक्रूर के घर जाना

भगवान श्री कृष्ण कंस को मारने के बाद अपनों से मिलने की आकाँक्षा रखकर कुब्जा के घर गए। भगवान श्रीकृष्ण को देखकर विविध उपचारों से कुब्जा ने उनकी पूजा की। श्रीकृष्ण ने उसकी कंकण से सुशोभित कलाई पकड़ अपने पास बैठा लिया और उसके साथ क्रीड़ा करने लगे। कुब्जा भगवान श्रीकृष्ण के चरणों को अपने काम संतप्त हृदय, वृक्षस्थल, और नेत्रों पर रखकर उनकी दिव्य सुगन्ध ग्रहण करने लगी। इस प्रकार उसने अपने हृदय की समस्त आधि-व्याधि शान्त कर ली : श्री कृष्ण को अपनी दोनों भुजाओं से आलिंगन करके कुब्जा ने दीर्घकाल से बढ़े हुए विरह-ताप को शान्त किया। भगवान श्रीकृष्ण ने वर देकर उसकी पूजा स्वीकार की।

तद्नन्तर एक दिन भगवान श्री कृष्ण, बलराम जी और उद्धव जी के साथ अक्रूर जी के घर गए। अक्रूर जी ने भगवान श्रीकृष्ण और बलराम को नमस्कार किया। उन्होंने पहले भगवान के चरण धोकर चरणोदक को

सिर पर धारण किया और उनका पूजन किया। उनके चरणों को अपनी गोद में लेकर दबाने लगे। फिर उनसे बोले— भगवन्! यह बड़े ही आनन्द और सौभाग्य की बात है कि पापी कंस अपने अनुयायियों के साथ मारा गया। इसके बाद भगवान श्री कृष्ण ने मुस्कराकर कहा— तात! आप हमारे गुरु, हितोपदेशक और चाचा हैं। हम तो आपके बालक हैं और आपके द्वारा रक्षा पालन और कृपा के पात्र हैं। चाचा जी! आप हमारे हितैषी सुहृदों में सर्वश्रेष्ठ हैं। इसलिए आप पाण्डवों का हित करने के लिए तथा उनका कुशल-मंगल जानने के लिए हस्तिनापुर जाइए। हमने सुना है कि राजा पाण्डु के मर जाने पर पाण्डव अपनी माता कुन्ती के साथ दुःख में पड़ गए हैं। राजा धृतराष्ट्र उन्हें अपनी राजधानी हस्तिनापुर में ले आये हैं। उनका पुत्र दुर्योधन बड़ा दुष्ट है। इसलिए आप वहाँ जाइए और मालूम कीजिए की उनकी स्थिति कैसी है ? आपके द्वारा समाचार पाकर मैं उसके अनुसार उपाय करूँगा, जिससे उन्हें सुख प्राप्त हो सके। अक्रूर जी को आदेश देकर भगवान श्री कृष्ण बलराम जी और उद्धव जी के साथ घर लौट आए।



३४. अक्रूर जी का हस्तिनापुर जाना

श्री शुकदेव जी कहते हैं— परीक्षित! भगवान श्री कृष्ण की आज्ञानुसार अक्रूर जी हस्तिनापुर गए। वहाँ वे

पहले धृतराष्ट्र, भीष्म, विदुर, कुन्ती, ब्राह्लीका और उनके पुत्र सोमदत्त, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, कर्ण, दुर्योधन, द्रोण पुत्र अश्वत्थामा, पाँचों पाण्डव तथा इष्ट मित्रों से मिले। उन्होंने देखा कि धृतराष्ट्र में अपने दुष्ट पुत्रों की इच्छा के विरुद्ध कुछ भी करने का साहस नहीं है। वे शकुनि आदि दुष्टों की सलाह से ही काम करते थे। अक्रूर जी को कुन्ती और विदुर जी ने बताया कि दुर्योधन आदि ने पाँचों पाण्डवों को प्रभात क्षेत्र में जलाने का प्रयास किया था, परन्तु भगवान की कृपा से बच गए। अब तक दुर्योधन आदि धृतराष्ट्र के पुत्रों ने पाण्डवों पर कई बार विषपान और बहुत से अत्याचार किए हैं और आगे भी बहुत कुछ करना चाहते हैं। कुन्ती ने पूछा कि श्रीकृष्ण अपने फुफेरे भाइयों को याद करते है या नहीं?

अक्रूर जी और विदुर जी ने कुन्ती को उसके पुत्रों के जन्मदाता धर्म, वायु आदि देवताओं की याद दिलाई और यह कहकर कि तुम्हारे पुत्र अधर्म का नाश करने के लिए ही उत्पन्न हुए हैं। उन्होंने कुन्ती को बहुत तरह से समझाया और सांत्वना दी। अक्रूर जी जब मथुरा जाने लगे, तब राजा धृतराष्ट्र के पास आए। अब तक यह स्पष्ट हो गया था कि राजा अपने पुत्रों का पक्षपात करते हैं और अपने भतीजों पाण्डवों के साथ पुत्रों का सा व्यवहार नहीं करते।

अब अक्रूर जी ने कौरवों की भरी सभा में श्री कृष्ण और बलराम जी का सन्देश पढ़कर सुनाया कि आप अपने भाई पाण्डु के परलोक सिधार जाने पर ही राज

सिंहासन के अधिकारी हुए हैं, इसलिए अपने पुत्रों और पाण्डवों के साथ समानता का व्यवहार करें। इसी से आपका यश इस लोक में और परलोक में फैलेगा। यदि आप ऐसा नहीं करेंगे तो इस लोक में आपकी निन्दा होगी और मृत्यु के पश्चात् स्वर्ग को न जाकर नरक भोगना पड़ेगा।

धृतराष्ट्र बोले— मेरे चंचल चित्त में आपकी यह प्रिय शिक्षा तनिक भी नहीं ठहर रही है। क्योंकि मेरा हृदय पुत्रों की ममता के कारण अत्यन्त विषम हो गया है। जैसे स्फटिक पर्वत के शिखर पर एक बार बिजली कौंधती है और दूसरे ही क्षण अन्तर्धान हो जाती है, वही दशा आपके उपदेशों की है। सुना है कि सर्वशक्तिमान भगवान पृथ्वी का भार उतारने के लिए यदुकुल में अवतीर्ण हुए हैं। उनकी जैसी इच्छा होगी वैसा ही होगा।

इस प्रकार अक्रूर जी महाराज धृतराष्ट्र का अभिप्राय जानकर और कुरुवंशी स्वजन सम्बन्धियों से प्रेमपूर्वक अनुमति लेकर मथुरा लौट आए। उन्होंने श्रीकृष्ण और बलराम जी के सम्मुख धृतराष्ट्र का समस्त व्यवहार बर्ताव जो वे पाण्डवों के साथ करते थे कह सुनाया।



३५. जरासंध से युद्ध और द्वारिकापुरी का निर्माण

श्री शुकदेव जी कहते हैं— परीक्षित! कंस के अस्ति

और प्राप्ति नाम की दो पत्नियाँ थीं। इन रानियों का पिता जरासंध था। कंस के मारे जान पर उसकी पत्नियाँ अपने पिता के घर चली गईं। उससे उन्होंने बड़े दुख के साथ अपने विधवा होने का सामाचार सुनाया। यह सुनकर जरासंध ने मथुरा पर तेइस अक्षोहिणी सेना लेकर आक्रमण कर दिया।

श्री कृष्ण ने विचार किया कि इस समय मुझे क्या करना चाहिए? वे विचार कर ही रहे थे कि आकाश से सूर्य के समान चमकते हुए दो रथ आ पहुँचे। उनमें युद्ध की सामग्री भरी थी। श्री कृष्ण और बलराम उन दोनों रथों पर सवार होकर मथुरा से बाहर आए और अपना पाँचजन्य शंख बजाया।

श्री कृष्ण का रथ दारुक हाँक रहा था। श्री कृष्ण के पाँचजन्य शंख की आवाज़ सुनकर शत्रु की सेना के वीरों के हृदय डर से थर्रा उठे। युद्ध प्रारम्भ हो गया। दोनों ओर से बाणों की वर्षा होने लगी। जरासंध की वह सेना समुद्र के समान दुर्गम, भयावह और बहुत कठिनाई से जीतने योग्य थी। परन्तु भगवान श्री कृष्ण और बलराम ने ज़रा-सी देर में उसे नष्ट कर दिया और जरासंध को पकड़ लिया तथा उसे जीवित ही छोड़ दिया। जरासंध को बड़ी लज्जा हुई कि मुझे श्री कृष्ण ने एक दीन की भांति छोड़ दिया।

इस प्रकार सत्रह बार तेईस-तेईस अक्षौहिणी सेना एकत्र करके जरासंध ने भगवान श्री कृष्ण से युद्ध किया परन्तु हर बार उसे हार का मुँह देखना पड़ा। जिस समय

अठाहरवाँ संग्राम छिड़ने वाला था तो उसी समय नारदजी का भेजा हुआ वीर कालयवन दिखाई पड़ा। भगवान श्री कृष्ण ने सोचा जरासंध और कालयवन दोनों मिलकर युद्ध करेंगे। श्री कृष्ण जी ने बलराम जी के साथ मिलकर विचार किया कि आज हम एक ऐसा किला बनाएँगे, जिसमें किसी भी मनुष्य का प्रवेश करना कठिन होगा। अपने स्वजन सम्बन्धियों को उसी किले में पहुँचाकर फिर इस यवन का वध करेंगे।

भगवान ने मथुरावासियों को बचाने के लिए एक किला अड़तालिस योजन का समुद्र में बनाया। उसमें खाने-पीने की सब सामग्री थी। भगवान श्रीकृष्ण ने अपनी योगमाया के द्वारा उसमें मथुरावासियों और स्वजनों को वहाँ भेज दिया। शेष प्रजा की रक्षा के लिए बलराम जी को मथुरा नगरी में नियुक्त कर दिया और उनसे सलाह करके गले में कमल की माला पहने, बिना किसी अस्त्र-शस्त्र के स्वयं श्रीकृष्ण नगर के बड़े द्वार से बाहर निकल आए। रास्ते में कालयवन ने उनका पीछा किया। भगवान आगे-आगे और कालयवन पीछे-पीछे दौड़ा।



३६. कालयवन का भस्म होना, मुचुकुन्द की कथा

भगवान श्री कृष्ण का नाम रणछोड़ पड़ गया। रणछोड़ भगवान श्री कृष्ण की लीला करते हुए भाग

रहे थे और कालयवन पग-पग पर यही समझता रहा कि श्री कृष्ण को अब पकड़ा, अब पकड़ा। इस प्रकार भगवान श्री कृष्ण बहुत दूर एक पहाड़ की गुफा में चले गए। पीछे-पीछे कालयवन भी उस गुफा में घुस गया। कालयवन ने अन्दर एक सोए हुए व्यक्ति को ठोकर मारी। वह पुरुष बहुत दिनों से सोया हुआ था। उसकी दृष्टि पड़ते ही कालयवन के शरीर में आग पैदा हो गई और वह उस आग में जलकर भस्म हो गया।

श्री शुकदेव जी कहते हैं कि वह व्यक्ति इक्ष्वांकु वंशी मानधाता के पुत्र मुचुकुन्द थे। एक बार इन्द्रादि देवता असुरों से अत्यन्त भयभीत हो गए थे। उन्होंने अपनी रक्षा के लिए राजा मुचुकुन्द से प्रार्थना की और वे बहुत दिनों तक उनकी रक्षा करते रहे। इस कारण मुचुकुन्द को देवताओं ने वर दिया कि सोते हुए आपको कोई जगाएगा तो वह भस्म हो जाएगा। इस प्रकार जगाने पर कालयवन भस्म हो गया। भगवान श्री कृष्ण ने राजा मुचुकुन्द को दर्शन दिए और कहा— अगले जन्म में तुम ब्राह्मण बनोगे और समस्त प्राणियों के सच्चे हितैषी, परम सुहृदय बनोगे तथा फिर मुझ विशुद्ध विज्ञानधन परमात्मा को प्राप्त करोगे। अन्त में भगवान श्री कृष्ण और मुचुकुन्द गुफा से बाहर आ गए।



३८. द्वारका गमन, श्री बलराम जी का विवाह तथा श्री कृष्ण के पास रुक्मिणी जी का सन्देश लेकर ब्राह्मण का आना

भगवान श्री कृष्ण मथुरा लौट आए। अब तक कालयवन की सेना ने मथुरा को घेर रखा था। भगवान श्री कृष्ण ने उसकी सेना का संहार कर डाला और उसका सारा धन छीन कर द्वारिका चले गए। जरासंध भी अपनी बची-कुची सेना लेकर मगध देश को चला गया।

श्री शुकदेव जी ने कहा— परीक्षित! यह बात मैं तुमसे पहले ही नवम स्कन्ध में कह चुका हूँ कि आनर्तदेश के राजा रैवत जी ने अपनी रेवती नाम की कन्या ब्रह्माजी की प्रेरणा से बलराम जी के साथ ब्याह दी थी। भगवान श्रीकृष्ण भी स्वयंवर में आए हुए शिशुपाल और उसके पक्षपाती शाल्व आदि राजाओं को बलपूर्वक हराकर सबके देखते-देखते जैसे गरुड़ ने अमृत का हरण किया था, वैसे ही विदर्भ देश की राजकुमारी रुक्मिणी को हर लाए उनसे विवाह कर लिया। रुक्मिणी जी राजा भीष्मक की कन्या और स्वयं भगवती लक्ष्मी की अवतार थीं।

श्री शुकदेव जी इस कथा का विवरण कर रहे थे कि राजा भीष्मक के एक सुन्दर कन्या और पाँच पुत्र थे। बड़े पुत्र का नाम रुक्मी था। भगवान श्री कृष्ण ने रुक्मिणी से विवाह करने का निश्चय किया। परन्तु

रुक्मी अपनी बहिन का विवाह शिशुपाल से करना चाहता था।

रुक्मिणी जी को जब अपने भाई के फैसले का पता चला तो उन्होंने अपने एक विश्वासपात्र ब्राह्मण को बुलाकर भगवान श्री कृष्ण के पास सन्देश भेजा। ब्राह्मण देवता ने द्वारिका पुरी पहुँचकर रुक्मिणी जी का पत्र श्री कृष्ण को दिया— हे प्रियतम! मैंने आपको अपने पति के रूप में स्वीकार किया है परन्तु मेरा भाई मेरा विवाह शिशुपाल के साथ करना चाहता है। मैं आपको एक उपाय बताती हूँ। हमारे यहाँ नियम है कि विवाह के पहले दिन कुल देवी का दर्शन करने के लिए एक बहुत बड़ी यात्रा होती है। जुलूस निकलता है, जिसमें विवाही जाने वाली कन्या अर्थात दुल्हन को नगर से बाहर गिरिजादेवी के मन्दिर में जाना पड़ता है। कमल नयन! उमापति भगवान शंकर के समान बड़े-बड़े महापुरुष भी आत्मशुद्धि के लिए आपके चरण कमलों की धूल से स्नान करना चाहते हैं। यदि मैं आपको प्राप्त न कर सकी तो व्रत द्वारा शरीर को सुखा कर अपने प्राण त्याग दूँगी।

सन्देश मिलने पर तुरन्त भगवान श्री कृष्ण ने दारुक को रथ जोतकर लाने को कहा। भगवान श्री कृष्ण और ब्राह्मण देवता रथ में सवार होकर विदर्भ देश में पहुँच गए। उधर शिशुपाल विवाह करने के लिए अपने साथ में शाल्व, जरासंध, दन्तवक्र, विदुरथ, पौण्ड्रक आदि को लाया था।

राजा भीष्मक ने सुना कि भगवान श्री कृष्ण बलराम जी सहित विवाह देखने आ रहे हैं। तब राजा ने उनका स्वागत और पूजा-अर्चना की और उनके ठहरने का उचित प्रबन्ध किया। उसी समय रुक्मिणी जी देवी जी के दर्शनों के लिए चलीं। उनकी रक्षा के लिए साथ में अनेक सैनिक भी थे। रुक्मिणी जी ने हाथ-पैर धोकर मंदिर में प्रवेश किया। पूजा करके वह लौट रहीं थीं तब भगवान श्री कृष्ण ने भीड़ में से रुक्मिणी जी को उठा लिया और अपने रथ में बैठाकर बलराम जी तथा अन्य यदुवंशियों के साथ वहाँ से चल दिए।

उस समय जरासंध के वशवर्ती अभिमानी राजाओं को अपना यह बड़ा भारी तिरस्कार और यशकीर्ति का नाश सहन न हो सका। घमासान युद्ध प्रारम्भ हो गया। अन्त में भगवान श्री कृष्ण ने सब सेनाओं को तहस-नहस कर डाला। जरासंध भी भाग गया। शिशुपाल राजधानी लौट आया। रुक्मिणी का भाई रुक्मी क्रोध में भरकर एक बड़ी सेना लेकर भगवान का पीछा करने लगा।

रास्ते में युद्ध होने लगा। भगवान श्री कृष्ण ने उसकी सेना को भी तहस-नहस कर डाला तथा रुक्मी को उसी के दुपट्टे से बाँध कर उसकी दाढ़ी, मूँछ तथा केश काटकर उसे कुरूप कर दिया। बलराम जी को दया आई। उन्होंने उसके बन्धन खोलकर छोड़ दिया।

भगवान श्री कृष्ण ने द्वारिकापुरी में पहुँचकर बड़ा उत्सव कर विधिपूर्वक पाणिग्रहण संस्कार किया। घर-

घर में सभी ने बड़ा उत्सव मनाया। भगवान श्री कृष्ण को रुक्मिणी के साथ देखकर द्वारिकावासियों को बड़ा आनन्द हुआ।



३८. प्रद्युम्न का जन्म और शम्बासुर का वध

श्री शुकदेव जी कहते हैं— परीक्षित! कामदेव भगवान वासुदेव के ही अंश हैं। वे पहले रुद्र भगवान की क्रोधाग्नि में भस्म हो गए थे। फिर से शरीर के लिए उन्होंने भगवान वासुदेव का ही आश्रय लिया। वे ही कामदेव अबकी बार भगवान श्री कृष्ण के द्वारा रुक्मिणी जी के गर्भ से उत्पन्न हुए और प्रद्युम्न नाम से संसार में प्रसिद्ध हुए। बालक प्रद्युम्न अभी दस दिन के भी न हुए थे कि शम्बरासुर वेष बदलकर सूतिकागृह से उन्हें हर ले गया और समुद्र में फेंक दिया। समुद्र में बालक प्रद्युम्न को एक बड़ा मच्छ निगल गया। तद्नन्तर मछुआरों ने दूसरी मछलियों के साथ उस मच्छ को भी पकड़ लिया तथा मछुआरों ने मछलियों के साथ मच्छ को भी शम्बरासुर को भेंट किया। रसोइयों ने मत्स्य के पेट में बालक को देखकर उसे शम्बरासुर की दासी मायावती को सौंप दिया। वह बालक कामदेव के रूप में था। कामदेव की पत्नी रति थी जो मायावती के नाम से रसोईघर का काम करती थी।

मायावती ने प्रद्युम्न को महामाया नाम की विद्या सिखाई। एक दिन दैत्यों ने प्रद्युम्न जी को आकाश में ले जाकर अस्त्र-शस्त्रों की वर्षा करने लगे, परन्तु श्री कृष्ण पुत्र प्रद्युम्न जी ने महामाया विद्या द्वारा शम्बरासुर का सिर धड़ से अलग कर दिया। मायावती आकाश मार्ग से अपने पति प्रद्युम्न जी को द्वारिकापुरी ले आई। नारद जी ने आकर सब कथा सुनाई। रुकमणी जी को खोया हुआ बालक पाकर बड़ी प्रसन्नता हुई। इस उपलक्ष्य में श्री कृष्ण ने द्वारिकापुरी में एक बहुत बड़े उत्सव का आयोजन किया। रति प्रद्युम्न की पत्नी बनी। भगवान श्री कृष्ण, बलराम जी, रुक्मिणी जी तथा अन्य स्त्रियाँ नव दम्पत्ति को हृदय से लगाकर आशीर्वाद प्रदान करने लगे।



३९. स्यमन्तक मणि की कथा-जाम्बवती और सत्यभामा के साथ श्रीकृष्ण का विवाह

श्री शुकदेव जी कहते हैं— परीक्षित! सत्राजित भगवान सूर्य का बड़ा भक्त था। उन्होंने उसकी भक्ति से प्रसन्न होकर उसे स्यमन्तकमणि प्रदान की। वह मणि प्रतिदिन आठ भार सोना दिया करती थी। एक बार भगवान श्री कृष्ण ने प्रसंगवश कहा— सत्राजित! तुम अपनी मणि राजा उग्रसेन को दे दो। परन्तु वह इतना

लोभी था कि उसने भगवान की आज्ञा का उल्लंघन होगा, इसका कुछ भी विचार न करके उसे अस्वीकार कर दिया।

एक दिन सत्राजित का भाई प्रसेन उस मणि को गले में धारण कर घोड़े पर सवार होकर शिकार खेलने वन में चला गया। वहाँ एक सिंह ने प्रसेन को उसके घोड़े सहित मार डाला और मणि को लेकर पर्वत की गुफा में प्रवेश करने ही वाला था कि ऋक्षराज जाम्बवान ने उसे मार डाला और मणि को ले जाकर बच्चों को खेलने को दे दी।

जब प्रसेन लौटकर नहीं आया तो सत्राजित ने अफवाह फैला दी कि श्री कृष्ण ने मणि के लिए मेरे भाई को मार डाला। जब भगवान श्रीकृष्ण ने सुना कि यह कलंक का टीका मेरे ही सिर लगाया गया है, तब भगवान श्री कृष्ण नगर के कुछ सभ्य पुरुषों को साथ लेकर प्रसेन को ढूँढने के लिए वन में गए। वहाँ खोजते-खोजते लोगों ने देखा कि घोर जंगल में सिंह ने प्रसेन और उसके घोड़े को मार डाला है। जब वे लोग सिंह के पैरों के चिन्ह देखते हुए आगे बढ़े, तब उन लोगों ने यह भी देखा कि एक रीछ ने पर्वत पर शेर को भी मार डाला है।

भगवान श्री कृष्ण ने सब लोगों को बाहर ही बैठाकर स्वयं गुफा में प्रवेश किया। श्री कृष्ण और रीछ जाम्बवान के बीच २८ दिन तक युद्ध होता रहा। अन्त में जाम्बवान ने हाथ जोड़कर कहा— प्रभु! मैंने आपको पहचान लिया

है। श्री कृष्ण के रूप में आप भगवान श्री राम हैं। अन्त में जाम्बवान ने अपनी पुत्री जाम्बवती का भगवान श्री कृष्ण के साथ विवाह कर दिया और साथ में मणि भी दहेज के रूप में दे दी।

द्वारिकापुरी जाकर सत्राजित को राजसभा में बुलाकर उसे मणि दे दी गई। सत्राजित ने भी अपनी कन्या सत्यभामा और वह स्यमन्तकमणि दोनों ही श्री कृष्ण को दे दीं। भगवान श्री कृष्ण ने सत्राजित से कहा— हम इस सयमन्तक मणि को नहीं लेंगे। आप सूर्य भगवान के भक्त हैं, इसलिए यह मणि आपके पास ही रहनी चाहिए। हम तो केवल उसके फल अर्थात् उससे निकले स्वर्ण के अधिकारी हैं। उस स्वर्ण को ही हमें दे दिया करें।



४०. स्यमन्तक हरण शतधन्वा का उद्धार और अक्रूर जी को द्वारिका बुलाना

श्री शुकदेव जी कहते हैं कि भगवान श्री कृष्ण पाण्डवों के समाचार सुनकर बलराम जी को साथ लेकर हस्तिनापुर को गए। भगवान के हस्तिनापुर चले जाने से द्वारिका में अक्रूर और कृत्वर्या को मौका मिल गया। उन लोगों ने शतध्वा से कहा— तुम जाकर सत्राजित से मणि क्यों नहीं छीन लेते ? सत्राजित ने अपनी पुत्री सत्यभामा का विवाह हमसे करने का वचन दिया था

और अब उसने हम लोगों का तिरस्कार करके उसे श्री कृष्ण को सौंप दिया। अब सत्राजित भी अपने भाई प्रसेन की तरह यमपुरी जाना चाहिए। अक्रूर और कृतवर्मा के बहकावे में आकार शतधन्वा ने सत्राजित को मार डाला और मणि लेकर वहाँ से चम्पत हो गया।

सत्यभामा अपने पिता के शव को तेल के कड़ाहे में रखवाकर स्वयं हस्तिनापुर गईं। उन्होंने रो-रोकर भगवान श्री कृष्ण को अपने पिता की हत्या का वृत्तान्त सुनाया। यद्यपि भगवान श्री कृष्ण इन बातों को पहले से ही जानते थे। इसके बाद श्री कृष्ण सत्यभामा और बलराम जी के साथ हस्तिनापुर से द्वारिका लौट आए और शतधन्वा को मारने तथा उससे मणि प्राप्त करने के लिए विचार करने लगे।

शतधन्वा मणि को अक्रूर जी के पास रखकर चार सौ कोस लगातार चलने वाले घोड़े पर सवार होकर वहाँ से बड़ी फुर्ती से भागा। भगवान श्री कृष्ण और बलराम रथ पर सवार होकर शतधन्वा का पीछा करने लगे। मिथिलापुरी के निकट एक उपवन में शतधन्वा का घोड़ा ठोकर खाकर गिर पड़ा। वह घोड़े को छोड़ कर पैदल ही भागने लगा। भगवान श्री कृष्ण ने भी पैदल ही दौड़कर अपने चक्र से उसका सिर उतार लिया और उसके वस्त्रों में मणि को ढूँढा, परन्तु जब मणि नहीं मिली तब भगवान श्री कृष्ण ने बलराम जी से कहा— उसके पास मणि नहीं मिली। ऐसा लगता है कि शतधन्वा ने मणि को किसी के पास रख दिया है।

अब तुम द्वारका जाकर उसका पता लगाओ।

भगवान श्री कृष्ण ने अक्रूर जी से कहा— चाचा जी! आप दान, धर्म के पालक हैं। हमें यह बात पहले से मालूम है कि शतधन्वा आप के पास स्यमन्तक मणि छोड़ गया है, जो बड़ी ही प्रकाशमान और स्वर्ण देने वाली है। आप वह मणि दिखाकर जाम्बवन्ती का सन्देह दूर कर दीजिए। हमें पता है कि उसी मणि के प्रताप से आजकल आप लगातार ऐसे यज्ञ करते रहते हैं जिनमें सोने की वेदियाँ बनती हैं। जब भगवान श्री कृष्ण ने उन्हें समझाया बुझाया तो अक्रूर जी ने वस्त्र में लिपटी हुई सूर्य के समान प्रकाशमान वह मणि भगवान श्री कृष्ण को सौंप दी। भगवान श्री कृष्ण ने वह मणि अक्रूर जी को लौटा दी। भगवान श्री कृष्ण ने द्वारिकापुरी में लौटकर अक्रूर जी को बुलाया और अपने माथे से कलंक का टीका हटाया।



४१. भगवान के अन्यान्य विवाह कथा, भौमासुर का उद्धार और सोलह हज़ार कन्याओं के साथ विवाह

श्री शुकदेव जी कहते हैं— परीक्षित! एक बार भगवान श्री कृष्ण पाण्डवों से मिलने इन्द्रप्रस्थ गए। उनके साथ सात्यकि आदि बहुत से यादव भी थे। वीर पाण्डवों ने उनका आलिंगन करके स्वागत किया।

पाण्डवों ने भगवान श्री कृष्ण के समान ही सात्यकि का स्वागत-सत्कार और अभिनन्दन किया। राजा युधिष्ठिर ने कुछ दिन भगवान श्री कृष्ण से ठहरने की प्रार्थना की। इससे वे बरसात के चार माह तक वहाँ ठहरे रहे।

एक दिन भगवान श्री कृष्ण और अर्जुन शिकार खेलने वन में गए। प्यास लगने पर वे यमुना नदी पर गए। वहाँ पर उन्होंने सूर्य देव की पुत्री कालिन्दी को तपस्या करते देखा। अर्जुन द्वारा उससे पूछने पर बताया कि मैं भगवान विष्णु को पति रूप में प्राप्त करने हेतु तपस्या कर रही हूँ। उसकी बात सुनकर अर्जुन कालिन्दी को भगवान श्री कृष्ण के पास ले आए। कुछ दिनों बाद पाण्डवों से अनुमति लेकर भगवान श्री कृष्ण द्वारिका लौट आए और पवित्र लग्न में कालिन्दी से विवाह कर लिया।

अवन्ती देश (उज्जैन) के विन्द और अनुविन्द शासक थे। वे दुर्योधन के अनुयायी थे, परन्तु उनकी बहन मित्र विन्दा ने अपने स्वयंवर में भगवान श्री कृष्ण को अपना पति बनाना चाहा, परन्तु उसके भाइयों ने उसे रोक दिया क्योंकि वह श्री कृष्ण की फुफेरी बहन लगती थी। भगवान श्री कृष्ण राजाओं की भरी सभा में उसका बलपूर्वक हरण करके ले गए और उससे विवाह रचा लिया।

कौशल देश के राजा थे नग्नजित। उनके एक परम सुन्दरी पुत्री थी, जिसका नाम था सत्या। राजा को प्रतिज्ञा

के अनुसार सात दुर्दान्त बैलों पर कोई विजय प्राप्त न कर सका। इसलिए कोई राजा उससे विवाह न कर सका। जब भगवान श्री कृष्ण को राजा की प्रतिज्ञा का पता चला तो वे कौशलपुरी (अयोध्या) में पहुँचे। राजा ने उनका हार्दिक स्वागत किया। भगवान श्री कृष्ण ने राजा नग्नजित का प्रण सुनकर कमर में फेंट बाँधी और अपने सात रूप बनाकर खेल-खेल में उन बैलों को नाथ लिया। भगवान श्री कृष्ण उन्हें रस्सी बाँधकर ऐसे खींचने लगे जैसे छोटा बालक काष्ट के बैलों को खींचता है। भगवान श्री कृष्ण ने अपने अनुरूप पत्नी सत्या का विधिपूर्वक पाणिग्रहण किया।

भगवान श्री कृष्ण की एक बुआ श्रुतकीर्ति कैकेय देश में ब्याही गई थी। उनकी कन्या का नाम भद्रा था। उसके भाईयों सन्तर्दन आदि ने स्वयं ही उसका विवाह भगवान श्री कृष्ण से कर दिया।

मद्रप्रदेश के राजा के लक्ष्मणा नाम की एक पुत्री थी। वह अत्यन्त सुलक्ष्णा थी। जिस प्रकार गरुड़ ने स्वर्ग से अमृत का हरण किया था, उसी प्रकार भगवान श्री कृष्ण ने स्वयंवर में अकेले ही उसका हरण कर लिया। इसी प्रकार भगवान श्री कृष्ण ने भौमासुर को मारकर उसके बन्दीगृह से सहस्त्रों सुन्दरियों को छुड़ाकर उनके साथ विवाह कर उन्हें अपनी रानियाँ बना लिया।



भौमासुर के वध का कारण

भौमासुर ने वरुण का छत्र, माता अदिति के कुण्डल तथा मेरु पर्वत पर स्थित देवताओं का मणि पर्वत छीन लिया था। इस स्वर्ग के राजा इन्द्र भगवान श्री कृष्ण के पास आए और उसकी एक-एक करतूत का वर्णन किया। इस पर भगवान श्री कृष्ण अपनी प्रिय पत्नी सत्यभामा के साथ गरुड़ पर सवार होकर भौमासुर की राजधानी प्रागज्योतिषचुर गए। उसकी राजधानी में प्रवेश करना एक कठिन कार्य था। उसके चारों और पहाड़ों की किला बन्दी थी। जल से भरी हुई खाई थी और उसके चारों ओर अग्नि की चारदीवारी थी। भगवान श्री कृष्ण ने अपनी गदा की चोट से पहाड़ों को तोड़ डाला और शस्त्रों की मोर्चाबन्दी को अपने बाणों से छिन्न-भिन्न कर दिया। चक्र के द्वारा अग्नि, जल और वायु की चहारदीवारियों को तहस-नहस कर दिया।

इसके बाद भगवान श्री कृष्ण ने अपना पांचजन्य शंख बजाया, जिसकी आवाज़ सुनकर भौमासुर बाहर आया। उसके पाँच सीश थे। भगवान श्री कृष्ण ने उसे युद्ध में मार डाला। उसके सात पुत्र थे। पिता का बदला लेने हेतु पीठ नामक दैत्य ने भगवान श्री कृष्ण पर हमला कर दिया। भगवान ने युद्ध में उसे भी मार डाला। भगवान श्री कृष्ण ने भौमासुर के पुत्र भगवत द्वारा माफी माँगने पर उसे अभयदान प्रदान किया। भौमासुर ने सोलह हज़ार राजकुमारियों को बन्दी बना रखा था। भगवान श्री कृष्ण

उन्हें द्वारिकापुरी में ले गए तथा उन सब के साथ विवाह करके उन्हें अपनी पत्नियाँ बना लिया।



४२. श्रीकृष्ण-रुक्मिणी संवाद

श्री शुकदेव जी कहते हैं— परीक्षित! एक दिन भगवान श्री कृष्ण रुक्मिणी जी के पलंग पर आराम से बैठे हुए थे। रुक्मिणी जी श्री कृष्ण के ऊपर चंवर डुला कर सेवा कर रहीं थीं।

भगवान श्री कृष्ण ने रुक्मिणी जी से प्रश्न किया— आपने मुझे किस कारण से अपना पति स्वीकार किया ? जबकि शिशुपाल, शाल्व, जरासंध, दन्तवक्त्र आदि मुझ से शत्रुता रखते थे तथा शिशुपाल के साथ आपका विवाह हो रहा था, तब दुष्टों का मान-मर्दन करने के लिए ही मैंने तुम्हें हरण किया था।

श्री शुकदेव जी कहते हैं— भगवान श्री कृष्ण के क्षणभर के लिए भी अलग न होने के कारण रुक्मिणी जी को यह अभिमान हो गया था कि मैं उनकी सबसे प्यारी पत्नी हूँ। इसी गर्व को तोड़ने के लिए इतना कहकर वे चुप हो गए। रुक्मिणी जी यह अप्रिय वाणी सुनकर अत्यन्त भयभीत हो गईं। वे रोते-रोते चिन्ता के अगाध समुद्र में गोते खाने लगीं। उनका रोना देखकर भगवान श्री कृष्ण का हृदय करुणा से भर गया। उन्होंने कई प्रकार से उन्हें समझाया-बुझाया, तब रुक्मिणी को इस

बात का विश्वास हो गया कि मेरे प्रियतम ने केवल परिहास में ही ऐसा कहा था।

अब रुक्मिणी जी भगवान श्री कृष्ण का मुखारविन्द निरखती हुई बोलीं— आप समस्त संसार की आत्मा हैं। मैंने जान-बूझकर ब्रह्मा और इन्द्र आदि को इसलिए नहीं चुना था क्योंकि आपकी भौंहों के इशारे से उत्पन्न होने वाला काल अपने वेग से सबकी अभिलाषाओं पर पानी फेर सकता है तो फिर शिशुपाल, दन्तवक्त्र और जरासंध किस गिनती में हैं? इन्हीं बातों को ध्यान में रखकर ही मैंने आपका वरण किया था।

भगवान श्री कृष्ण ने कहा— राजकुमारी! यही बातें सुनने के लिए ही तो मैंने तुम से हँसी-हँसी में तुम्हारी वन्दना की थी और तुम्हें छकाया था। तुमने मेरे वचनों की जैसी व्याख्या की है, वह अक्षरश; सत्य है। तुम मेरी अनन्य प्रेयसी हो। मैंने तुम्हारा पति प्रेम और पातिव्रत्य भी भली-भांति देख लिया। मैं सर्वव्यापक भी हूँ। दूसरी पत्नियों के महलों में भी गृहस्थों के समान रहता हूँ और गृहस्थोचित धर्म का पालन करता हूँ।



४३. भगवान की संतति का वर्णन तथा अनिरुद्ध के विवाह में रुक्मी का मारा जाना

श्री शुकदेव जी कहते हैं— हे परीक्षित! भगवान

श्री कृष्ण की प्रत्येक पत्नी से दस-दस पुत्र उत्पन्न हुए। वे रूप, बल आदि गुणों में अपने पिता भगवान श्री कृष्ण से किसी बात में कम न थे। उन रानियों में आठ पटरानियाँ थीं। रुक्मिणी के दस पुत्रों के नाम थे— प्रद्युम्न, चारुदेष्ण, पराक्रमी, चारुदेह, सुचारु।

सत्यभामा के दस पुत्रों के नाम इस प्रकार थे— भानु, सुभानु, सवर्भानु, प्रभानु, भानुमान, चन्द्रभानु, बृहदभानु, अतिभानु, श्रीभानु, और प्रतिभानु।

जाम्बवती के भी साम्ब आदि दस पुत्र इस प्रकार थे— साम्ब, सुमित्र, पुरुजित, शतजित, सहस्रजित, विजय, चित्रकेतु, वसुमान, द्रविड़ और क्रतु।

नाग्नजिति सत्या के दस पुत्रों के नाम इस प्रकार थे- वीर, चन्द्र, अश्वसेन, चित्रगु, वेगवान, वृष, आम, शंकु, वसु और कुन्ति।

कालिन्दी के दस पुत्रों के नाम— श्रुत, कवि, वृष, वीर, सुबाहु, भद्र, शान्ति, दर्श, पूर्ण मास और सोमक थे।

लक्ष्मणा के दस पुत्रों के नाम— प्रघोष, गात्रवान, सिंह, बल, प्रबल, ऊर्ध्वग, महाशक्ति, सह, ओज और अपराजित थे।

मित्र विन्दा के दस पुत्रों के नाम— वृक, हर्ष, अनिल, गृध्र, वर्धन, अन्नाद, महाश, पावन, वह्नि और क्षुधि थे।

भद्रा के दस पुत्रों के नाम— संग्रामजित, बृहत्सेन, शूर, प्रहरण, अरिजित, जय, सुभद्र, वाम, आयु और सत्यक थे।

इन आठ पटरानियों के अतिरिक्त भगवान श्री कृष्ण की रोहिणी आदि सोलह हज़ार एक सौ पत्नियाँ और थीं। उनके दीप्तिमान और ताम्रतप्त आदि दस-दस पुत्र हुए।

रुक्मिणी के पुत्र प्रद्युम्न का मायावती रति के अतिरिक्त भोजकट नगर निवासी रुक्मी की पुत्री रुक्मवती से भी विवाह हुआ था। उसके गर्भ से परम बलशाली अनिरुद्ध का जन्म हुआ। प्रद्युम्न जी स्वयं कामदेव थे। उनके सौन्दर्य पर रीझकर रुक्मती ने स्वयंवर में उन्हीं के गले में वरमाला डाल दी। प्रद्युम्न अकेले ही वहाँ जमा हुए राजाओं को हरा कर रुक्मवती को हर लाए थे। रुक्मिणी के दस पुत्रों के अतिरिक्त चारुमति नाम की एक सुन्दर कन्या भी थी। उसका विवाह कृतवर्मा के पुत्र बलि के साथ हुआ।

रुक्मी का भगवान श्री कृष्ण के साथ पुराना वैर-भाव था, फिर अपनी बहिन रुक्मिणी को प्रसन्न करने के लिए उसने अपनी पौत्री रोचना का विवाह रुक्मिणी के पौत्र अर्थात् अपने धेवते अनिरुद्ध के साथ कर दिया। अनिरुद्ध के विवाहोत्सव में भगवान श्री कृष्ण, बलराम जी, प्रद्युम्न, साम्ब आदि द्वारिकावासी भोजकट नगर में पधारे।

विवाहोत्सव के पश्चात् कलिंग नरेश आदि घमण्डी नरेशों ने रुक्मी से कहा— तुम बलराम जी को पासों के खेल में हरा दो। बलराम जी को पासे डालने नहीं आते, परन्तु खेलने का बहुत शौक है। खेल प्रारम्भ हुआ। पहले

तो बलराम जी ने सौ, फिर हज़ार और इसके बाद दस हज़ार मुहरों का दाँव लगाया, जिन्हें रुक्मी ने जीत लिया। रुक्मी के जीत जाने पर कलिंग नरेश दाँत दिखा-दिखाकर बलराम जी की हँसी उड़ाने लगा। बलराम जी से वह हँसी सहन न हुई। इसके बाद रुक्मी ने एक लाख मुहरों का दाँव खेला, जिसे बलराम जी ने जीत लिया, परन्तु धूर्त रुक्मी कहने लगा— यह दाँव मैंने जीता है। उसी समय आकाशवाणी हुई कि दाँव बलराम जी ने जीता है। रुक्मी ने आकाशवाणी पर कोई ध्यान न दिया और बलराम जी की हँसी उड़ाते हुए बोला— आप लोग वन-वन में भटकने वाले ग्वाले ठहरे। आप पासा खेलना क्या जानें ? इसे तो राजा लोग ही खेला करते हैं। इस पर क्रोधित होकर बलराम जी ने अपनी गदा से रुक्मी को उस मांगलिक सभा में ही मार डाला। अनिरुद्ध जी नवविवाहिता दुल्हन के साथ द्वारिका को चले गए।



४४. ऊषा अनिरुद्ध मिलन और बाणासुर का युद्ध

श्री शुकदेव जी ने कहा— परीक्षित! महात्मा बलि वामन रूपधारी भगवान श्री कृष्ण को सारी पृथ्वी दान में दे चुके थे। उनके सौ पुत्र थे। सबसे बड़े पुत्र का नाम बाणासुर था। एक दिन जब भगवान शंकर ताण्डव नृत्य कर रहे थे, तब उसने अपने हज़ार हाथों से अनेकों

प्रकार के बाजे बजाकर उन्हें प्रसन्न कर लिया। इस पर भगवान शंकर ने बाणासुर से कहा— तुम्हारी जो इच्छा हो माँग लो। बाणासुर ने कहा— भगवन! आप यहीं रहकर मेरे नगर की रक्षा करते रहें।

बाणासुर की प्रार्थना पर भगवान शंकर ने तनिक रुष्ट होकर कहा— अरे मूर्ख! जिस समय तेरी ध्वजा टूटकर गिर जाएगी उस समय मेरे समान योद्धा से तेरा युद्ध होगा और वह तेरा घमण्ड चूर-चूर कर देगा।

बाणासुर के उषा नाम की एक कन्या थी। एक दिन उषा ने स्वप्न में देखा कि परम सुन्दर अनिरुद्ध के साथ मेरा समागम हो रहा है। आश्चर्य की बात यह थी कि अनिरुद्ध को वह जानती भी न थी। उसकी नींद टूट गई।

बाणासुर के मंत्री का नाम था कुम्भाण्ड। उसके चित्रलेखा नाम की एक पुत्री थी। उषा और चित्रलेखा एक दूसरे की सहेलियाँ थीं। चित्रलेखा चित्र बनाने में बहुत निपुण थी। उसने उषा द्वारा बताए बहुत से राजाओं के चित्र बनाए। उनमें अनिरुद्ध का भी चित्र था। उसने बताया कि यह चित्र अनिरुद्ध मेरे प्राणबल्लभ का है। चित्रलेखा एक योगिनी भी थी। उसने ध्यान लगाकर उषा को बताया कि ये भगवान श्री कृष्ण के पौत्र हैं। वह आकाश मार्ग से रात्रि में ही द्वारिका पहुँच गई। वह सोते हुए अनिरुद्ध को योगसिद्धि के प्रभाव से शोणित पुर ले आई। उषा अनिरुद्ध के साथ अपने महल में विहार करने लगी।

उषा का सहवास के कारण कुंवारापन नष्ट हो गया।

उषा के लक्ष्ण देखकर पहरेदारों ने बाणासुर से निवेदन किया कि— आपकी पुत्री द्वारा आपके वंश पर बट्टा लगने वाला है। बाणासुर उषा के कमरे में गया तो उसने वहाँ अनिरुद्ध को बैठा पाया। जब अनिरुद्ध ने देखा कि बाणासुर बहुत से आक्रमणकारी शस्त्रों से सुज्जित वीर सैनिकों के साथ महल में घुस आया है तो वे उन्हें धराशायी कर देने के लिए एक भयंकर परिध लेकर उनका सामना करने लगे। अनिरुद्ध ने सब योद्धाओं को भगा दिया और स्वयं उषा के महल से निकल भागे। जब बाणासुर ने देखा कि अनिरुद्ध भाग रहा है तो उसने नागपाश द्वारा अनिरुद्ध को बाँध लिया।

एक दिन नारद जी ने वहाँ आकर अनिरुद्ध का शोणितपुर जाना, वहाँ बाणासुर के सैनिकों को हराना और फिर नागपाश में बाँधे जाने का सारा समाचार भगवान श्री कृष्ण को बताया। इस पर अपनी सेना लेकर भगवान श्री कृष्ण ने बाणासुर पर चढ़ाई कर दी। बाणासुर की ओर से साक्षात् भगवान शंकर नन्दी पर सवार होकर अपने पुत्र कार्तिकेय और गणों के साथ रणभूमि में पधारे।

भगवान श्री कृष्ण के साथ शंकर जी का, बलराम जी के साथ कुम्भाण्ड का, कूपकर्ण का बाणासुर के पुत्र साम्ब का और बाणासुर के साथ सात्यकि का युद्ध होने लगा। इस युद्ध में सब कुम्भाण्ड, कूपकर्ण, बाणासुर का पुत्र मारे गए। भगवान श्री कृष्ण और भगवान शंकर का युद्ध जारी रहा। आखिर में भगवान कृष्ण ने जृम्भास्त्र

बाण को शंकर जी पर छोड़ा। इससे भगवान शंकर युद्ध करने योग्य नहीं रहे। बाणासुर की धर्म माता कोटरा देवी अपने उपासक को बचाने के लिए नंग-धड़ंग होकर भगवान श्री कृष्ण के सामने आकर खड़ी हो गई। भगवान श्री कृष्ण ने मुँह फेर लिया और अपने सुदर्शन चक्र से उसकी सब भुजाएँ काट डालीं। सिर्फ चार भुजाएँ छोड़ दीं। भगवान ने उसे मारा नहीं।

शंकर भगवान ने श्री कृष्ण से प्रार्थना की—बाणासुर मेरा सेवक है। भगवान श्री कृष्ण ने उषा का विवाह अनिरुद्ध के साथ कर दिया। श्री कृष्ण अनिरुद्ध और उषा को लेकर द्वारिका पधार गए। वहाँ उनका बड़ा सम्मान हुआ।



४५. नृगराज की कथा

एक दिन साम्ब, प्रद्युम्न, चारुभानु और गद आदि यदुवंशी घूमने के लिए उपवन में गए। प्यास लगने पर वे एक कुँए पर गए। उसमें जल नहीं था। उसके अन्दर पर्वत के आकार के समान एक गिरगिट पड़ा था। वे उसे दया वश बाहर निकालने का प्रयत्न करने लगे, परन्तु उसे निकालने में असमर्थ रहे। तब उन्होंने इसका वर्णन भगवान श्री कृष्ण से करा। भगवान श्री कृष्ण उस कुँए पर आए और उसे अपने बाँए हाथ से खेल-खेल में बाहर निकाल लिया। वह एक स्वर्गीय देवता

के रूप में परिवर्तित हो गया। भगवान श्री कृष्ण ने उस दिव्य पुरुष से उसका परिचय पूछा। उन्होंने भगवान श्री कृष्ण को झुककर प्रणाम किया और बोले— मैं महाराज इक्ष्वाकु का पुत्र राजा नृग हूँ। मेरा नाम दानवीरों में गिना जाता था। मैंने असंख्य गायों का दान किया था।

एक दिन किसी अप्रतिग्रही (दान न लेने वाले) तपस्वी की ब्राह्मण की एक गाय बिछुड़कर मेरी गौओं में आ मिली। परन्तु मुझे इसका पता न चला। मैंने अनजाने में उसे किसी दूसरे ब्राह्मण को दान में दे दी। मालूम पड़ने पर दोनों ब्राह्मण आपस में लड़ने लगे। उसने वह गाय वापिस नहीं की। इसके बाद मेरी आयु समाप्त होने पर यमदूत मुझे यमपुरी ले गए। वहाँ यमराज ने पूछा— राजन्! तुम पहले पाप का फल भोगना चाहते हो या पुण्य का। मैंने यमराज से कहा— मैं पहले पाप का फल भोगना चाहता हूँ। उसी क्षण यमराज ने कहा— तुम गिर जाओ। मैं गिरकर गिरगिट की योनि में पड़ा हूँ। भगवान श्री कृष्ण ने सब बात सुनकर उसे बैकुण्ठ में भेज दिया।



४६. श्री बलराम जी का ब्रज गमन, पौंड्रक और काशी राज का उद्धार

श्री बलराम जी के हृदय में ब्रज में नन्दबाबा आदि स्वजन सम्बन्धियों से मिलने की बड़ी इच्छा और उत्कंठा

थी। इसलिए वे रथ पर सवार होकर द्वारिका से ब्रज में आए। गोप और गोपियों ने बलराम जी को अपने बीच में देखकर सबने उन्हें अपने गले से लगाया। बलराम जी ने माता यशोदा और नन्दबाबा को प्रणाम किया।

बलराम जी ने जल क्रीड़ा करने के लिए यमुना जी को पुकारा। परन्तु यमुना जी ने यह समझकर कि ये मतवाले हो रहे हैं, वे नहीं आईं। तब बलराम जी ने अपने हल की नोक से उन्हें खींच लिया। जिस प्रकार गजराज हथनियों के साथ क्रीड़ा करता है, उसी प्रकार वे गोपियों के साथ जल क्रीड़ा करने लगे। इस प्रकार बलराम जी ब्रज में विहार करते रहे।

जब बलराम जी ब्रज में गए हुए थे तो उनके पीछे पौण्ड्रक ने भगवान श्री कृष्ण के पास एक दूत भेजकर कहलाया— भगवान वसुदेव मैं स्वयं हूँ। दूसरा अन्य कोई भगवान वसुदेव नहीं है। यदि तुम्हें यह बात स्वीकार न हो तो मुझ से युद्ध करो।

भगवान श्री कृष्ण ने दूत से कहा— तुम जाकर अपने राजा से कह देना मैं अपना चक्र तेरे ऊपर छोड़ूँगा। तू अपना मुँह छिपाकर औंधे मुँह गिरकर चील, गिद्ध, बटेर आदि पक्षियों से घिरकर हमेशा के लिए सो जाएगा। भगवान श्री कृष्ण का यह तिरस्कार पूर्ण संवाद लेकर दूत ने अपने स्वामी को सुनाया। इधर भगवान श्री कृष्ण ने काशी पर आक्रमण कर दिया क्योंकि आजकल वह अपने मित्र काशीराज के पास रह रहा था।

भगवान श्री कृष्ण के आक्रमण का समाचार पाकर

पौण्ड्रक भी दो अक्षौहिणी सेना लेकर युद्ध के मैदान में पहुँच गया। पौण्ड्रक ने शंख, चक्र, गदा, तलवार और श्रीवत्स के चिन्ह धारण कर रखे थे। रथ की ध्वजा पर भी गरुड़ का चिन्ह लगा रखा था। भगवान श्री कृष्ण ने देखते ही देखते गदा, तलवार, चक्र और बाणों से काशी नरेश तथा पौण्ड्रक दोनों सेनाओं का विनाश कर दिया। भगवान श्री कृष्ण ने अपने चक्र से पौण्ड्रक का सिर धड़ से अलग कर दिया तथा काशी नरेश का सिर धड़ से अलग होकर काशीपुर में जाकर गिरा। भगवान श्री कृष्ण द्वारिका को लौट गए।

काशी नरेश का पुत्र सुदक्षिणा अपने पिता की मृत्यु का बदला लेने के लिए भगवान शंकर को प्रसन्न करके उनसे आज्ञा लेकर, भगवान श्री कृष्ण जी के अभिचार का यज्ञ करने लगा। यज्ञ के पूर्ण होते ही यज्ञ कुण्ड से मूर्तिमान रूप में अग्नि प्रकट हुई। उसकी टाँगे ताड़ के पेड़ के समान लम्बी-लम्बी थीं। वह द्वारिका की ओर दौड़ी। उसे देखकर द्वारिकावासी घबरा गए। भगवान श्री कृष्ण ने अपने चक्र से उसके मुँह को तहस-नहस कर डाला और उसका तेज नष्ट कर डाला। वह लौटकर वापिस काशी में आई। उसने ऋत्विज आचार्य तथा सुदक्षिणा को जलाकर भस्म कर दिया। इस प्रकर काशीराज का उद्धार हुआ। इस प्रकार उसका अभिचार उसी के विनाश कारण बना। कृत्या के पीछे पीछे सुदर्शन चक्र भी काशी पहुँचा। सुदर्शन चक्र ने समस्त काशी को जलाकर भस्म कर दिया और फिर भगवान श्री कृष्ण के पास लौट आया।

जो व्यक्ति श्री कृष्ण के इस चरित्र को एकाग्रता के साथ सुनता है या दूसरों को सुनाता है वह समस्त पापों से छूट जाता है।



४८. द्विविद का उद्धार

श्री शुकदेव जी ने कहा— हे परीक्षित! द्विविद नाम का एक वानर था। वह भौमासुर का मित्र, सुग्रीव का मंत्री और मैन्द का छोटा भाई था। जब उसे पता चला कि श्री कृष्ण ने भौमासुर को मार डाला है तो वह अपने मित्र की मित्रता के ऋण से उऋण होने के लिए वह राष्ट्रविप्लव मचाने लगा। वह वानर बड़े-बड़े नगरों, गाँवों, खानों और अहीरों की बस्तियों में आग लगाकर भस्म करने लगा। वह बड़े-बड़े पहाड़ों को उखाड़कर उनसे नगरों व कस्बों को चकनाचूर कर देता। वह ऐसा काम आनर्त (काठियावाड़) प्रदेश में करता था क्योंकि उसके मित्र को मारने वाले भगवान श्री कृष्ण का वह प्रदेश निवास स्थान था।

एक दिन द्विविद सुललित संगीत सुनकर रैवतक पर्वत पर गया। वह वहाँ गरजना करने लगा। कभी मुँह बनाता तथा किलकारियाँ मारता। उस धूर्त ने मधुकलश को फोड़ डाला और स्त्रियों के वस्त्र फाड़ डाले तथा हँस-हँस कर बलराम जी को क्रोधित करने लगा। इस पर बलराम जी ने क्रोधित होकर उसपर अपना हल और

मूसल चलाया तो द्विविद ने एक हाथ से शाल का वृक्ष उखाड़ कर उसको बलराम जी की तरफ फेंका। बलराम जी ने उसके वार को बचाकर अपना सुनन्द नामक मूसल द्विविद के सिर पर मारा। इससे उसका सिर फटकर गिर पड़ा। द्विविद के गिरने से बड़े-बड़े वृक्ष गिर पड़े। द्विविद की मृत्यु हो जाने पर देवताओं ने बलराम जी के ऊपर फूलों की वर्षा करके अपनी प्रसन्नता व्यक्त की। इसके बाद बलराम जी द्वारिका में लौट आए।



४८. कौरवों पर बलराम जी का कोप और साम्ब का विवाह

श्री शुकदेव जी कहा— परीक्षित! जाम्बवती का पुत्र साम्ब स्वयंवर में से दुर्योधन की पुत्री लक्ष्मणा का हरण कर लाया। इस पर कौरव क्रोधित हो गए। कर्ण, शल, भूरिश्रवा, यज्ञकेतु और दुर्योधन आदि बड़े-बूढ़ों की अनुमति लेकर साम्ब को पकड़ने के लिए चल पड़े।

महारथी साम्ब ने जब देखा कि धृतराष्ट्र के पुत्र उसका पीछा कर रहे हैं तो साम्ब अपना रथ रोककर उनका सामना करने लगा। कौरवों ने धोखे से भगवान श्री कृष्ण के पुत्र साम्ब को रथहीन करके बाँध लिया। इसके बाद वे साम्ब तथा अपनी पुत्री लक्ष्मणा को लेकर हस्तिनापुर लौट आए।

बलराम जी कुरुवंशियों और यदुवंशियों में युद्ध नहीं चाहते थे। इसलिए वे रथ पर सवार होकर हस्तिनापुर पहुँचे। उनके साथ कुछ ब्राह्मण और यदुवंश के बड़े बूढ़े भी साथ थे। हस्तिनापुर पहुँचकर बलराम जी नगर के बाहर एक उपवन में ठहर गए और यह जानने के लिए कि कौरव लोग क्या चाहते हैं ? उन्होंने उद्धव जी को धृतराष्ट्र के पास भेजा।

बलराम जी के आने का समाचार सुनकर अपने हाथों में माँगलिक सामग्री लेकर कौरव उनकी आगवानी करने चले। बलराम जी बोले— उग्रसेन जी ने कहा है तुम लोगों ने मिलकर अधर्म से अकेले धर्मात्मा साम्ब का हरण कर लिया है। यह सब हम इसलिए सहन कर रहे हैं कि हम सम्बन्धियों में परस्पर फूट न पड़े, एकता बनी रहे। अतः साम्ब को उसकी नववधु के साथ हमारे पास भेज दो।

कुरुवंशी अपनी कुलीनता, बान्धवों, परिवार वालों, के बल और धनसम्पत्ति के घमण्ड में चूर हो रहे थे। उन्होंने साधारण शिष्टाचार की भी परवाह नहीं की। वे बलराम जी को दुर्वचन कहकर वापिस लौट गए।

बलराम जी ने अपने हल की नोक से बार-बार चोट करके हस्तिनापुर को उखाड़ दिया और उसे डुबोने के लिए बड़े क्रोध में गंगा जी की ओर खींचने लगे। हल से खींचने पर हस्तिनापुर इस प्रकार काँपने लगा मानो जल में कोई नाव डगमगा रही हो। जब कौरवों ने देखा कि हमारा नगर तो गंगा जी में गिर रहा है तो वे

घबरा गए। फिर उन लोगों ने लक्ष्मणा के साथ साम्ब को आगे किया और अपने प्राणों की रक्षा के लिए हाथ जोड़कर उनकी शरण में गए।

यदुवंश शिरोमणि भगवान बलराम जी ने नव दम्पत्ति लक्ष्मणा और साम्ब के साथ कौरवों का अभिनन्दन स्वीकार करके द्वारिका की यात्रा की।



४९. देवर्षि नारद जी का भगवान की गृहचर्या देखना

श्री शुकदेव जी ने कहा— हे परीक्षित! जब देवर्षि नारद ने सुना कि भगवान श्री कृष्ण ने नरकासुर (भौमासुर) को मारकर अकेले ही हज़ारों राजकुमारियों के साथ विवाह कर लिया है, तब उनके हृदय में भगवान के रहन-सहन को देखने की इच्छा हुई। वे इस उत्सुकता से प्रेरित होकर भगवान की लीला देखने के लिए द्वारिका पहुँच गए। वहाँ निर्मल जल से भरे सरोवरों में नीले, लाल और सफेद रंग के भांति-भांति के कमल खिले हुए थे। उनमें हंस और सारस कलरव कर रहे थे। द्वारिका में स्फटिकमणि और चाँदी के नौ लाख महल थे। वे फर्श में जड़ी हुई महामरकत मणि (पन्नों) की प्रभा से जगमगा रहे थे और उनमें सोने एवं हीरों की अनेक सामग्रियाँ शोभायमान थीं।

उसके राजपथ, गलियाँ, चौराहें और बाज़ार बड़े

मनमोहक थे। सभा भवन और देव-मन्दिरों के कारण उसका सौन्दर्य और भी चमक उठा था। भगवान श्री कृष्ण का अन्तपुर बहुत ही सुन्दर था। उस अन्तपुर में भगवान की रानियों के सोलह हज़ार से अधिक महल शोभायमान थे। उनमें से एक बड़े भवन में देवर्षि नारद जी ने प्रवेश किया। उस महल में मूँगे के खम्बे, वैदूर्य के उत्तम-उत्तम छज्जे तथा इन्द्रनील मणि की दीवारें जगमगा रहीं थीं। विश्वकर्मा ने बहुत से ऐसे चँदोवे बना रखे थे, जिनमें मोती की लड़ियों की झालरें लटक रहीं थीं। हाथी दाँत के बने हुए आसन और पलंग थे, जिनमें मणियाँ जड़ी हुईं थीं।

देवर्षि नारद जी ने देखा कि भगवान श्री कृष्ण उस महल में रुक्मिणी के साथ बैठे हुए हैं। दासियाँ सोने की डंडियों वाली चँवर से हवा कर रहीं थीं। नारद जी को देखते ही भगवान श्री कृष्ण रुक्मिणी के पलंग से उठे और उन्हें प्रणाम कर बैठने के लिए आसन प्रदान किया। भगवान श्री कृष्ण ने स्वयं उनके चरणों को पखारा और चरणामृत अपने सिर पर धारण किया। नारद जी ने प्रभु श्री कृष्ण से प्रार्थना की कि आप मुझ पर ऐसी कृपा कीजिए कि आपके चरण कमलों की स्मृति सदैव बनी रहे और मैं चाहे जहाँ, जैसा भी रहूँ और उनके ध्यान में तन्मय रहूँ।

इसके बाद वे भगवान श्री कृष्ण की योगमाया का रहस्य जानने के लिए उनकी दूसरी पत्नी के महल में गए। वहाँ उन्होंने देखा कि भगवान श्री कृष्ण अपनी

प्राणप्रिया पत्नी और उद्धव जी के साथ चौसर खेल रहे हैं। वहाँ भी भगवान श्री कृष्ण ने खड़े होकर उनका स्वागत किया बैठने के लिए आसन प्रदान किया और विविध सामग्रियों से उनकी पूजा अर्चना की।

वे वहाँ से उठकर चुपचाप दूसरे महल में चले गए। वहाँ पर भी उन्होंने देखा कि भगवान श्री कृष्ण अपने नन्हें-नन्हें बच्चों को प्यार कर रहे हैं। वहाँ से उठकर वे तीसरे महल में गए तो क्या देखते हैं कि भगवान श्री कृष्ण स्नान की तैयारी कर रहे हैं। इस प्रकार देवर्षि नारद ने विभिन्न महलों में भगवान श्री कृष्ण को विभिन्न कार्य करते पाया। कहीं वे यज्ञ कर रहे हैं, तो कहीं पंच महायज्ञ से देवताओं की आराधना कर रहे हैं, तो कहीं ब्राह्मणों को भोजन करा रहे हैं, तो कहीं यज्ञ का अवशेष स्वयं ग्रहण कर रहे हैं, कहीं सन्ध्या कर रहे हैं, तो कहीं मौन होकर गायत्री का जाप कर रहे हैं, कहीं हाथों में ढाल-तलवार लेकर उनको चलाने के पैंतरे बदल रहे हैं। कहीं घोड़े, हाथी या रथ पर सवार होकर विचरण कर रहे हैं, कहीं पलँग पर सो रहे हैं, तो कहीं बंदीजन उनकी स्तुति कर रहे हैं। किसी महल में उद्धव आदि मंत्रियों के साथ गहन विचार-विमर्श कर रहे हैं, तो कहीं उत्तमोत्तम वीरांगनाओं के साथ जल क्रीड़ा कर रहे हैं, कहीं पर वस्त्राभूषणों से सुसज्जित गौओं को ब्राह्मणों को दान कर रहे हैं, कहीं मंगलमय इतिहास पुराणों का श्रवण कर रहे हैं, कहीं किसी पत्नी के महल में बातें करते-करते हँस रहे हैं, तो कहीं धर्म का

सेवन कर रहे हैं, कहीं अर्थ का सेवन कर रहे हैं, तो कहीं धन संग्रह और धन वृद्धि के कार्य में लगे हुए हैं, कहीं धर्मानुकूल गृहस्थोचित विषयों का उपभोग कर रहे हैं, कहीं एकान्त में बैठकर प्रकृति से अतीत पुराण पुरुष का ध्यान कर रहे हैं, तो कहीं गुरुजनों को इच्छित भोग सामग्री समर्पित करके उनकी सेवा शुश्रूषा कर रहे हैं।

देवर्षि नारद जी ने देखा कि भगवान श्री कृष्ण किसी के साथ युद्ध की बात कर रहे हैं, तो किसी के साथ सन्धि की बात कर रहे हैं, कहीं बलराम जी के साथ बैठकर सत्पुरुषों के कल्याण के बारे में विचार कर रहे हैं, कहीं उचित समय पर पुत्र और पुत्रियों का उनके सदृश पत्नी और वरों के साथ बड़ी धूमधाम से विधिवत् विवाह कर रहे हैं, कहीं घर से कन्याओं को विदा कर रहे हैं, तो कहीं बुलाने की तैयारी में लगे हुए है, कहीं बड़े-बड़े यज्ञों के द्वारा अपनी कलारूप देवताओं का यजन-पूजन और कहीं कुँए, बगीचे, मठ आदि बनवाकर धर्म का आचरण का रहे हैं, कहीं श्रेष्ठ यादवों से घिरे हुए सिन्धु देशीय घोड़े चढ़कर मृग का शिकार कर रहे हैं, कहीं प्रजा में तथा अन्तपुर के महलों में वेष बदलकर छिपे रूप से सबका अभिप्राय जानने के लिए विचरण कर रहे हैं।

नारद जी भगवान की योगमाया देखकर आश्चर्य चकित रह गए और मुस्कराते हुए भगवान से जाने की आज्ञा माँगी। भगवान ने कहा— मेरे प्यारे पुत्र! तुम मेरी

यह योगमाया देखकर मोहित मत होना। आपने मुझे प्रत्येक पत्नी के महल में अलग-अलग देखा है। अब आपका भ्रम मिट गया होगा। भगवान की योगमाया का परम ऐश्वर्य बार-बार देखकर देवर्षि नारद के विस्मय और कौतूहल की सीमा न रही। महर्षि नारद अत्यन्त प्रसन्न होकर भगवान का स्मरण करते हुए वहाँ से चले गए।



५०. जरासंध के कैदी राजाओं के दूत का आना, भगवान का इन्द्रप्रस्थ को पधारना

श्री शुकदेव जी ने कहा— परीक्षित! भगवान श्री कृष्ण दैनिक क्रियाओं को करके प्रतिदिन समस्त यदुवंशियों के साथ सुधर्मा नाम की सभा में प्रवेश करते थे तथा राजनीतिक बातों पर चर्चा किया करते थे। एक दिन की बात है कि उनकी सभा मे एक नया मनुष्य आया। उसने भगवान श्री कृष्ण को नमस्कार किया और उन राजाओं को जिन्होंने जरासंध के दिग्विजय के समय उसे सिर नहीं झुकाया था और बलपूर्वक कैद कर लिए गए थे, जिनकी संख्या लगभग बीस हज़ार थी, जरासंध के बन्दी बनने का दुःख वर्णन किया— भगवन! जरासंध के बंदी राजाओं ने अपने को मुक्त कराने के लिए आपसे प्रार्थना की है। आप कृपा करके उन दीनों का कल्याण करें।

राजाओं का दूत निवेदन कर ही रहा था कि उसी समय देवर्षि नारद जी वहाँ पधारे। भगवान श्री कृष्ण ने उठकर उनका स्वागत किया। भगवान श्री कृष्ण ने नारद जी से पूछा— युधिष्ठिर आदि पाण्डव इस समय क्या करना चाहते हैं ?

देवर्षि नारद जी ने बताया— राजा युधिष्ठिर श्रेष्ठ राज- सूय यज्ञ के द्वारा आपकी प्राप्ति के लिए आपकी आराधना करना चाहते हैं। आप कृपा करके उनकी इस अभिलाषा का अनुमोदन कीजिए। उस श्रेष्ठ यज्ञ में आपका दर्शन करने के लिए बड़े-बड़े देवता और यशस्वी राजा एकत्र होंगे।

सभा में बैठे हुए यदुवंशियों ने कहा— राजसूय यज्ञ तब ही पूर्ण हो सकता है जब दसों दिशाओं में विजय प्राप्त कर ली जाए। इस पर सहमत होकर यह तय किया गया कि भीमसेन अकेला द्वन्द्व युद्ध करके जरासंध को हरा देगा। भीमसेन ब्राह्मण के वेष में उसके यहाँ पहुँचकर उसके मल्लयुद्ध करने की भीख माँगी।

इसके बाद भगवान श्री कृष्ण ने राजा उग्रसेन और बलराम जी से आज्ञा लेकर बाल-बच्चों के साथ रानियों और उनके सब सामान को आगे भेज दिया। फिर दारुक के लाए हुए गरुड़ ध्वज रथ पर सवार होकर इन्द्रप्रस्थ के लिए चल दिए। उनके पीछे रथों, हाथियों, घुड़सवारों और पैदल सैनिकों का काफिला चल दिया। इसके बाद भगवान श्री कृष्ण ने जरासंध के बन्दी राजाओं के दूत को आश्वासन देते हुए कहा— तुम अपने राजाओं से

जाकर कहना डरो मत। मैं जरासंध को मरवा डालूँगा।

जब महाराज युधिष्ठिर को यह समाचार मिला कि भगवान श्री कृष्ण पधार रहे हैं तब उनके शरीर का रोम-रोम खिल उठा। वे अपने आचार्यों और स्वजन सम्बन्धियों के साथ भगवान की अगवानी के लिए नगर के बाहर आए। युधिष्ठिर भगवान श्री कृष्ण को बार-बार अपने हृदय से लगाने लगे। तद्नन्तर भीमसेन ने मुस्कराकर भगवान श्री कृष्ण का आलिंगन किया। नकुल, सहदेव और अर्जुन ने भी भगवान श्री कृष्ण का आलिंगन किया।

भगवान श्री कृष्ण ने खाण्डव वन का दाह करवाकर अग्नि को तृप्त किया और मायासुर को उससे बचाया। उस मायासुर ने ही धर्मराज युधिष्ठिर के लिए भगवान श्री कृष्ण की आज्ञा से एक दिव्य सभा भवन तैयार कराया।



५७. पाण्डवों के राजसूय यज्ञ का प्रयास और जरासंध का उद्धार, बंदी राजाओं की रिहाई

श्री शुकदेव जी कहते हैं कि भगवान श्री कृष्ण की सम्मति से युधिष्ठिर का हृदय आनन्द से भर गया और अपने भाइयों को दिग्विजय करने का आदेश दिया। सब व्यक्तियों को अलग-अलग दिशाओं में राजाओं को

जीतने के लिए भेज दिया गया। भीमसेन ने अपने बल पौरुष से बहुत से राजाओं को जीत लिया और यज्ञ सम्पन्न करने हेतु बहुत सा धन लाकर दिया।

युधिष्ठिर ने सुना कि जरासंध पर विजय प्राप्त नहीं की जा सकती। तब वे चिन्ता में पड़ गए। भगवान श्री कृष्ण ने उद्धव जी द्वारा बताया गया उपाय उन्हें बताया। इसके बाद भीमसेन, अर्जुन और श्री कृष्ण ब्राह्मण का वेष धारण कर जरासंध की राजधानी गिरिव्रज गए। श्री कृष्ण ने जरासंध से कहा— हम तीनों आपके अतिथि हैं। हम आपसे कुछ चाहते हैं। वह हमें आप अवश्य दीजिए।

जरासंध ने उन्हें पहचान लिया कि ये क्षत्रिय हैं। भिक्षा माँगने पर उतारू हो गए हैं। मैं इन्हें भिक्षा अवश्य दूँगा। वह बोला— आपको भिक्षा में क्या चाहिए? उन्होंने कहा— हमें द्वन्द्व युद्ध की भिक्षा दीजिए। जरासंध ने कहा— अच्छा! मैं भीमसेन से द्वन्द्व युद्ध करूँगा। जरासंध ने एक गदा स्वयं ले ली और दूसरी गदा भीमसेन को थमा दी। तरह-तरह से पैंतरे बदल-बदल कर एक-दूसरे पर वार करते रहे। अन्त में गदाएँ टूटकर चूर-चूर हो गईं। सत्ताइस दिन तक द्वन्द्व युद्ध होता रहा। २८वें दिन भीमसेन ने भगवान श्री कृष्ण से कहा— मैं जरासंध को जीतने में असमर्थ हूँ।

भगवान श्री कृष्ण जरासंध की मृत्यु का रहस्य जानते थे। जरासंध के शरीर के दो टुकड़ों को जरा नाम की राक्षसी ने जोड़कर जीवन दान दिया था। भगवान ने

भीमसेन को उसके वध का भेद बतला दिया। भगवान श्री कृष्ण का अभिप्राय समझकर जरासंध को पैर से पकड़ कर पृथ्वी पर पटका दिया और उसकी टाँग पर टाँग रखकर उसके शरीर के बीच में से दो टुकड़े कर दिए। लोगों ने देखा कि जरासंध के शरीर के दो टुकड़े हो गए हैं। भगवान श्री कृष्ण ने उसके पुत्र सहदेव का राजसिंहासन पर अभिषेक कर दिया और जरासंध ने जिन राजाओं को कैदी बना रखा था उन्हें कारागार से मुक्ति दिला दी। उन राजाओं ने भगवान श्री कृष्ण के चरणों पर अपना सिर रखकर प्रणाम किया। श्री कृष्ण ने उनसे कहा— सावधानीपूर्वक मन और इन्द्रियों को वश में रखकर यज्ञों के द्वारा मेरा भजन करो और धर्म के रास्ते पर चलकर प्रजा की रक्षा करो।

भगवान श्री कृष्ण इसके बाद भीमसेन और अर्जुन को साथ लेकर इन्द्रप्रस्थ को चल दिए। नगर के पास पहुँचकर भगवान श्री कृष्ण ने अपना शंख बजाया। जनता ने समझ लिया कि जरासंध मारा गया है। अब युधिष्ठिर का राजसूय यज्ञ करने का संकल्प पूरा हुआ।



५२. भगवान की अग्रपूजा और शिशुपाल का उद्धार

श्री शुकदेव जी कहते हैं— हे परीक्षित! धर्मराज युधिष्ठिर जरासंध का वध और भगवान श्री कृष्ण की

अद्भुत महिमा सुनकर बहुत प्रसन्न हुए। धर्मराज युधिष्ठिर ने भगवान श्री कृष्ण की अनुमति से यज्ञ के योग्य वेदवादी ब्राह्मणों को ऋत्विज, आचार्य आदि के रूप में वरण किया। उनके नाम इस प्रकार थे— श्री कृष्ण द्वैपायन, व्यासदेव, भरद्वाज, सुमन्तु, गौतम, असित, वशिष्ठ, च्यवन, कण्व, मैत्रेय, कवष, त्रित, विश्वामित्र, वामदेव, सुमति, जैमिनी, क्रतु, पैल, पराशर, गर्ग, वैशम्पायन, अथर्वा, कश्यप, धौम्य, परशुराम, शुक्राचार्य, आसुरि, वीतिहोत्र, मधुच्छन्दा, वीरसेन और अकृतव्रणा। इनके अतिरिक्त धर्मराज युधिष्ठिर ने द्रोणाचार्य, भीष्मपितामह, कृपाचार्य, धृतराष्ट्र और उनके समस्त पुत्रों और विदुर आदि को भी बुलवाया। राजसूय यज्ञ के दर्शन हेतु देश के सब राजा, उनके मंत्री तथा कर्मचारी, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र सब वहाँ आए।

ऋत्विज ब्राह्मणों ने स्वर्ण से निर्मित हलों से यज्ञ भूमि को जुतवाकर राजा युधिष्ठिर को शास्त्रानुसार यज्ञ की दीक्षा दी। प्राचीन काल में जिस प्रकार वरुण देव के यज्ञ में सब यज्ञपाल स्वर्ण के बने हुए थे, उसी प्रकार इस यज्ञ में सब पात्र स्वर्ण के थे। पाण्डुनन्दन महाराज युधिष्ठिर के यज्ञ में निमंत्रण पाकर ब्रह्माजी, भगवान शिव, इन्द्रादि लोकपाल, अपने गणों के साथ सिद्ध और गन्धर्व, विद्याधर, नाग, मुनि, यक्ष, राक्षस, पक्षी, किन्नर, चारण, बड़े-बड़े राजा और रानियाँ सब उपस्थित हुए।

अब सभासद लोग इस विषय पर विचार करने लगे

कि सबसे पहले किसकी पूजा हो ? सर्व सम्मति न होने पर सहदेव ने कहा— यदुवंश शिरोमणि भगवान श्री कृष्ण की अग्रपूजा होनी चाहिए। सबने सहदेव की बात का समर्थन किया। इस पर युधिष्ठिर ने भगवान श्री कृष्ण की अग्रपूजा की। आकाश से स्वतः फूलों की वर्षा होने लगी।

शिशुपाल भगवान श्री कृष्ण के गुण सुनकर क्रोधित हो गया और खड़ा होकर बोला— श्री कृष्ण अग्रपूजा के योग्य कैसे हो सकता है ? उसने मनमानी गालियाँ देने शुरू कर दीं। वह जितनी बुराई कर सकता था, उसने जी भरकर बुराई की। सबने उसे धिक्कारा और कई राजा हथियार लेकर उठ खड़े हुए। उन राजाओं को लड़ते-झगड़ते देख भगवान श्री कृष्ण उठकर खड़े हो गए और सब राजाओं को शान्त किया और स्वयं क्रोध में भरकर अपने सुदर्शन चक्र से शिशुपाल का सिर धड़ से अलग कर दिया।

शिशुपाल की मृत्यु पर उसके अनुयायी राजा प्राण बचाकर भाग गए। सबके देखते देखते शिशुपाल के शरीर से एक ज्योति निकल कर भगवान श्रीकृष्ण में समा गई। इस प्रकार भगवान श्री कृष्ण ने धर्मराज युधिष्ठिर का राजसूय यज्ञ पूर्ण किया। भगवान श्री कृष्ण कुछ महीने वहाँ रहे और फिर युधिष्ठिर से अनुमति लेकर अपनी रानियों और मंत्रियों के साथ द्वारिकापुरी लौट आये। सब राजे महराजे तो प्रसन्न हुए, परन्तु दुर्योधन को पाण्डवों का उत्कर्ष सहन न हुआ क्योंकि वह स्वभाव

से ही पापी, कलह प्रेमी और कुरुकुल का नाश करने के लिए एक महान रोग था।



५३. शाल्व के साथ यादवों का युद्ध, शाल्व का उद्धार

शाल्व शिशुपाल और जरासंध का मित्र था। रुक्मिणी के विवाह के अवसर पर वह बारात में शिशुपाल की ओर से आया था। यदुवंशियों ने शाल्ब और जरासंध को युद्ध में हरा दिया था। उस दिन उसने सब राजाओं के सामने प्रतिज्ञा की थी— मैं पृथ्वी से यदुवंशियों को मिटाकर छोड़ूँगा। उसने भगवान शंकर की तपस्या करके उनसे एक ऐसा रथ प्राप्त किया जिसे कोई नष्ट न कर सके। शाल्व ने वह विमान प्राप्त कर द्वारिका पर आक्रमण कर दिया। प्रद्युम्न, सात्यकि, चारुदेष्ण, साम्ब, अक्रूर, कृतवर्मा, मातुविन्द, सारण, शुक गद आदि युद्ध के लिए निकल पड़े। प्रद्युम्न ने क्षण भर में शाल्व की माया काट डाली। यदुवंशियों के बाणों से शाल्व मूर्छित होकर गिर पड़ा। शाल्व के मंत्री का नाम द्युमान था। उसने अपनी गदा से प्रद्युम्न को मूर्छित कर दिया। सारथी प्रद्युम्न को युद्ध भूमि से हटाकर हाथ मुँह धुलाकर फिर से रथ पर चढ़ाकर लड़ने के लिए द्युमान के सामने ले आया। इस प्रकार शाल्व और यदुवंशियों के बीच २७ दिन तक भयंकर लड़ाई होती रही।

युधिष्ठिर का यज्ञ पूरा कराकर जब भगवान श्री

कृष्ण द्वारिका पहुँचे तो उन्हें युद्ध का समाचार प्राप्त हुआ। तब भगवान ने बलराम जी को नगर की रक्षा के लिए नियुक्त किया और अपने सारथी दारुक से कहा— रथ को शाल्व के पास ले चलो। भगवान श्री कृष्ण ने शाल्व को सोलह बाणमोर और उसके विमान को भी जो आकाश में घूम रहा था, असंख्य बाणों से छलनी कर दिया। शाल्व ने भगवान श्री कृष्ण की बाईं भुजा में जिसमें शार्ङ्गधनुष था बाण मारा, जिससे वह धनुष नीचे गिर पड़ा। यह एक अद्भुत घटना थी। इससे क्रोधित होकर उन्होंने अपनी गदा से शाल्व की हँसली पर प्रहार किया। इससे वह खून की उल्टियाँ करने लगा। इधर जब गदा उनके पास लौट आई तो वह अन्तर्धान हो गया।

शाल्व एक आदमी का वेष धारण कर भगवान श्री कृष्ण के पास आकर बोला— शाल्व तुम्हारे पिताश्री को बाँधकर ले गया है। थोड़ी देर बाद मायावी शाल्व एक आदमी को वासुदेव के रूप में ले आया। भगवान श्री कृष्ण को अन्तर्मन से ज्ञात हुआ कि यह मायावी वासुदेव का रूप धरकर आया है। तब भगवान श्री कृष्ण में माया रचित वसुदेव जी का सिर काट दिया। शाल्व फिर आकाश में जाकर छिप गया। भगवान श्री कृष्ण ने अपने चक्र से शाल्व का सिर काट डाला। ठीक उसी समय दन्तवक्त्र जो शिशुपाल का मित्र था बदला लेने आ गया।

५४. दन्तवक्त्र और विदूरथ का उद्धार

श्री शुकदेव जी कहते हैं— हे परीक्षित! शिशुपाल, शाल्व और पौण्ड्रक के मारे जाने पर उनकी मित्रता का फल चुकाने के लिए दन्तवक्त्र अकेला ही पैदल युद्ध भूमि में आ धमका। शस्त्र के रूप में उसके हाथ में केवल गदा थी। भगवान श्री कृष्ण ने जब उसे इस प्रकार आते देखा तो वे हाथ में गदा लेकर रथ से नीचे कूद पड़े। दन्तवक्त्र श्री कृष्ण से बोला—तुम मेरे ममेरे भाई हो, इसलिए तुम्हें मारना तो नहीं चाहिए, परन्तु तुमने मेरे मित्रों का वध कर दिया है और मुझे भी मार डालना चाहते हो। इसलिए आज मैं अपनी गदा से तुम्हारे शरीर के टुकड़े-टुकड़े कर डालूँगा।

दन्तवक्त्र ने भगवान श्री कृष्ण के सिर पर अपनी गदा से वार किया, परन्तु उनके ऊपर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। भगवान श्री कृष्ण ने इसके उत्तर में अपनी कौमोद की गदा से उसके वक्ष स्थल पर प्रहार किया। गदा की चोट से दन्तवक्त्र का कलेजा फट गया। वह निष्प्राण होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। दन्तवक्त्र के मृत शरीर से एक अत्यन्त सूक्ष्म ज्योति प्रकट हुई और भगवान श्री कृष्ण में समा गई।

दन्तवक्त्र के भाई का नाम विदूरथ था। वह अपने भाइ के मारे जाने पर क्रोध में भरकर हाथ में तलवार लेकर भगवान श्री कृष्ण पर झपटा तो भगवान श्रीकृष्ण ने अपने तीखे धार वाले चक्र से किरीट और कुण्डल

के साथ उसका भी सिर धड़ से अलग कर दिया। इस प्रकार भगवान श्री कृष्ण ने शाल्व, उसके विमान, दन्तवक्त्र और विदूरथ को मारकर द्वारिकापुरी में प्रवेश किया।



५५. बलराम जी की तीर्थ यात्रा बल्वल का उद्धार

बलराम जी ने जब सुना कि कौरवों और पाण्डवों में युद्ध की तैयारी चल रही है तो वे तीर्थों में स्नान करने के उद्देश्य से द्वारिकापुरी से चल दिए। पहले उन्होंने प्रभास क्षेत्र में स्नान किया। इसके बाद वे पृथूदक, बिन्दुसार, त्रितकूप, सुदर्शनतीर्थ, ब्रह्मतीर्थ, चक्रतीर्थ और सरस्वती तीर्थ एवं वैमिषारण्य क्षेत्र गए। बलराम जी ने देखा कि रोमहर्षण जी सूत जाति में पैदा होने पर ब्राह्मणों से ऊँचे आसन पर विराजमान हैं। रोमहर्षण ने उनका स्वागत न तो उठकर किया और न हाथ जोड़कर प्रणाम किया। इस कारण बलराम जी क्रोधित हो गए। उन्होंने अपने हाथ में स्थित कुश की नोक से प्रहार किया। इससे वह तुरन्त मर गया।

ऋषियों ने बलराम जी को बताया कि इल्वल का पुत्र बल्वल एक भयंकर राक्षस है। वह प्रत्येक त्यौहार पर आकर पीबू, खून, मांस, विष्ठा और मूत्र की वर्षा करने लगता है। बलराम जी ने बल्वल को ललकारा।

उनके ललकारने पर वह हाथ में त्रिशूल धारण कर आया। बलराम जी ने अपने मूसल और हल को स्मरण किया। उनके दोनों अस्त्र उपस्थित हो गए। बलराम जी ने अपने हल से उसके खींचकर मूसल को उसे सिर पर दे मारा। उसका ललाट फट गया और वह खून उगलता हुआ धरती पर धराशायी हो गया।

बलराम जी के इस कार्य से प्रसन्न होकर ऋषियों ने उन्हें दिव्य वस्त्र और आभूषण भेंट किए। एक वैजयन्ती माला भी प्रदान की। ऋषियों से अनुमति लेकर वे यात्रा के लिए चल पड़े। उन्होंने प्रमुख-प्रमुख तीर्थों में जाकर स्नान किया।

अन्त में जिस दिन भीमसेन व दुर्योधन युद्ध भूमि में गदा युद्ध में व्यस्त थे उसी समय उन्हें रोकने के लिए बलराम जी कुरुक्षेत्र में पहुँचे। पाँचों पाण्डवों और भगवान श्री कृष्ण ने बलराम जी को प्रणाम किया। बलराम जी ने गदा युद्ध को रोकने का प्रयास किया। परन्तु उसका प्रयास व्यर्थ गया। तब बलराम जी द्वारिका लौट गए। द्वारिका में उग्रसेन आदि गुरुजनों तथा सम्बन्धियों ने प्रेमपूर्वक उनका स्वागत खड़े होकर किया।



५६. श्रीकृष्ण द्वारा सुदामा जी का स्वागत

श्री शुकदेव जी कहते हैं— हे परीक्षित! एक ब्राह्मण भगवान श्री कृष्ण के परम मित्र थे। उनका नाम था

सुदामा। वे बड़े ब्रह्मज्ञानी विषयों से विरक्त और जितेन्द्रिय थे। वे गृहस्थ होने पर भी किसी प्रकार का संग्रह-परिग्रह न रखकर जो कुछ मिल जाता उसी से संतुष्ट रहते थे। उनके वस्त्र फटे-पुराने रहते थे तथा उनकी पत्नी के भी वस्त्र इसी तरह रहते थे। वह भी अपने पति की तरह भूख से दुबली हो गई थी।

एक दिन उसने अपने पतिदेव से कहा— भगवान! श्री कृष्ण आपके सखा हैं। वे भक्त वाञ्छाकल्पतरु शरणागत वत्सल और ब्राह्मणों के भक्त हैं। आप उनके पास जाइए। जब उनकी पत्नी ने सुदामा से कई बार नम्रता से प्रार्थना की तब उन्होंने अपने हृदय में सोचा कि धन की तो कोई बात नहीं, परन्तु भगवान श्री कृष्ण के दर्शनों हेतु अवश्य जाना चाहिए। वह अपनी पत्नी से बोले— कल्याणी! घर में कुछ भेंट देने योग्य वस्तु भी है क्या ? यदि हो तो दे दो।

तब उस ब्राह्मणी ने पड़ोस के ब्राह्मणों के घर से चार मुट्ठी चिवड़े माँगकर एक कपड़े में बाँध दिए और भगवान को भेंट देने के लिए दे दिए। इसके बाद सुदामा उन चिवड़ों को लेकर द्वारिका के लिए चल पड़े। वहाँ पहुँचकर दरबानों से सुदामा जी ने कहा— हम भगवान श्री कृष्ण से मिलना चाहते हैं। एक द्वारपाल ने भगवान श्री कृष्ण को सूचना दी— एक व्यक्ति आपसे मिलना चाहता है और अपना नाम सुदामा बता रहा है।

सुदामा का नाम सुनकर भगवान सहसा उठ खड़े हुए और उसके पास आकर उन्हें अपनी भुजाओं में बाँध

लिया और इतने आनन्दित हुए कि उनके नेत्रों से प्रेमाक्षु बहने लगे। भगवान श्री कृष्ण ने सुदामा जी को अपने पास बैठाया और स्वयं उनके पदों को पखारा तथा उसके चरणोदक को अपने सिर पर धारण किया। उनके शरीर पर चन्दन, अरगजा, केसर आदि दित्य गंधों का लेप किया। उनकी आरती उतारी। इसके पश्चात् भगवान श्री कृष्ण ने पूछा— भाभी ने मेरे लिए क्या उपहार भेजा है? भगवान श्री कृष्ण के पूछने पर लज्जावश उन्होंने लक्ष्मपति को वे चार मुट्टी चिवड़े नहीं दिए। भगवान उनके हृदय की बात समझ गए। उन्होंने उसके वस्त्र में से चिथड़े की एक पोटली में बंधा हुआ चिउडा यह क्या है? ऐसा कहकर स्वयं ही छीन लिया और बड़े आदर से कहने लगे— प्यारे मित्र! यह तो तुम मेरे लिए अत्यन्त प्रिय भेंट लाए हो। ये चिवड़े न केवल मुझे बल्कि सारे संसार को तृप्त करने के लिए पर्याप्त हैं।

इतना कहकर वे उसमें से एक मुट्ठी चिवड़ा खा गए और दूसरी मुट्ठी ज्यों ही भरी, त्यों ही रुक्मिणी जी ने उनका हाथ पकड़ लिया और बोलीं— एक मुट्ठी चिवड़ा ही बहुत है क्योंकि आपके लिए इतना ही प्रसन्नता का हेतु बन जाता है।

सुदामा उस रात भगवान श्री कृष्ण के महल में रहे। श्री कृष्ण से ब्राह्मण देवता को प्रत्यक्ष रूप में कुछ प्राप्त नहीं हुआ, परन्तु उन्होंने उनसे कुछ भी नहीं माँगा। दूसरे दिन विदा लेकर घर को चल दिए। मन ही मन में विचार करते हुए सुदामा अपने घर के पास पहुँच गए।

वे वहाँ देखते हैं कि सारा स्थान सूर्य, अग्नि और चन्द्रमा के समान महलों से घिरा हुआ है। ठौर-ठौर पर उपवन और उद्यान बने हुए हैं। उस स्थान को देखकर सुदामा सोचने लगे— मैं यह क्या देख रहा हूँ? यह किसका स्थान है? यदि यह वही स्थान है जहाँ मैं रहता था तो यह ऐसा कैसे हो गया? पति देव का शुभागमन सुनकर उनकी पत्नी को अपार आनन्द हुआ और हडबड़ाकर जल्दी-जल्दी घर से निकल आई। वह ऐसी लग रही थी मानो लक्ष्मी जी ही कमल वन से पधारी हों। पतिदेव को देखते ही पत्नी के नेत्रों में प्रेमाश्रु छलक आए। सुदामा जी ने अपनी पत्नी के साथ महल में प्रवेश किया। उनका महल क्या था मानो देवराज इन्द्र का निवास स्थान था।

सुदामा मन ही मन सोचने लगे— मैं जन्म से ही भाग्यहीन और दरिद्र हूँ। अवश्य ही परमैश्वर्यशाली भगवान श्री कृष्ण कटाक्ष के अतिरिक्त और कोई कारण नहीं हो सकता। यह सब भगवान श्री कृष्ण की ही देन है। एक मुट्ठी चिवड़ा खाकर मेरी गरीबी समाप्त कर दी। मुझे अब सम्पत्ति की आवश्यकता नहीं है। मेरी इच्छा है कि श्री कृष्ण के चरणों में मेरा अनुराग बढ़ता रहे। अब वे उन्हीं के ध्यान में तन्मय हो गए। ध्यान के आवेग से उनकी अविद्या की गिरह कट गई और उन्होंने थोड़े ही समय में भगवान का धाम, जो कि संतो का एक मात्र आश्रय है, प्राप्त किया।

५८. भगवान श्री कृष्ण, बलराम जी से गोप-गोपियों की भेंट

श्री शुकदेव जी कहते हैं— परीक्षित! एक बार सर्वग्रास सूर्य ग्रहण लगा। जैसा कि प्रलय के समय लगा करता है। सब लोग द्वारिका पुरी से अपने-अपने कल्याण हेतु पुण्य आदि उर्पाजन करने के लिए समन्त पंचक तीर्थ कुरुक्षेत्र में आए। समन्त पंचक वह क्षेत्र है जहाँ शास्त्रधारियों में श्रेष्ठ परशुराम जी ने समस्त पृथ्वी क्षत्रियहीन करके राजाओं की रुधिर धारा से पाँच बड़े-बड़े कुण्ड बना दिए थे। परशुराम जी ने लोक मर्यादा की रक्षा के लिए वहीं पर यज्ञ किया था। उन तीर्थ यात्रियों में अक्रूर, वसुदेव, उग्रसेन आदि बड़े-बूढ़े तथा गद, प्रद्युम्न, साम्ब आदि अन्य यदुवंशी भी अपने-अपने पापों का नाश करने के लिए कुरुक्षेत्र आए थे। प्रद्युम्न नन्दन अनिरुद्ध और यदुवंशी सेनापति कृतवर्मा ये दोनों सुचन्द्र, शुक, सारण आदि के साथ नगर की रक्षा के लिए द्वारिका में रह गए थे। महाभाग्यवान यदुवंशियों ने कुरुक्षेत्र पहुँचकर संयमपूर्वक स्नान किया और निश्चित समय तक उपवास किया। उन्होंने ब्राह्मणों को गौदान, वस्त्रदान तथा आभूषण दान किए।

नन्दबाबा के साथ गोप गोपियाँ भी मथुरा से भगवान श्री कृष्ण के दर्शनों की अभिलाषा से कुरुक्षेत्र में आईं। एक दूसरे के दर्शन से सभी को बड़ा आनन्द प्राप्त हुआ। सभी के हृदय रूपी कमल और मुख कमल खिल

उठे। सब एक-दूसरे को भुजाओं में भरकर हृदय से लगाने लगे। उनके नेत्रों से हर्ष के आँसुओं की झड़ी लग गई।

भगवान श्री कृष्ण और बलराम जी ने माता यशोदा और पिता श्री नन्दबाबा जी के हृदय से लगकर उनके चरणों में प्रणाम किया। जब भगवान श्री कृष्ण ने देखा कि गोपियाँ मुझसे मिलने को व्याकुल हो रहीं हैं तो वे एकान्त में उनसे मिलने गए। उनको हृदय से लगाया, कुशल मंगल पूछने के बाद हँसकर बोले— हम लोगों को शत्रुओं का विनाश करने के लिए ब्रज से बाहर जाना पड़ा। बहुत दिन व्यतीत हो गए। क्या तुम लोग कभी हमें स्मरण भी करती हो? मेरी प्यारी गोपियों! कहीं तुम लोगों के मन में यह आशंका तो नहीं हो गई कि मैं अकृतज्ञ हूँ। भगवान श्री कृष्ण ने गोपियों को इस प्रकार आत्मज्ञान की शिक्षा से शिक्षित किया। इस उपदेश के बार-बार स्मरण से गोपियों का जीव कोष-लिंग शरीर नष्ट हो गया और वे भगवान से एक हो गईं। भगवान को ही सदा-सदा के लिए प्राप्त हो गईं। अन्त में सब लोगों ने अपने-अपने स्थान को प्रस्थान किया।



५८. पटरानियों से द्रोपदी की बातचीत

श्री शुकदेव जी कहते हैं— परीक्षित! जिस समय लोग भगवान की स्तुति कर रहे थे, उसी समय यादव

और कौरव पाण्डव कुल की स्त्रियाँ एकत्र होकर आपस में भगवान की त्रिभुवन विख्यात लीलाओं का वर्णन कर रहीं थीं। द्रोपदी ने कहा— रुक्मिणी भद्रे! जाम्बवती सत्ये! हे सत्भामे! कालिन्दी! शैव्ये! लक्ष्मणे! रोहिणी! और अन्यान्य श्री कृष्णपत्नियों! तुम लोग हमें यह तो बताओ कि स्वयं भगवान श्री कृष्ण ने अपनी माया से लोगों का अनुकरण करते हुए तुम लोगों का किस प्रकार पाणिग्रहण हुआ।

रुक्मिणी जी ने कहा— द्रोपदी जी! जरासंध आदि सभी राजा चाहते थे कि मेरा विवाह शिशुपाल के साथ सम्पन्न हो, परन्तु भगवान मुझे मेरी इच्छा के अनुसार वैसे हर लाएँ जैसे सिंह बकरियों के झुण्ड से बकरी को छीन ले जाता है।

सत्यभामा ने कहा— द्रोपदी जी! मेरे पिताश्री अपने भाई प्रसेन्न की मृत्यु से बहुत दुःखी थे। उन्होंने उनके वध का कलंक भगवान श्री कृष्ण पर लगाया। उस कलंक को दूर करने के लिए भगवान ने ऋक्षराज जाम्बवान पर विजय प्राप्त करके उस मणि को मेरे पिताश्री को सौंप दी। मेरे पिताश्री इन पर मिथ्या कलंक लगाने के कारण डर गए। यद्यपि वे दूसरे को मेरा वाग्दान कर चुके थे, फिर भी उन्होंने मुझे स्यमन्तक मणि के साथ भगवान के चरणों में अर्पित कर दिया।

जाम्बवन्ती ने कहा— द्रोपदी जी! मेरे पिता ऋक्षराज जाम्बवन को इस बात का ज्ञान न था कि यही मेरे स्वामी भगवान सीता पति हैं। इसलिए वे इनसे २७ दिन

तक युद्ध करते रहे, परन्तु जब परीक्षा पूरी हुई तो मेरे पिताश्री ने जान लिया कि ये भगवान राम ही हैं। तब इनके चरण कमलों में गिरकर स्यमन्तकमणि के साथ उपहार के रूप में मुझे सौंप दिया। मैं भी यही चाहती थी कि जन्म-जन्म इन्हीं की दासी बनी रहूँ।

कालिन्दी ने कहा— हे द्रोपदी! भगवान श्री कृष्ण को ज्ञात था कि मैं उनके चरणों का स्पर्श करने की आशा अभिलाषा से तपस्या कर रही हूँ। तब ये अपने सखा अर्जुन के साथ यमुना तट पर आए और मुझे स्वीकार कर लिया।

मित्रविन्दा ने द्रोपदी से कहा— मेरा स्वयंवर हो रहा था। वहाँ आकर भगवान ने सब राजाओं को जीत लिया। फिर द्वारिका में जाकर मेरे साथ विवाह कर लिया। मेरी भी यही इच्छा थी कि मुझे जन्म-जन्म तक इनके पाँव पखारने का सौभाग्य मिलता रहे।

सत्या ने द्रोपदी जी को बताया— मेरे पिताजी ने मेरे स्वयंवर में आए हुए राजाओं के बल की परीक्षा के लिए बड़े बलवान और पराक्रमी तीखे सींग वाले सात बैल रख रखे थे। उन बैलों ने बड़े-बड़े वीरों का घमंड चूर-चूर कर दिया था। उन बैलों को भगवान ने खेल-खेल में ही झपटकर पकड़ लिया और नाथ दिया। इस प्रकार भगवान ने मेरे पिताश्री की प्रतिज्ञा पूरी की तथा मेरे साथ विवाह कर द्वारिका ले आए। मेरी यही अभिलाषा है कि मुझे इन की सेवा का अवसर सदा-सर्वदा प्राप्त होता रहे।

भद्रा ने द्रोपदी जी को बताया— भगवान मेरे मामा के पुत्र हैं। मेरा चित्त इन्हीं के चरणों में अनुरक्त हो गया था। जब मेरे पिताजी को यह बात पता चली तब उन्होंने स्वयं ही भगवान को बुलाकर अक्षौहिणी सेना और बहुत-सी दासियों के साथ मुझे इन्हीं के चरणों में समर्पित कर दिया। मैं अपना परम कल्याण इसी में समझती हूँ कि कर्म के अनुसार मुझे जहाँ-जहाँ जन्म लेना पड़े, सर्वत्र इन्हीं के चरण कमलों का स्पर्श प्राप्त होता रहे।

लक्ष्मा जी ने द्रोपदी जी को बताया— जिस प्रकार मछली को भेदकर अर्जुन ने आपको प्राप्त किया था, उसी प्रकार भगवान श्री कृष्ण ने मत्स्य को बेधकर मुझे प्राप्त किया है।

रोहिणी जी ने द्रोपदी जी से कहा— भौमासुर ने दिग्विजय के समय बहुत से राजाओं को जीतकर उनकी कन्याओं को अपने महल में कैद कर रखा था। भगवान ने यह सुनकर युद्ध में भौमासुर और उसकी सेना का संहार कर डाला और स्वयं पूर्णकाम होने पर भी उन्होंने हम लोगों को वहाँ से छुड़ाया तथा पाणिग्रहण करके अपनी दासियाँ बना लिया। रानी जी! हम सदा-सर्वदा उनके उन्हीं चरण कमलों का चिन्तन करती रहतीं थीं। जो जीवन-मृत्यु रूपी संसार से मुक्त कराने वाले हैं। तभी तो हम इस जन्म में आत्मा राम भगवान श्री कृष्ण की ही गृह दासियाँ बनीं।



५९. वसुदेव जी का यज्ञ, देवकी के छह पुत्रों को लाना

श्री शुकदेव जी कहते हैं— परीक्षित! वसुदेव जी ने यज्ञ की दीक्षा प्राप्त की। वसुदेव जी को देवकी आदि अठारह पत्नियों के साथ अभिषेक कराया गया। वसुदेव जी ने मृग चर्म धारण किया। ऋत्विजों ने धर्मपूर्वक और विधि-विधान से यज्ञ कराया। अन्त में सबको भोजन कराया। ब्राह्मणों को दक्षिणा में गौए, वस्त्र और आभूषण देकर सम्मानित किया। इसके बाद नन्दबाबा ने बन्धु बान्धवों को बहुमूल्य आभूषण, रेशमी कपड़ों से सम्मानित किया। वसुदेव जी, उग्रसेन, श्री कृष्ण और बलराम जी तथा उद्धव जी आदि ने अलग-अलग भेटें दीं। इसके पश्चात् नन्दबाबा ने अपने ब्रज को प्रस्थान किया। भगवान श्री कृष्ण ने भी द्वारिका के लिए तैयारी की।

श्री शुकदेव जी कहते हैं कि वसुदेव जी के वचन सुनकर श्रीकृष्ण जी बोले— पिताश्री! हम तो आपके पुत्र हैं। हमें लक्ष्य करके आपने ब्रह्मज्ञान का उपदेश दिया। हम आपकी एक-एक बात युक्ति युक्त मानते हैं। सारा संसार जैसा आपने कहा वैसा ही मानते हैं। सबको ब्रह्मरूप समझना चाहिए। उसी प्रकार आत्मा में भी उपाधियों के भेद से नाना प्रकार के तत्त्व प्रतीत होते हैं। इस दृष्टि से आपका कथन सही है।

देवकी ने कहा— भगवन्! श्री कृष्ण तुम योगेश्वरों

के भी ईश्वर हो। मैंने सुना है तुमने अपने गुरु सान्दीपनि जी के पुत्रों को यमपुरी से लाकर उन्हें सौंप दिया था। इसलिए मेरी भी अभिलाषा पूर्ण करो।

माता देवकी बात सुनकर भगवान श्री कृष्ण और बलराम ने योगमाया का आश्रय लेकर सुतल लोक में गए। वहाँ बलि ने उन्हें देखा। उसने उठकर भगवान के चरणों में प्रणाम किया। उनके चरण पखारकर उनका चरणोदक सिर पर धारण किया। भगवान श्री कृष्ण ने बलि से कहा— दैत्यराज! स्वायम्भुव मन्वन्तर में प्रजापति मरीचि की पत्नी ऊर्णा के गर्भ से छह पुत्र उत्पन्न हुए थे। वे सभी देवता थे। वे यह देखकर कि ब्रह्माजी अपनी पुत्री के समागम करने के लिए उद्यत हुए तो वे हँसने लगे। इसी परिहास के कारण उन्हें ब्रह्माजी ने शाप दे दिया और वे असुर योनियों में हिरण्यकशिपु के पुत्र रूप से उत्पन्न हुए। अब योगमाया ने उन्हें वहाँ से लाकर देवकी के गर्भ में रख दिया। उनके उत्पन्न होते ही कंस ने उन्हें मार दिया। वे पुत्र आपके पास हैं। हमारी माता देवकी पुत्रों के लिए अत्यन्त शोकातुर हैं। हम माता का शोक दूर करने के लिए यहाँ पधारे हैं। उनके नाम स्मर, उद्गीथ, परिष्वंग, पतंग, क्षुद्रभृत और घृणि हैं। उन्हें मेरी कृपा से सदगति प्राप्त हो जाएगी। बलि ने उनकी पूजा की। भगवान उन छः बच्चों को लेकर द्वारिका लौट आए। माता देवकी को उन्हें सौंप दिया। उन बालकों ने माता का अमृतमय दूध पिया। उस दूध के पीने से तथा भगवान के अंगों का स्पर्श पाकर उन्हें आत्मसाक्षात्कार

हो गया।

इसके बाद उन पुत्रों ने भाई श्री कृष्ण, माता देवकी, पिता वसुदेव और बलराम जी को नमस्कार किया। तदनन्तर सबके सामने वे देवलोक को चले गए। देवकी देखकर चकित हो गई कि मृत्यु को प्राप्त हुए बालक फिर चले गए। उन्होंने सोचा कि भगवान की लीला अपरम्पार है।



६०. सुभद्रा हरण और भगवान का राजा जनक और श्रुतदेव के घर जाना

श्री शुकदेव जी कहते हैं कि एक बार अर्जुन तीर्थयात्रा के लिए पृथ्वी पर विचरण करते हुए प्रभास क्षेत्र पहुँचे। वहाँ उन्होंने सुना कि बलराम जी मेरे मामा की पुत्री सुभद्रा का विवाह दुर्योधन के साथ कराना चाहते हैं। परन्तु वसुदेव व श्री कृष्ण आदि उनसे इस विषय में सहमत नहीं है। अब सुभद्रा को पाने की अर्जुन के मन में लालसा जाग्रत हो गई। वे त्रिदण्डी वैष्णव का वेष बनाकर द्वारिका पहुँचे। अर्जुन सुभद्रा को प्राप्त करने की इच्छा से द्वारिका में चार माह तक रहे। एक दिन बलराम जी ने उन्हें आतिथ्य के लिए निमंत्रित किया। त्रिदण्डी वेषधारी अर्जुन को श्रद्धापूर्वक भोजन कराया, परन्तु बलराम जी उन्हें नहीं पहचान सके कि यह अर्जुन है। अर्जुन ने भोजन के समय सुभद्रा को देखा। उसका

सौन्दर्य बड़े-बड़े वीरों का मन हरने वाला था। अर्जुन ने सुभद्रा को पत्नी बनाने का दृढ़ निश्चय कर लिया। अर्जुन को देखकर सुभद्रा ने भी मन ही मन उन्हें पति बनाने का निश्चय कर लिया।

एक बार सुभद्रा देव दर्शन के लिए रथ पर सवार होकर द्वारिका से बाहर निकली। उसी समय महारथी अर्जुन ने देवकी वसुदेव और श्री कृष्ण की अनुमति से सुभद्रा का हरण कर लिया। रथ पर सवार होकर वीर अर्जुन ने धनुष उठा लिया और जो सैनिक उन्हें रोकने को आए, उन्हें मार-पीटकर भगा दिया। यह समाचार सुनकर बलराम जी बहुत बिगड़े। भगवान श्री कृष्ण तथा अन्य सुहृद सम्बन्धियों ने उनके पैर पकड़कर उन्हें बहुत तरह से समझाया। तब वे शान्त हुए। इसके बाद बलराम जी ने प्रसन्न होकर वर-वधू के लिए बहुत-सा धन, सामग्री, हाथी, रथ, घोड़े और दास-दासी दहेज में दिए।

श्री शुकदेव जी कहते हैं कि विदेह की राजधानी मिथिला में एक गृहस्थ ब्राह्मण थे। उनका नाम था श्रुतदेव। वे भगवान श्रीकृष्ण के परम भक्त थे। वे गृहस्थाश्रम में रहते हुए भी किसी प्रकार का उद्योग नहीं करते थे। जो कुछ मिल जाता उसी से अपना निर्वाह कर लेते थे। उस देश के राजा बहुलाश्व भी भगवान श्री कृष्ण के अनन्य भक्त थे।

एक बार भगवान श्री कृष्ण दोनों पर प्रसन्न होकर द्वारिका से रथ पर सवार होकर विदेह देश गए। भगवान

के साथ नारद, वामदेव, अत्रि, वेदव्यास, परशुराम, असित, आरुणि, शुकदेव, बृहस्पति, कण्व, मैत्रेय, च्यवन, आदि ऋषि भी थे।

भगवान श्री कृष्ण श्रृतदेव के यहाँ महात्माओं सहित गए। उन्होंने भगवान व उनकी मण्डली को फल, पुष्प, तुलसी आदि से विधिवत् पूजन कर उन्हें स्वादिष्ट भोजन कराया। इसके बाद भगवान श्री कृष्ण ऋषियों सहित विप्रदेव के यहाँ पधारे। भगवान की आज्ञानुसार इन्होंने भी पारु, पुष्प, तुलसी आदि से ऋषियों की पूजा कर सबको स्वादिष्ट भोजन कराया।

इस प्रकार श्रृतदेव और बहुलाश्व महात्माओं की श्रद्धाभाव से सेवा करने लगे। उनकी कृपा से दोनों को सद्गति और मोक्ष की प्राप्ति हुई। जैसे भक्त भगवान की भक्ति करते हैं, उसी प्रकार भगवान भी भक्तों की भक्ति करते हैं। वे अपने दोनों भक्तों को प्रसन्न करने के लिए कुछ दिनों तक मिथिलापुरी में रहे और उन्हें साधु पुरुषों के मार्ग का उपदेश करके वे द्वारिका को लौट गए।



६१. शिवजी का संकट मोचन (वृकासुर की कथा)

श्री शुकदेव जी कहते हैं कि ब्रह्मा, विष्णु और महेश, ये तीनों शाप और वरदान देने में समर्थ हैं। परन्तु

इनमें महादेव और ब्रह्मा शीघ्र ही प्रसन्न या अप्रसन्न होकर वरदान या शाप दे देते हैं। परन्तु भगवान विष्णु वैसे नहीं हैं। इस विषय में महात्मा लोग एक प्राचीन इतिहास कहा करते हैं। भगवान शंकर एक बार वृकासुर को वर देकर संकट में पड़ गए। वृकासुर शकुनि का पुत्र था। उसकी बुद्धि बहुत बिगड़ी हुई थी। एक दिन कहीं जाते समय उसने देवर्षि नारद को देख लिया। उसने देवर्षि नारद जी से पूछा— तीनों देवताओं महेश, ब्रह्मा, विष्णु में से शीघ्र प्रसन्न होने वाले देवता कौन हैं? देवर्षि ने बताया— शीघ्र प्रसन्न होने वाले देवता महेश हैं।

नारद जी का उपदेश पाकर वृकासुर केदार क्षेत्र में गया और अग्नि को भगवान शंकर का मुख मानकर, अपने शरीर का मांस काट-काट कर हवन करने लगा। इस प्रकार छः दिन उपासना करने पर भी जब उसे भगवान शंकर के दर्शन नहीं हुए तो उसे बड़ा दुःख हुआ। सातवें दिन केदार तीर्थ में स्नान करके उसने अपने भीगे बाल वाले मस्तक को कुल्हाड़ी से काटकर हवन करना चाहा। वैसे ही भगवान शंकर ने अग्निकुण्ड से प्रकट होकर अपने दोनों हाथों से उसके दोनों हाथ पकड़ लिए और गला काटने से रोक दिया। उनका स्पर्श पाते ही वृकासुर के अंग ज्यों के त्यों पूर्ण हो गए। भगवान शंकर ने वृकासुर से कहा— तुम मुँह माँगा वर माँग सकते हो। उसने वर माँगा— मैं जिसके सिर पर हाथ रख दूँ वह भस्म हो जाए। भगवान शंकर ने 'तथास्तु' कहा।

भगवान शंकर के 'तथास्तु' कह देने पर वृकासुर के मन में लालसा उत्पन्न हुई कि मैं पार्वती को ही हर लूँ। वह शंकर जी द्वारा प्रदान किए वर की परीक्षा करने के लिए उन्हीं के सिर पर हाथ रखने का उद्योग करने लगा। अब तो भगवान शंकर भयभीत हो गए। वे उससे पीछा छुड़ाने के लिए दौड़ने लगे। वृकासुर भी उनके पीछे दौड़ने लगा। भगवान शंकर बैकुण्ठ में गए, जो भगवान विष्णु का लोक है। भगवन विष्णु जी ने देखा कि शंकर जी बड़े संकट में हैं। तब वे अपनी योगमाया से ब्रह्मचारी बनकर दूर से ही धीरे-धीरे वृकासुर की ओर आने लगे।

भगवान विष्णु ने वृकासुर से कहा— आप थक गए होंगे। थोड़ा विश्राम कर लो। भगवान विष्णु ने उसकी बुद्धि हर ली। आप इस समय क्या करना चाहते हैं? भगवान की बात सुनकर उसने तनिक ठहरकर अपनी थकावट दूर की। उसके बाद क्रमशः अपनी तपस्या, वरदान प्राप्ति तथा भगवान शंकर के पीछे दौड़ने की बात बताई। तुम शंकर जी की बात पर विश्वास करते हो तो झटपट अपने सिर पर हाथ रखो। तुम्हें झूठ व सच का पता चल जाएगा। उसने अपने सिर पर उनके कहने पर हाथ रख लिया। उसी क्षण वह भस्म हो गया। इस प्रकार भगवान विष्णु जी ने शंकर भगवान को संकट से मुक्त कराया।



६२. भृगु के द्वारा त्रिदेवों की परीक्षा, भगवान का मरे हुए ब्राह्मण के बालकों को वापस लाना

श्री शुकदेव जी कहते हैं— परीक्षित! एक बार सरस्वती नदी के तट पर यज्ञ प्रारम्भ करने के लिए बड़े-बड़े ऋषि-मुनि एकत्र हुए। उन लोगों ने इस विषय पर वाद-विवाद प्रारम्भ हो गया कि त्रिदेवों— ब्रह्मा, विष्णु, महेश में सबसे बड़ा कौन है? उन ऋषियों ने यह बात जानने के लिए त्रिदेवों की परीक्षा लेने के उद्देश्य से ब्रह्माजी के पुत्र भृगुजी को उनके पास भेजा। महर्षि भृगुजी पहले ब्रह्माजी के पास गए। उन्होंने ब्रह्माजी के धैर्य की परीक्षा लेने के लिए उन्हें न तो नमस्कार किया और न उनकी स्तुति ही की। इस पर भृगुजी को ऐसा प्रतीत हुआ कि ब्रह्माजी अपने तेज से दहक रहे हैं। परन्तु जब समर्थ ब्रह्माजी ने देखा कि यह तो मेरा ही पुत्र है तो उन्होंने अपने क्रोध को भीतर ही भीतर विवेक बुद्धि से दबा लिया।

वहाँ से महर्षि भृगु कैलाश गए। देवाधिदेव भगवान शंकर ने देखा कि मेरे भाई भृगुजी आए हैं। तब उन्होंने बड़े आनन्दपूर्वक खड़े होकर उनका आलिंगन करने के लिए भुजाएँ फैला दीं। परन्तु उन्होंने शंकर जी का आलिंगन करना स्वीकार नहीं किया और बोले— तुम लोक और वेद की मर्यादा का उल्लंघन करते हो। इसलिए मैं तुमसे आलिंगनबद्ध नहीं होता। भृगुजी की यह बात

सुनकर भगवान शंकर ने क्रोधित होकर अपना त्रिशूल उठाकर महर्षि को मारना चाहा। परन्तु उसी समय भगवती सती ने उनके चरणों पर गिरकर बहुत अनुनय-विनय करके उनका क्रोध शान्त किया।

अब महर्षि भृगुजी महाराज विष्णु के निवास स्थान बैकुण्ठ में गए। उस समय भगवान विष्णु लक्ष्मी जी की गोद में सिर रखकर लेटे हुए थे। यह देखकर भृगुजी ने उनके वक्षस्थल पर एक लात कसकर जमा दी। भक्त वत्सल भगवान विष्णु लक्ष्मी जी के साथ उठ बैठे और झटपट शैय्या से नीचे उतरकर मुनि को अपना सिर झुकाकर प्रणाम किया। भगवान बोले— ब्राह्मण देवता! आपका स्वागत है। आप इस आसन पर बैठकर कुछ क्षण विश्राम कीजिए और उनके चरण कमलों को अपने हाथों से दबाने लगे— भगवन! आपके चरण कमलों के स्पर्श से मेरे सारे पाप धुल गए। आपके चरणों से चिह्नित मेरे वक्ष स्थल पर लक्ष्मी सदा सर्वदा निवास करेंगीं। जब भगवान विष्णु ने अत्यन्त गम्भीर वाणी से इस प्रकार कहा तो भृगुजी परमसुखी और तृप्त हुए।

भृगुजी वहाँ से लौटकर ब्रह्मवादी ऋषियों के सतसंग में आए। ऋषियों ने कहा— ब्रह्मा, विष्णु, शिव के यहाँ जो अनुभव प्राप्त हुए, वह बताए। भृगु के अनुभव सुनकर सभी ऋषि मुनियों को बड़ा विस्मय हुआ। तब से भगवान विष्णु को त्रिदेवों में सर्वश्रेष्ठ माना जाने लगा।

श्री शुकदेव कहते हैं— सरस्वती नदी के तट पर ऋषियों ने अपने लिए नहीं, मनुष्यों का संशय मिटाने

के लिए ही ऐसी युक्ति रची थी। पुरुषोत्तम भगवान के चरण कमलों की सेवा करके उन्होंने उनका परमपद प्राप्त किया।

श्री शुकदेव जी कहते हैं कि एक दिन की बात है, द्वारिकापुरी में किसी ब्राह्मणी के गर्भ से एक पुत्र उत्पन्न हुआ और तुरन्त मर गया। ब्राह्मण अपने बालक का मृत शरीर लेकर राजमहल के द्वार पर गया और उसे वहाँ रखकर विलाप करता हुआ कहने लगा— ब्राह्मणद्रोही, धूर्त, कृपण और विषयी राजा के कर्मदोष से ही मेरे बालक की मृत्यु हुई है। इसी प्रकार उसके आठ बालक पैदा होते ही मर गए थे। नवें बालक के मरने पर जब वह वहाँ आया, उस समय भगवान कृष्ण के पास अर्जुन भी बैठे हुए थे। उन्होंने ब्राह्मण की बात सुनकर उससे कहा— मैं आपकी संतान की रक्षा करूँगा। यदि मैं अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण न कर सका तो आग में कूदकर अपने प्राण दे दूँगा। दसवें बालक के प्रसव का समय निकट आने पर ब्राह्मण अर्जुन के पास आकर बोला— मेरे इस बच्चे को मृत्यु से बचा लो।

अर्जुन ने बाणों को अनेक प्रकार के मंत्रों से अभिमंत्रित करके प्रसव गृह के चारों ओर से घेर दिया। परन्तु देखते ही देखते श-शरीर वह बालक आकाश में अन्तर्धान हो गया। वह ब्राह्मण अर्जुन को बुरा भला कहने लगा तो अर्जुन योगबल से तत्काल यमपुरी गए। वहाँ उन्हें ब्राह्मण का बालक नहीं मिला। फिर वे क्रमशः इन्द्र, अग्नि, निर्ऋति, सोम, वायु और वरुण आदि की

पुरियों अतलादि नीचे के लोकों में, स्वर्ग से ऊपर के महलोंकादि में तथा अन्य स्थानों में गए, परन्तु कहीं भी उन्हें ब्राह्मण का बालक न मिला। उनकी प्रतिज्ञा पूरी न हो सकी। अब अर्जुन ने अग्नि में प्रवेश करने का विचार किया परन्तु भगवान श्री कृष्ण ने उन्हें ऐसा करने से रोक दिया और बताया कि मैं तुम्हें ब्राह्मण के सब बालक अभी दिखाए देता हूँ।

भगवान श्री कृष्ण अर्जुन को लेकर अपने दिव्य रथ पर सवार हुए और पश्चिम दिशा की ओर चल दिए। वह सात द्वीप, सात समुद्र पार करते हुए घोर अन्धकार में फंस गए। भगवान श्री कृष्ण ने चक्र द्वारा अन्धकार दूर किया तथा जल में प्रवेश किया। वहाँ शेष शैय्या पर लेटे हुए अष्ट भुजाधारी पुरुष भगवान को देखा। महाविष्णु ने कहा— आप दोनों को देखने की इच्छा हो रही थी। इसी कारण मैंने बालकों को अपने पास मँगा लिया था। तुम दोनों ने धर्म की रक्षा के लिए मेरी कलाओं के साथ पृथ्वी पर अवतार लिया है। पृथ्वी के भार रूप दैत्यों का संहार करके शीघ्र से शीघ्र तुम लोग मेरे पास लौट आओ। उन्होंने ब्राह्मण के सब बालकों को अर्जुन को सौंप दिया। ब्राह्मण के बालक अपनी आयु के अनुसार बड़े हो गए थे। परन्तु उनका रूप और आकृति वैसी ही थी जैसे उनके जन्म के समय थी। उन्हें भगवान श्री कृष्ण और अर्जुन ने ब्राह्मण को सौंप दिया।



६३. भगवान कृष्ण के लीला विहार का वर्णन

श्री शुकदेव जी कहते हैं— परीक्षित! द्वारिका की छटा अलौकिक थी। वह सब प्रकार की सम्पत्तियों से भरपूर थी। भगवान श्री कृष्ण सोलह हज़ार से अधिक पत्नियों के एक मात्र प्राणवल्लभ थे। जितनी पत्नियाँ थीं उतने ही अद्‌भुत रूप धारण करके वे उनके साथ विहार करते थे। भगवान श्री कृष्ण कभी जलाशयों में तथा कभी-कभी नदियों के जल में प्रवेश करके पत्नियों के साथ जल विहार करते थे। उस समय गन्धर्व उनके यश का गान करने लगते। कभी-कभी भगवान श्री कृष्ण की पत्नियाँ पिचकारियों से उन्हें भिगो देतीं। भगवान श्री कृष्ण उनके साथ इस प्रकार क्रीड़ा करते मानो यक्षराज कुबेर यक्षिणियों के साथ विहार कर रहे हों।

भगवान श्री कृष्ण और उनकी पत्नियाँ क्रीड़ा करने के बाद अपने-अपने वस्त्राभूषण उतारकर उन नटो और नर्तकियों को दे देते, जिनकी जीविका केवल गाना-बजाना ही है। भगवान इसी प्रकार उनके साथ विहार करते रहते। उनकी चाल-ढाल, बातचीत, चितवन, मुस्कान, हास-विलास और आलिंगन आदि से रानियों की चित्रवृत्ति उन्हीं की ओर खिंची रहती। उन्हें और किसी बात का स्मरण ही नहीं रहता।

भगवान के परम पराक्रमी पुत्रों में अठारह महारथी

थे, जिनका यश सारे संसार में फैला हुआ था। उन अठारह पुत्रों के नाम इस प्रकार थे— प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, दीप्तिमान, भानु, साम्ब, मधु, बृहदभानु, चित्रभानु, वृक, अरुण, पुष्कर, वेदबाहु, श्रुतदेव, सुनन्दन, चित्रबाहु, विरुप, कवि और न्यग्रोध। यदुवंश के बालकों को शिक्षा देने के लिए तीन करोड़ अठासी लाख आचार्य नियुक्त थे। महाराज उग्रसेन के साथ एक नील के लगभग सैनिक रहते थे।

प्राचीन काल में देवासुर संग्राम के समय बहुत से भयंकर असुर मारे गए थे। वे ही मनुष्यों में उत्पन्न हुए और बड़े घमण्ड से जनता को सताने लगे। उनका दमन करने के लिए भगवान की आज्ञा से देवताओं ने यदुवंश में अवतार लिया था। उनके कुलों की संख्या एक सौ एक थी। वे सब भगवान श्री कृष्ण को ही अपना स्वामी मानते थे। यदुवंशियों का चित्त इस प्रकार भगवान श्री कृष्ण में लगा रहता था कि उन्हें सोने, बैठने, घूमने, फिरने, बोलने-खेलने और नहाने-धोने आदि कामों में अपने शरीर की भी सुधि न रहती। उनकी समस्त शारीरिक क्रियाएँ यन्त्र की भांति अपने आप होती रहतीं थीं। भगवान के परम धाम की प्राप्ति के लिए अनेक सम्राटों ने अपना राजपाट छोड़कर तपस्या करने के उद्देश्य से जंगलों की यात्रा की है। इसलिए मनुष्य को उनकी लीला कथा का श्रवण करना चाहिए।



एकादश स्कन्ध

१. यदुवंश को ऋषियों का शाप

श्री शुकदेव जी कहते हैं— परीक्षित! भगवान श्री कृष्ण ने बलराम जी तथा अन्य यदुवंशियें के साथ मिलकर बहुत से दैत्यों का संहार किया तथा कौरव और पाण्डवों में भी मार-काट मचाने वाला अत्यन्त प्रबल कलह उत्पन्न करके पृथ्वी का भार उतार दिया।

भगवान श्री कृष्ण ने ऋषियों द्वारा यदुकुल को शाप दिलाने का उपक्रम किया। भगवान की प्रेरणा से अंगिरा, दुर्वासा, विश्वामित्र, वशिष्ठ और नारद द्वारिक के पास पिण्डारक क्षेत्र में आए। अनेक बालक जाम्बवती के पुत्र साम्ब को एक सुन्दर स्त्री का वेष बनाकर मुनियों के पास ले गए थे। चरण स्पर्श करने के बाद बालक बोले— हे मुनियों! यह स्त्री गर्भवती है। इसके शीघ्र बच्चा होने वाला है। आप यह बतलाने का कष्ट करें कि इसके गर्भ में कन्या है या लड़का है। मुनि लोग उनके इस व्यंगपूर्ण उपहास से कुपित हो गए। उन्होंने क्रोध में भरकर कहा— अरे मूर्खों! यह एक ऐसा मूसल पैदा करेगी जो तुम्हारे कुल का नाश करने वाला होगा। मुनियों की यह बात सुनकर बालक बहुत डर गए। उन्होंने तुरन्त साम्ब का पेट खोलकर देखा तो सचमुच उसमें एक लोहे का मूसल निकला। वे बहुत घबरा गए तथा मूसल लेकर उग्रसेन के पास गए। उनसे सारी घटना का वर्णन किया। ब्राह्मणों का शाप कभी झूठा नहीं होता।

राजा उग्रसेन ने उस मूसल को चूर्ण में कराकर समुद्र में फिकवा दिया।

उस लोहे के टुकड़ों को एक मछली निगल गई और चूरा तरंगों के साथ बहकर समुद्र के किनारे आ गया। उससे तीक्ष्ण धार वाले लम्बे-लम्बे तृण उत्पन्न हो गए जो खड़ग का काम करते थे। मछली भी जरा नामक व्याध के जाल में फँस गई। पेट चीरने पर लोहे का वही मूसल का टुकड़ा निकला। व्याध ने लोहे के टुकड़ों को बाण की नोक में लगा दिया। शिकार खेलते समय उसने वहीं बाण अनजाने में मृग समझकर भगवान के सुकोमल चरणों में जा लगा।

दैव ने यादवों की बुद्धि हर ली थी। वे मदिरा का सेवन करने लगे। नशे में वे एक-दूसरे से लड़ने-झगड़ने लगे। भगवान की माया से मूढ़ता वश पुत्र पिता का, भाई भाई का, धेवता नाना का, चाचा भतीजे का, आपस में खून बहाने लगे। जब सब हथियार समाप्त हो गए तो समुद्र तट पर उगी घास को जो लोहमय मूसल के चूर्ण से पैदा हुई थी। उस एरक की घास को लेकर आपस में एक-दूसरे का संहार कर दिया। जब भगवान श्री कृष्ण ने देखा कि यदुवंश का संहार हो गया है और बलराम जी समुद्र तट पर बैठकर मनुष्य शरीर छोड़कर परम धाम को चले गए हैं तब भगवान श्री कृष्ण ने पीपल के वृक्ष के नीचे बैठकर चतुर्भुज का रूप धारण किया और विश्राम करने लगे।

भगवान श्री कृष्ण दाहिनी जांघ पर बायाँ चरण

रखकर बैठे हुए थे। उसी समय जरा नाम के बहेलिए ने उनके चरण को हिरण का मुँह समझकर अपने बाण से भगवान का चरण बींध दिया। यह बाण वही था जो मूसल के टुकड़े से बाण की नोक बनाई थी। भगवान ने बहेलिए से कहा— डरो नहीं, जाओ, स्वर्ग में निवास करो। भगवान विमान पर आरुढ़ होकर अपने धाम को चले गए तथा अपने सारथी दारुक से कह गए— बचे हुए यदुवंशियों को माताश्री और पिताश्री को तथा परिवार वालों को अर्जुन के संरक्षण में इन्द्रप्रस्थ चले जाना क्योंकि एक सप्ताह में द्वारिका समुद्र में समा जाएगी।



२. वसुदेव जी के पास नारद जी का आना और संवाद

श्री शुकदेव जी कहते हैं कि एक दिन देवर्षि नारद वसुदेव जी के यहाँ पधारे। वसुदेव जी ने उनका अभिवादन किया।

नारद जी ने वसुदेव जी से कहा— प्रियव्रत के वंश में सिद्धेश्वर राजा उत्पन्न हुए थे। स्वायम्भुव मनु के पुत्र प्रियव्रत, प्रियव्रत के आग्नीध्र, आग्नीध्र के नाभि और नाभि के पुत्र ऋषभ देव हुए। शास्त्रों में उन्हें भगवान वासुदेव का अंश कहा है। एक दिन वसुदेव जी विदेह राज निमि के यज्ञ में जा पहुँचे। उन्हें देखकर राजा निमि,

आहवनीय ब्राह्मण सब के सब उनके स्वागत में खड़े हो गए। वसुदेव जी ने भागवत धर्म को जानना चाहा। विदेहराज निमि ने कहा— मोक्ष का मुख्य साधन भगवान श्री कृष्ण के चरण कमलों की उपासना ही है। साधक मृत्यु के भय से भी निवृत्त हो जाता है। इससे जीवात्मा को बड़ी शांति प्राप्त होती है। मनुष्य शरीर से, मन से, वाणि से, इन्द्रियों से, बुद्धि से, जो भी काम करे उसे भगवान को अपर्ण करता जाए। ऐसा करने से सम्पूर्ण कर्म भागवत धर्म हो जाते हैं। भागवत धर्म भगवान की लीलाओं को सुनने, बोलने, स्मरण करने से प्राप्त होता है। ऋषभ के सौ पुत्र थे। उनमें सबसे बड़े का नाम भरत था। इन्हीं के नाम से यह भूमिखण्ड जो पहले अजनाभ वर्ष कहलाता था भारत वर्ष कहलाने लगा।



३. भगवान के अवतारों का वर्णन

राजा निमि ने पूछा— योगीश्वरों! भगवान स्वतंत्रता से अपने भक्तों की भक्ति से वश में होकर अनेकों प्रकार के अवतार ग्रहण करते हैं और तरह-तरह की लीलाएँ करते हैं। आप लोग भगवान की उन लीलाओं का वर्णन कीजिए जो वे अब तक कर चुके हैं, कर रहे हैं और भविष्य में करेंगे।

सातवें योगिश्वर द्रमिल जी ने कहा— भगवान अनन्त हैं। उनके गुण भी अनन्त हैं। भगवान ने ही पृथ्वी,

जल, अग्नि, वायु और आकाश इन पाँच महाभूतों से ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति की है। जब वे इनके द्वारा विराट शरीर ब्रह्माण्ड का निर्माण करके उसमें अपनी लीला से अपने अंश अन्तर्यामी रूप से प्रवेश करते हैं तब उन आदि देव नारायण को पुरुष नाम से कहते हैं, यही उनका पहला अवतार है। उन्होंने ब्रह्मा, विष्णु और महेश रूप में उत्पन्न होकर सृष्टि का सृजन, पालन और संहार किया है।

दक्ष प्रजापति की एक पुत्री का नाम था मूर्ति। वह धर्म की पत्नी थी। उसके गर्भ से भगवान ने नर और नारायण के रूप में अवतार लिया। उन्होंने आत्मतत्व का साक्षात्कार कराने वाले उस भगवदाराधन रूप कर्म का उपदेश किया जो वास्तव में कर्मबन्धन से छुड़ाने वाला और नैष्कर्म्य स्थिति को प्राप्त कराने वाला है। उन्होंने स्वयं भी वैसे ही कर्म का अनुष्ठान किया। बड़े-बड़े ऋषि-मुनि उनके चरण कमलों की सेवा करते रहते हैं। वे आज भी बद्रीकाश्रम में उसी कार्य का आचरण करते हुए विराजमान हैं।

भगवान विष्णु ने अपने स्वरूप में स्थित रहते हुए सम्पूर्ण संसार के कल्याण हेतु अनेक कलावतार ग्रहण किए। हंस, दत्तात्रेय, सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार, ऋषभ देव के रूप में अवतीर्ण होकर आत्म साक्षात्कार के साधनों का उपदेश किया। भगवान ने हयग्रीव अवतार लेकर मधु कैटभ नामक असुरों का संहार करके वेदों का उद्धार किया। प्रलय के समय

मत्स्यावतार लेकर उन्होंने भावी मनु, सत्यव्रत, पृथ्वी और औषधियों की, धान्यादि की रक्षा की, वाराहवतार ग्रहण करके पृथ्वी का रसातल से उद्धार करते समय हिरण्याक्ष का संहार किया।

कच्छप अवतार ग्रहण कर अमृत प्राप्त किया। हरि के रूप में गजेन्द्र का उद्धार किया। नृसिंह अवतार ग्रहण कर हिरण्यकशिपु को मारा। वामन रूप धारण कर पृथ्वी को बलि से छीन कर पृथ्वी का उद्धार किया। परशुराम अवतार ग्रहण कर पृथ्वी को इक्कीस बार क्षत्रियहीन किया। उन्हीं भगवान ने रामावतार में रावण और उसकी राजधानी लंका को मटिया मेट किया। पृथ्वी का भार उतारने के लिए भगवान यदुवंश में जन्म लेकर ऐसे-ऐसे कर्म करेंगे जिन्हें बड़े-बड़े देवता भी नहीं कर सकते। कलियुग के अन्त में कल्कि अवतार लेकर वे शूद्र राजाओं का वध करेंगे।



४. अवधूतों का व्याख्यान- पृथ्वी से लेकर कबूतर तथा भृंगी तक चौबीस गुरुओं की कथा

भगवान श्री कृष्ण ने कहा— हे उद्धव! अब तुम अपने आत्मीय स्वजन और बन्धु बान्धवों का स्नेह छोड़ दो और अनन्य प्रेम से मुझ में अपना मन लगाकर समदृष्टि से पृथ्वी पर विचरण करो। इसमें मेरा ही स्वरूप

समझकर ध्यान करना। तुम पहले अपनी समस्त इन्द्रियों को अपने वश में कर लो, उनकी बागडोर अपने हाथ में ले लो। चित्र की समस्त वृत्तियों को भी रोक लो और फिर ऐसा अनुभव करो कि यह समस्त संसार अपनी आत्मा में ही फैला हुआ है और आत्मा मुझ सर्वात्मा ईन्द्रियातीत ब्रह्म से एक है, अभिन्न है। तुम्हें सांसारिक विपत्तियों तथा मेरे वियोग का कष्ट सता नहीं सकेगा। मैं तुम्हें एक प्राचीन इतिहास सुनाता हूँ जिसमें परम तेजस्वी अवधूत दत्तात्रेय और राजा यदु का संवाद है।

एक बार धर्म के मर्मज्ञ राजा यदु ने देखा कि एक त्रिकालदर्शी अवधूत ब्राह्मण निर्भय विचर रहे हैं। राजा यदु ने उन्हें प्रणाम कर पूछा— ब्रह्मन! आप कर्म तो करते नहीं, फिर आपको यह अत्यन्त निपुण बुद्धि कहाँ से प्राप्त हुई ? जिसका आश्रय लेकर आप परम विद्वान होने पर भी बालक के समान संसार में विचरते रहते हैं।

दत्तात्रेय जी ने कहा— राजन! अपने गुरुओं से शिक्षा ग्रहण करके मैं इस जगत में मुक्त भाव से स्वच्छन्द विचरता हूँ। तुम उन गुरुओं के नाम और ग्रहण की हुई शिक्षा को सुनो। मेरे गुरुओं के नाम हैं—

१. पृथ्वी, २. वायु, ३. आकाश, ४. जल, ५. अग्नि, ६. चन्द्रमा, ७. सूर्य, ८. कबूतर, ९. अजगर, १०. समुद्र, ११. पतंगा, १२. भौंरा, १३. हाथी, १४. मधुहर्ता, १५. हरिण, १६. मछली, १७. पिंगला वेश्या, १८. कुररपक्षी, १९. बालक, २०. कन्या, २१. शरकृत, २२. सर्प, २३. मकड़ी, २४. भृंगी।

शिक्षा

१. पृथ्वी— मैने पृथ्वी से धैर्य और क्षमा की शिक्षा ग्रहण की है।

२. वायु— केवल प्राणरक्षार्थ आधार करना सीखा। सर्वत्र अनासक्ति सीखी।

३. आकाश— आकाश से अखण्डता सीखी। साधक को आत्मा की आकाश रूपता की भावना रखनी चाहिए।

४. जल— जल से स्वच्छता सीखी। साधक को भी स्वभाव से ही शुद्ध, स्निग्ध, मधुरभाषी और लोक-पावन होना चाहिए।

५. अग्नि— अग्नि से सर्वभक्षी और किसी के गुण दोष ग्रहण न करना सीखा। अग्नि कहीं प्रकट और कहीं अप्रकट रूप से रहती है। वैसे ही साधक भी कहीं गुप्त रहे और कहीं प्रकट हो जाए।

६. चन्द्रमा— चन्द्रमा से आत्मा का अविनाशी और शरीर का विनाश होना का भाव सीखा। साधक चन्द्रमा की तरह समान रहे। उसके घटने और बढ़ने पर ध्यान आवश्यकता के अनुसार रखे।

७. सूर्य— सूर्य एक है, जल में प्रतिबिम्बित होने पर भी अनेक रूप हैं। सूर्य जल खींचकर समय पर वर्षा के रूप में वापिस कर देता है। उसी प्रकार साधक विषयों को ग्रहण कर समय आने पर त्याग दे।

८. कबूतर— कबूतर से सीखा प्रेम का संग न करें। कबूतर को प्रेम कबूतरी और बच्चों में था। बहेलिए

ने बच्चों को जाल में पकड़ लिया। कबूतर और कबूतरी ने प्रेम वश बच्चों के लिए प्राण दे दिए।

९. अजगर— अजगर की तरह सोता रहे। साधक निद्रारहित होने पर भी सोया हुआ रहे और कर्मेन्द्रियों के होने पर भी उनसे कोई चेष्टा न करे।

१०. समुद्र— समुद्र से सीखा गम्भीरता, शोक, हर्ष न करना, साधक को सर्वदा प्रसन्न और गम्भीर रहना चाहिए। भाव अथाह और अपार रखना चाहिए।

११. पतंगा— पतंगा से शिक्षा ली कि आसक्ति विनाश का कारण है। पतंगा रूप पर मोहित हो अग्नि में कूद पड़ता है। साधक को भी स्त्री पर मोहित होकर अपना सर्वनाश नहीं करना चाहिए।

१२. भ्रमर— भ्रमर से शिक्षा ली कि सभी छोटे-बड़े शास्त्रों के सार को ग्रहण करें।

१३. हाथी— हाथी से शिक्षा ग्रहण की कि सन्यासी पैर से भी स्त्रा को स्पर्श न करें, क्योंकि हथिनी के स्पर्श से हाथी बन्धन में फँस जाता है।

१४. मधुहर्त्ता— मधुहर्त्ता से शिक्षा ग्रहण की कि पापियों का धन दूसरे ही हरण कर मौज उड़ाते हैं। मधुमक्खी शहद इक्ट्ठा करती है परन्तु शहद के सहित अपने प्राण भी खो देती है।

१५. हरिण— हरिण से यह शिक्षा ग्रहण की कि भगवान के कीर्तन तथा गानों के अतिरिक्त स्त्रियों के गन्दे गीत न सुनें वरना साधक बन्धन में पड़ सकता है। साधक को प्रेम भरी बातों में पड़कर अपने को नष्ट

नहीं करना चाहिए।

१६. मछली— मछली से शिक्षा ली कि चटोरी जीभ से बचना चाहिए। काँटे में लगे माँस को ग्रहण करने से मछली मर जाती है। साधक को भी लालच में नहीं पड़ना चाहिए। रसनेन्द्रियों पर विजय प्राप्त कर लेना चाहिए। नहीं तो जीवन को जल्दी खो देना पड़ेगा।

१७. पिंगला वैश्या— पिंगला वैश्या से यह शिक्षा ग्रहण की दूसरे से किसी प्रकार की आशा नहीं करनी चाहिए। यह वैश्या विदर्भ नगरी में रहती थी। शाम को श्रृंगार कर खिड़की पर जा बैठती। पुरुषों को फँसाकर धन ऐंठती। एक दिन आधी रात तक कोई भी उसके पास नहीं आया। वह सोचने लगी मैं कैसी मूर्ख हूँ ? जो पति को छोड़कर तुच्छ क्षण भंगुर मनुष्यों की आशा करने लगी। मैंने इस निन्दित वृत्ति द्वारा अपनी आत्मा को कष्ट दिया।

यह मनुष्य शरीर कितना घृणित है कि इसमें मल के नौ पतनाले दिन रात बहते रहते हैं। इसके अन्दर मल-मूत्र-कफ आदि गन्दी वस्तुएँ भरी रहती हैं। मैं तो अब लक्ष्मी की तरह भगवान श्री कृष्ण को अपना पति बनाकर उन्हीं के साथ रमण करूँगी। वह वैश्या गन्दी इच्छाएँ छोड़कर पलंग पर जाकर सो गई। मैंने उससे यह शिक्षा ली कि किसी की आशा न करना ही सुख प्राप्त करने का एक मात्र रास्ता है। यह पिंगला नाम की वैश्या एक विशिष्ठ अप्सरा थी।

१८. कुरर पक्षी— कुरर पक्षी से मैंने यह शिक्षा

प्राप्त की किसी भी वस्तु का संग्रह नहीं करना चाहिए।

१९. बालक— बालक से मैंने यह शिक्षा ग्रहण की मान-अपमान तथा चिंता का त्याग कर देना चाहिए। इस संसार में दो ही प्रकार के साधक परमानन्द प्राप्त करते हैं, एक तो भोला-भाला बालक और दूसरा जो गुणातीत हो गया हो।

२०. कुमारी कन्या— कुमारी कन्या से यह शिक्षा ग्रहण की कि जगत में अकेले ही विचरना चाहिए। कुमारी धान कूट रही थी। उसकी चूड़ियाँ धान कूटने के कारण बज रहीं थीं। उसने सब चूड़ियाँ उतार दीं। दोनों हाथों में केवल एक-एक चूड़ी पहने रही। इससे किसी प्रकार की कोई ध्वनि नहीं हुई। इसके अतिरिक्त मैंने एक और भी शिक्षा ग्रहण की जब बहुत व्यक्ति एक साथ रहते हैं तो उनमें कलह उत्पन्न हो जाती है। इसलिए मनुष्य को अकेले ही विचरण करना चाहिए।

२१. शरकृत— शरकृत से शिक्षा ग्रहण की कि मन की एकाग्रता का होना आवश्यक है। शरकृत एक बार बाण की नोक पैनी करने में ध्यान लगाए हुआ था। उसी समय राजा की सवारी बड़ी धूमधाम से निकली परन्तु उसे इसका ज़रा सा भी ज्ञान नहीं हुआ।

२२. सर्प— सर्प से मैंने यह शिक्षा ग्रहण की रहने के लिए घर के निर्माण की आवश्यकता नहीं है। मुनि की तरह अकेले ही विचरण करना चाहिए।

२३. मकड़ी— मकड़ी से मैंने यह शिक्षा ग्रहण की कि सृष्टि पालन और संहार में ईश्वर स्वतंत्र है। इसी

प्रकार मकड़ी स्वयं जाला बुनती है और स्वयं ही उसे नष्ट कर देती है।

२४. भृंगी— भृंगी से मैंने यह शिक्षा ग्रहण की कि वह किसी कीट को पकड़ कर निरोध स्थान में बन्द कर देता है। भय के मारे उसी भृंगी का ध्यान करता हुआ, उसी शरीर से उसका सारूप्य प्राप्त कर लेता है।

१. कपोत से गृह शक्ति का त्याग सीखा।
२. मीन से रसाशक्ति का त्याग सीखा।
३. हरिण से ग्राम्य गीता का त्याग सीखा।
४. कुमारी से सजातीय योगी का त्याग सीखा।
५. गज से स्पर्श शक्ति का त्याग सीखा।
६. सर्प से गृह निर्माण शक्ति का त्याग सीखा।
७. पतंगा से रूपा शक्ति का त्याग सीखा।
८. कुरर से प्रिय वस्तु का त्याग सीखा।



५. भिन्न भिन्न सिद्धियों का वर्णन

भगवान श्री कृष्ण ने कहा— प्रिय उद्धव! जब साधक इन्द्रिय, प्राण और मन को वश में करके अपना चित्त मुझ में लगाने लगता है मेरी धारणा करने लगता है तब उसके सामने बहुत सी सिद्धियाँ उपस्थित हो जाती हैं।

उद्धव जी ने भगवान श्री कृष्ण से पूछा— कौन सी धारणा करने से किस प्रकार कौन सी सिद्धि प्राप्त होती है और उनकी संख्या कितनी है?

भगवान श्री कृष्ण ने बताया— धारणा योग के पारगामी योगियों ने अठारह प्रकार की सिद्धियाँ बताई हैं। उनमें आठ सिद्धियाँ तो प्रधान रूप से मुझ में ही रहती हैं और दस सिद्धियाँ सत्वगुण के विकास से मिल जाती हैं। उनमें से तीन सिद्धियाँ अणिमा, महिमा और लंघिमा शरीर की हैं। इन्द्रियों की एक शक्ति का नाम है— प्राप्ति। लौकिक और पारलौकिक पदार्थों का इच्छानुसार अनुभव करने वाली सिद्धि प्राकाम्य है। माया और उसके कार्यों को इच्छानुसार संचालित करने वाली सिद्धि है— ईशिता। विषयों में रहकर भी उनमें आसक्त न होना वशिता सिद्धि कहलाती है और जिस-जिस सुख की कामना करें, उसकी सीमा तक पहुँचाने वाली सिद्धि कामा- वसायिता नाम की आठवीं सिद्धि हैं। ये आगे सिद्धियाँ मुझ में स्वाभाविक रूप से रहती हैं।

अन्य दस सिद्धियाँ इस प्रकार हैं— १. भूख, प्यास, शोक, मोह, जरा और मृत्यु। २. दूर की बात सुन लेना, ३. दूरस्थ पदार्थों को देख लेना, ४. मन में समान देह की भी गति, ५. अभिष्ट रूप की प्राप्ति, ६. परकाय प्रवेश, स्वेच्छा, मृत्यु, ७. अप्सराओं के साथ होने वाली देवक्रीड़ा का दर्शन, ८. संकल्प की सिद्धि, ९. अप्रतिहत, १०. आज्ञा।

परन्तु साधक के लिए ये सिद्धियाँ विघ्नकारक बताई गई हैं।



६. ज्ञान योग, कर्म योग और भक्ति योग

उद्धव जी ने भगवान श्री कृष्ण से पूछा— प्रभु! इसमें सन्देह नहीं कि गुण और दोषों में भेद दृष्टि आपकी वाणी वेद के ही अनुसार है। किसी की अपनी कल्पना नहीं, परन्तु प्रश्न यह है कि आपकी वाणी ही भेद का निषेध भी करती है। यह विरोध देखकर मुझे भ्रम हो रहा है। आप कृपा करके मेरा यह भ्रम दूर करें।

भगवान श्री कृष्ण ने कहा— प्रिय उद्धव! मैंने ही वेदों में एवं अन्यत्र मनुष्यों का कल्याण करने के लिए तीन प्रकार के योगों का उपदेश दिया है। वे हैं— ज्ञान, कर्म और भक्ति। जो मनुष्य कर्मों तथा उनके फलों से विरक्त हो गए हैं और उनका त्याग कर चुके हैं, वे ज्ञान योग के अधिकारी हैं। जो फल की इच्छा रखते हैं उनके लिए कर्मयोग है। जो व्यक्ति न तो अन्यन्त विरक्त हैं और न अत्यन्त आसक्त ही हैं तथा किसी पूर्व जन्म के शुभकर्म से सौभाग्यवश मेरी लीला कथा आदि में श्रद्धा हो गई है, वह भक्तियोग का अधिकारी है। उसे भक्तियोग के द्वारा ही सिद्धि मिल जाती है। जो लोग मेरे बताए हुए इन ज्ञान, भक्ति और कर्म मार्गों का आश्रय लेते हैं, वे मेरे परम कल्याण स्वरूप धाम को प्राप्त होते हैं क्योंकि वे परब्रह्मतत्व को जान लेते हैं।



७. भागवत धर्मों का निरूपण और उद्धव जी का बदरीकाश्रम गमन

उद्धव जी ने भगवान श्री कृष्ण से कहा— जो व्यक्ति अपना मन वश में नहीं कर सका, उसके लिए आपकी बताई गई इस योग साधनाओं को तो मैं बहुत ही कठिन समझता हूँ। अतः आप कोई ऐसा सरल और सुगम साधन बतलाइए, जिससे पुरुष अनायास ही परमपद प्राप्त हो सके।

भगवान श्री कृष्ण ने कहा— प्रिय उद्धव! मनुष्य सात्विक बुद्धि से अहंकार को त्याग कर मन सहित नित्य नैमिक्तिक कर्म करे। उसे मुझ में ही अर्पण करे। मन सदैव भक्ति में और भगवद भक्तों में लगा रहे। काशी, वृन्दावन और द्वारिका आदि तीर्थ स्थानों में रहे। भक्तों का पूजन सत्कार करे, उनसे मेरी कथाएँ सुने। एकादशी का नियमपूर्वक व्रत करे। मेरे मंदिरों के उत्सवों में द्रव्य देकर सहायता करे। किसी प्राणी का मन या वाणी से कभी अनादर न करे। जो व्यक्ति श्रद्धा विश्वास से एकान्त में इसका मनन करता है, वह मेरी पराभक्ति प्राप्त कर कर्म बन्धनों से शीघ्र मुक्त हो जाता है।

भगवान श्री कृष्ण द्वारा इस अमृतमय उपदेश को सुनकर उद्धव जी के नेत्रों से अश्रुधारा बहने लगी। वह हाथ जोड़कर भगवान के चरणों में बैठ गए। उद्धव जी ने कहा— आज आपने आत्मबोध की तीखी तलवार से उस बन्धन को अनायास ही काट डाला। मैं बार-बार

आपके चरणों को नमस्कार करता हूँ।

भगवान श्री कृष्ण जी ने उद्धव से कहा— अब तुम मेरी आज्ञा से बद्रीकाश्रम चले जाओ। वह मेरा ही आश्रम है। वहाँ भागवत धर्म का आचरण करो। उद्धव जी भगवान की परिक्रमा कर बद्रिकाश्रम चले गए। भगवान श्री कृष्ण की आज्ञानुसार कार्य कर मुक्ति प्राप्त कर ली।



८. एक तितिक्ष ब्राह्मण का इतिहास

भगवान श्री कृष्ण ने उद्धव जी से कहा— प्रिय उद्धव! इस संसार में प्रायः ऐसे संत मनुष्य नहीं मिलते जो दुष्ट मनुष्यों की कटुवाणी से बिंधे हुए अपने हृदय को संभाल सके। इस विषय में महात्मा लोग एक बड़ा पवित्र प्राचीन इतिहास कहा करते हैं। तुम उसे ध्यान देकर सुनो। एक भिक्षुक को दुष्टों ने बहुत सताया था। उसी का मैं वर्णन कर रहा हूँ।

प्राचीन समय की बात है, उज्जैन में एक ब्राह्मण रहता था। उसने खेती और व्यापार आदि करके बहुत-सा धन व सम्पत्ति एकत्र कर ली थी। वह बहुत ही कृपण, कामी और लोभी था। क्रोध तो उसे बात-बात पर आ जाया करता था। उसने अपने ज्ञाति बन्धु और अतिथियों को कभी मीठी बातों से प्रसन्न नहीं किया, खिलाने-पिलाने की बात तो बहुत दूर की है। इस कारण

सभी मनुष्य उसके शत्रु बन गए थे। बहुत दिनों तक इस प्रकर जीवन बिताने से उस पर पंचमहायज्ञ के देवता नाराज़ हो गए। पंचमहायज्ञ के भागियों के तिरस्कार से उसके पूर्व पुण्यों का सहारा जिसके बल से अब तक उसका धन टिका हुआ था, जाता रहा। उस नीच प्रकृति वाले ब्राह्मण का कुछ धन तो उसके कुटुम्बियों ने छीन लिया और कुछ धन चोरी हो गया। कुछ धन मारा गया और बचा-खुचा धन कर और दण्ड के रूप में शासकों ने हड़प लिया। इस प्रकार उसकी सारी सम्पत्ति नष्ट हो गई। उसके सगे-सम्बन्धियों ने भी उसकी ओर से मुँह मोड़ लिया। उसे बड़ी भयानक चिंता ने घेर लिया।

चिंता करते-करते ही उसके मन में संसार के प्रति महान दुःख बुद्धि और उत्कट वैराग्य का उदय हो गया। मैं शेष आयु में शरीर को तपस्या करके सुखा दूँगा। ऐसा विचार मन में उत्पन्न होते ही खट्वांग ने दो घड़ी में ही भगवदधाम की प्राप्ति कर ली। वह बोला— मैं अब भगवान की शरण लूँगा।

भगवान श्री कृष्ण उद्धव जी से कहते हैं— उस ब्राह्मण ने मन ही मन इस प्रकार निश्चय करके मैं और मेरेपन की गाँठ खोल दी। इसके बाद वह मौन धारण कर मौनी सन्यासी बन गया। वह पृथ्वी पर स्वच्छन्द रूप से विचरण करने लगा। वह भिक्षा हेतु नगर और गाँवों में जाता। वह अब बूढ़ा हो गया था। दुष्ट लोग उसको तंग करते, कोई उसका भिक्षा पात्र छीन लेता और कहता कि देखो, इसे इसकी पत्नी व बच्चों ने घर

से निकाल दिया तो भीख माँगने को अपना रोज़गार बना लिया। दुष्ट लोग उसे बाँध देते और घरों में बन्द कर देते, परन्तु भिक्षुक के मन में कोई विकार नहीं होता था। वह कहता— यह मेरे पूर्व जन्मों का फल है। वह कहता कि मेरे सुख-दुःख का कारण और कोई नहीं अपितु कर्म और काल आदि हैं। मन ही इस समस्त संसार चक्र को चला रहा है।

मन ने विषयों के गुणों से सम्बन्ध रखने वाली वृत्तियों को उत्पन्न किया है। मन की वृत्तियों के अनुसार सात्विक, राजस और तामस आदि कर्म होते हैं। कर्मों के अनुसार मनुष्य की विविध गतियाँ होती हैं। कर्मों के अनुसार आसक्ति होने पर बंध जाता है। अपने धर्म का पालन, दान, नियम, वेदाध्ययन, सत्कर्म और ब्रह्मचर्य का अन्तिम परिणाम यह है कि मन एकाग्र हो जाए और भगवान में रम जाए। जिसका मन शान्त है, उसे दान आदि सत्कर्मों का फल प्राप्त हो जाता है।

सभी इन्द्रियाँ मन के वश में होती हैं। मन किसी भी इन्द्री के वश में नहीं है। जो व्यक्ति मन को वश में कर लेता है, वहीं देव, देव-इन्द्रियों का विजेता बन जाता है। वास्तव में मन ही हमारा शत्रु है। साधारणतः मनुष्य की बुद्धि अंधी हो रही है। इस कारण मन कल्पित शरीर को मैं और मेरा मान लेता है। इसका परिणाम यह होता है कि वह अनन्त अंधकार में ही भटकता रहता है। बड़े-बड़े प्राचीन ऋषियों ने जो आश्रय ग्रहण किए हैं। मैं भी उन्हीं आश्रयों को ग्रहण करूँगा। भगवान के चरण

कमलों की सेवा द्वारा अज्ञान रूपी सागर को मैं पार लूँगा।

भगवान श्री कृष्ण उद्धव जी से कहते हैं— उस ब्राह्मण का धन क्या नष्ट हुआ, उसका समस्त क्लेश ही दूर हो गया। अब वह संसार से विरक्त हो गया और सन्यास लेकर पृथ्वी पर विचर रहा है। यद्यपि दुष्टों ने उसे बहुत सताया फिर भी वह अपने धर्म में अटल रहा।

उद्धव जी इस संसार में मनुष्य को कोई दूसरा सुख या दुःख नहीं देता, यह तो उसके चित्त का भ्रममात्र है। इसलिए प्यारे उद्धव! अपनी वृत्तियों को मुझ में तन्मय कर दो और इस प्रकार अपनी समस्त शक्ति लगाकर मन को वश में कर लो और फिर मुझ में ही नित्य युक्त होकर स्थित हो जाओ। बस, सारे योग साधन का इतना ही सार-संग्रह है। यह भिक्षुक का गीत क्या है? मूर्तिमान, ब्रह्मज्ञान-निष्ठा ही है। जो पुरुष एकाग्र-चित्त होकर इसे सुनता-सुनाता और धारण करता है वह कभी सुख दुखादि द्वन्द्वों के वश में नहीं होता। उनके मध्य में वह भी सिंह के समान दहाड़ता रहता है।



९. श्री भगवान का स्वधाम गमन

श्री शुकदेव जी कहते हैं— हे परीक्षित! भगवान श्री कृष्ण के सारथि दारुक के चले जाने पर ब्रह्माजी, शिव-पार्वती, इन्द्रादि लोकपाल, मरीचि आदि प्रजापति,

बड़े-बड़े ऋषि-मुनि, पितर-सिद्ध, गन्धर्व-विद्याधर, नाग-चरण, यक्ष-राक्षस, किन्नर-अप्सराएँ तथा गरुड़लोक के विभिन्न पक्षी अथवा मैत्रेय आदि ब्राह्मण भगवान श्री कृष्ण के परमधाम प्रस्थान को देखने के लिए बड़ी उत्सुकता से वहाँ आए। वे सभी भगवान श्री कृष्ण के जन्म और लीलाओं का गान कर रहे थे। उनके विमानों से समस्त आकाश भर गया था। वे बड़ी भक्ति से भगवान पर पुरुषों की वर्षा कर रहे थे।

सर्वव्यापक भगवान श्री कृष्ण ने ब्रह्माजी और अपने विभूति स्वरूप देवताओं को देखकर अपनी आत्मा को स्वरूप में स्थित किया और कमल के समान नेत्र बन्द कर लिए। योगधारण के द्वारा सशरीर अपने धाम को विमान द्वारा चले गए। उस समय स्वर्ग में नगाड़े बजने लगे और आकाश से पुष्पों की वर्षा होने लगी। भगवान श्री कृष्ण के पीछे-पीछे इस लोक से सत्य, धर्म, धैर्य, कीर्ति और श्रीदेवी भी चली गईं।

इधर दारुक भगवान श्री कृष्ण के विरह से व्याकुल हो कर द्वारिका में आया और वसुदेव जी तथा उग्रसेन के चरणों पर गिर-गिरकर उन्हें आँसुओं से भिगोने लगा। उसने अपने आपको संभालकर सारा समाचार सुनाया। उसे सुनकर सब मारे शोकके मूर्च्छित हो गए। कुछ देर बाद वसुदेव आदि सब परिवार के बन्धु प्रभास क्षेत्र पहुँचे। देवकी, रोहिणी आदि नारियाँ भी उनके पीछे पीछे जा पहुँची। रुक्मिणी आदि भगवान की पत्नियाँ अग्नि में प्रविष्ट हो गईं। अर्जुन ने सबको सांत्वना दी

और मृतकों का लौकिक संस्कार किया।

इधर भगवान के अपने धाम में जाने के पश्चात् द्वारिका पुरी समुद्र में डूब गई। केवल भगवान श्री कृष्ण का दिव्य भवन शेष रहा। जहाँ भगवान सर्वदा निवास करते थे। अर्जुन बचे हुए स्त्री, बाल-वद्धों को इन्द्रप्रस्थ ले गए। श्री कृष्ण के प्रपौत्र अनिरुद्ध के पुत्र व्रज का ब्राह्मणों द्वारा राज्याभिषेक करा दिया। युधिष्ठिर, भीम आदि भी राज्य का भार परीक्षित को सौंपकर उत्तर दिशा में हिमालय पर चले गए।



द्वादश स्कन्ध

१. कलियुग के राजवंशों का वर्णन

श्री शुकदेव जी कहते हैं— परीक्षित! मैंने तुम्हें नवें स्कन्ध में यह बात बतलाई थी कि जरासंध के पिता बृहदर्थ के वंश में अन्तिम राजा होगा पुरंजय अथवा रिपुंजय। उसके मंत्री का नाम होगा शुनक। वह अपने स्वामी को मार डालेगा और अपने पुत्र प्रद्योत को राज सिंहासन पर अधिषिक्त करेगा। प्रद्योत का पुत्र होगा पालक, पालक का विशाखयूप, विशाख यूप का राजक, राजक का पुत्र नन्दिवर्धन होगा। प्रद्योत वंश में यही पाँच नरपति होंगे। ये एक सौ अड़तीस वर्ष तक राज्य करेंगे।

इसके बाद शिशुनाग राजा होगा। शिशुनाग का

काकवर्ण, काकवर्ण का क्षेमधर्मा, क्षेमधर्मा का क्षेत्रज्ञ, क्षेत्रज्ञ का विधिसार, विधिसार का अजातशत्रु, अजातशत्रु का दर्मक, दर्मक का अजय, अजय का नन्दिवर्द्धन और नन्दिवर्द्धन का पुत्र महानन्दि का जन्म होगा। इस वंश में अर्थात् शिशुनाग वश में दस राजा होंगे। ये सब मिलकर कलियुग में तीन सौ साठ वर्ष तक शासन करेंगे।

महानन्दि की शूद्रा पत्नी से नन्द का जन्म होगा। महानन्दि को महापदम भी कहेंगें। वह क्षत्रिय राजाओं के विनाश का कारण बनेगा। तभी से राजा लोग प्रायः शूद्र और अधार्मिक हो जाएँगे। महापदम पृथ्वी का एक छत्र शासक होगा। उसके सुमाल्य आदि आठ पुत्र होंगे जो सौ वर्ष तक राज्य करेंगे।

कौटल्य, वात्स्यायन तथा चाणक्य के नाम से प्रसिद्ध एक ब्राह्मण विश्वविख्यात नन्द और उनके सुमाल्य आदि आठ पुत्रों का नाश कर डालेगा। उनका नाश हो जाने पर मौर्य वंशी राजा राज्य करेंगे। वही ब्राह्मण पहले पहल चन्द्रगुप्त मौर्य को राजा बनाएगा। चन्द्रगुप्त का पुत्र वारिसार होगा, वारिसार का अशोकवर्धन, अशोकवर्धन का सुयश, सुयश का संगत, संगत का शालिशूक, शालिशूक का सोमशर्मा, सोमशर्मा का शतधन्वा और शतधनवा का बृहद्रर्थ होगा। मौर्य वंश के दस राजा कलियुग में एक सौ सैंतीस वर्ष तक राज्य करेंगे। बृहदर्थ का सेनापति पुष्पामित्र शुंग होगा। वह अपने स्वामी को मार कर राजा बन जाएगा।

पुष्पामित्र का अग्निमित्र, अग्निमित्र का सुज्येष्ठ,

सुज्येष्ठ का वसुमित्र, वसुमित्र का भद्रक, भद्रक का पुलिन्द, पुलिन्द का घोष, घोष का वज्रमित्र, व्रजमित्र का भागवत, भागवत के देव भूति होगा। शुंगवंश के ये दस राजा एक सौ बारह वर्ष तक शासन करेंगे। देवभूति को मारकर मंत्री कण्ववंशी वसुदेव राज्य करेगा। वसुदेव का भूमित्र, भूमित्र का नारायण, नारायण का सुशर्मा, सुशर्मा का कोई पुत्र नहीं होगा। कण्ववंश के चार राजा काणयवायन कहलाएँगे और तीन सौ पैंतालिस वर्ष राज्य करेगा। उसके बाद उसका भाई कृष्ण राजा बनेगा।

कृष्ण का श्री शान्तकर्ण, इसका पुत्र पौर्णमास, पौर्णमास का लम्बोदर, लम्बोदर का चिविलक, चिविलक का मेघस्वाति, मेघस्वाति का अटमान, अटमान का अनिष्टकर्मा, अनिष्टकर्मा का हालेय, हालेय का तलक, तलक का पुरीषभीरू, पुरीषभीरू का सुनन्दन होगा।

शिवस्वाति, शिवस्वाति का गोमती, गोमती का पुरीमान, पुरीमान का मदःशिरा, मदःशिरा का शिवस्कन्द, शिवस्कन्द का यज्ञ श्री।

ये तीस राजा चार सौ छप्पन वर्ष तक राजय का सुख भोगेंगे। इनके बाद अवभृति नगरी के सात आभीर, दस गर्दभी, सोलह कंक पृथ्वी पर राज्य करेंगे। इनके बाद आठ यवन और चौदह तुर्क राज्य करेंगे। इनके बाद दस गरुण्ड और ग्यारह मौन नरपति होंगे। मौनों के अतिरिक्त सब एक हज़ार निन्यानवें वर्ष तक शासन करेंगे। इसके बाद ग्यारह मौन तीन सौ वर्ष तक राज्य

करेंगे। बाद में किलकिला नगरी में भूतनन्द नाम का राजा होगा। भूतनन्द का बेटा वंगिरि, वंगिरि का भाई शिशुनन्दि तथा यशोनन्दि और प्रवीरक-एक सौ छः वर्ष तक शासन करेंगे। इनके तेरह पुत्र वाल्हिक कहलाएँगे।

उनके बाद पुष्पमित्र नामक क्षत्रिय और उसके पुत्र दुमित्र का शासन होगा। बल्हिकवंशी विभिन्न प्रदेशों में शासन करेंगे। सात तो आन्ध्र प्रदेश में सात कोसल देश के अधिपति होंगे। कुछ विदूर-भूमि, कुछ निषध देश के स्वामी होगे। इसके बाद मगध देश का राजा विश्वस्पूर्जि होगा। यह दूसरा पुरंजन कहलाएगा। यह ब्राह्मणों को पुलिन्द, यदु, औभद्र और म्लेच्छप्राय जातियों में परिणत कर देगा। पदमवती पुरी को राजधानी बनाकर हरिद्वार से प्रयागपर्यन्त राज्य करेगा। सिन्धु तट चन्द्रभाग का तट, कश्मीर मण्डल तक शूद्रों का संस्कार, नाम मात्र द्विजों का और म्लेच्छों का राज्य होगा। राजा लोग तो इनका शोषण करेंगे ही परन्तु वे आपस में भी एक दूसरे को उत्पीड़ित करेंगे और अन्त में सब के सब नष्ट हो जाएँगे।



२. कलियुग के धर्म

शुकदेव जी कहते हैं— परीक्षित! समय बड़ा बलवान है। जैसे-जैसे घोर कलियुग आता जाएगा, वैसे-वैसे ही उत्तरोत्तर धर्म, सत्य, पवित्रता, क्षमा, दया, आयु, बल

और स्मरणशक्ति का लोप होता जाएगा। जिसके पास धन होगा, उसी को लोग कुलीन, सदाचरी, और सदगुणी मानेंगे। जिसके हाथों में शक्ति होगी वही धर्म और न्याय की व्यवस्था अपने अनुकूल करा सकेगा।

विवाह सम्बन्ध के लिए कुल-शील-योग्यता आदि की परख-निरख नहीं रहेगी। युवक-युवती की पारस्परिक रुचि से ही सम्बन्ध हुआ करेंगे। व्यवहार की निपुणता, सच्चाई और ईमानदारी समाप्त हो जाएगी। ब्राह्मण की पहचान उसके गुण-स्वभाव से नहीं यज्ञोपवीत से हुआ करेगी। जो घूस देने या धन खर्च करने में असमर्थ होगा, उसे अदालतों से ठीक-ठीक न्याय नहीं मिल सकेगा।

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य या शूद्रों में जो बलवान होगा वहीं राजा बन बैठेगा। उस समय प्रजा तरह-तरह के शाक, कन्दमूल, माँस, शहद, फल-फूल और बीज, गुठली आदि खा-खाकर अपना पेट भरेगी। उनके राज्यों में वर्षा कभी- कभी होगी। सूखा पड़ जाएगा। कभी कड़ाके की सर्दी पड़ेगी तो कभी पाला पड़ेगा। कभी आँधी चलेगी, कभी गरमी पड़ेगी तो कभी बाढ़ आ जाएगी। इन उत्पातों से तथा आपस के संघर्ष से प्रजा अत्यन्त पीड़ित होगी। कलियुग में मनुष्यों की आयु बीस वर्ष से तीस वर्ष के मध्य रहेगी।

राजे महाराजे, डाकू, लुटेरों की तरह हो जाएँगे। मनुष्य चोरी, झूंठ तथा निरपराध हिंसा आदि नाना प्रकार के कुकर्मों से जीविका, चलाने लगेंगे। चारों वर्णों के

मनुष्य शूद्रों के समान हो जाएँगे। परीक्षित! अधिक क्या कहें, कलियुग का अन्त होते-होते मनुष्यों का स्वभाव गधों जैसा दुःसह बन जाएगा। ऐसी स्थिति में धर्म की रक्षा करने के लिए सत्वगुण स्वीकार करके स्वयं भगवान अवतार ग्रहण करेंगे। उन दिनों शम्भल ग्राम में विष्णुयश नाम के एक श्रेष्ठ ब्राह्मण होंगे। उन्हीं के घर कल्कि भगवान अवतार लेंगे। उनके हृदय में सत्त्वमूर्ति भगवान वासुदेव विराजमान होंगे और उनकी संतान पहले की तरह हृष्ट-पुष्ट होगी।

जब भगवान कल्कि रूप में अवतार लेंगे, उसी समय से सत्ययुग प्रारम्भ माना जाएगा। प्रजा स्वयं ही सत्वगुण सम्पन्न बन जाएगी। भीष्म पितामह के पिता राजा शान्तनु के भाई देवापि और इच्छवाकु वंशी मरु इस समय कलाप ग्राम में स्थित हैं। कलियुग के अन्त में कल्कि भगवान की आज्ञा से वे फिर यहाँ आएंगे और पहले की भांति वर्णाश्रम धर्म का विस्तार करेंगे। सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग ये ही चार युग हैं। ये पूर्वोक्त क्रम के अनुसार अपने-अपने समय में पृथ्वी के प्राणियों पर अपना प्रभाव दिखाते रहते हैं।



३. चार प्रकार के प्रलय

श्री शुकदेव जी कहते हैं— परीक्षित! चार प्रकार के प्रलय— नित्य प्रलय, नैमित प्रलय, प्राकृतिक प्रलय

और आत्यन्तिक प्रलय है। राजन! एक हज़ार चतुर्युगी का ब्रह्मा का एक दिन होता है। ब्रह्मा के दिन को कल्प कहते हैं। एक कल्प में चौदह मनु होते हैं। कल्प के अन्त में उतने ही समय तक प्रलय भी रहता है। प्रलय को ब्रह्मा की रात भी कहते हैं। उस समय ये तीनों लोक लीन हो जाते हैं। इसका नाम नैमित्तिक प्रलय है। इस प्रलय के अवसर पर सारे विश्व को अपने अन्दर समेट कर लीन कर ब्रह्मा और बाद में शेषशायी भगवान नारायण भी सो जाते हैं। इस प्रकार रात के बाद दिन और दिन के बाद रात होते-होते जब ब्रह्माजी की अपने माप से सौ वर्ष की और मनुष्यों की दृष्टि में दो परार्द्ध की आयु समाप्त हो जाती है, तब महत्तत्व अहंकार और पंच तन्मात्रा ये सातों प्रकृतियाँ अपने कारण मूल प्रकृति में लीन हो जाती हैं। इसका ही नाम प्राकृतिक प्रलय है। इस प्रलय में प्रलय का कारण उपस्थित होने पर पंचभूतों के मिश्रण से बना हुआ ब्रह्माण्ड अपना स्थूल रूप छोड़कर कारण रूप में स्थित हो जाता है, घुल-मिल जाता है।

प्रलय का समय आने पर सौ वर्ष तक मेघ पृथ्वी पर पानी नहीं बरसाते। उस समय प्रजा भूख-प्यास से व्याकुल होकर एक-दूसरे को खाने लगती है। प्रलय कालीन सांवर्तक सूर्य अपनी प्रचण्ड किरणों से समुद्र, प्राणियों के शरीर और पृथ्वी का सारा रस खींच-खींच कर सोख जाते हैं। उस समय संकर्षण भगवान के मुख से प्रलय कालीन अग्नि प्रकट होती है। वह तल-अतल

आदि नीचे के सातों लोकों को भस्म कर देती है। उस समय ऊपर नीचे, चारों और यह ब्रह्माण्ड जलने लगता है और ऐसा जान पड़ता है मानो गोबर का उपला जलकर अंगारे के रूप में दहक रहा हो।

उसके बाद सैकड़ों वर्षों तक वर्षा होती रहती है। ब्रह्माण्ड के भीतर का समस्त संसार एक समुद्र बन जाता है। इस तरह जल प्रलय हो जाती है। गन्ध गुण के जल में लीन हो जाने पर पृथ्वी का प्रलय हो जाता है। वह जल में घुल-मिलकर जल रूप बन जाती है। उस समय प्रकृति ने स्थूल अथवा सूक्ष्म रूप से सत्वगुण, रजोगुण, तमोगुण, महत्तत्व आदि विकार, प्राण बुद्धि, इन्द्रियाँ आदि कुछ शेष नहीं रहता। परीक्षित अब आत्यन्तिक प्रलय अर्थात् मोक्ष का स्वरूप बतलाया जाता है। जब जीव विवेक के खंग से मायामय अहंकार का बन्धन काट देता है। तब यह अपने एक रस आत्मस्वरूप के साक्षात्कार में स्थित हो जाता है। आत्मा की यह मायायुक्त वास्तविक स्थिति ही आत्यन्तिक प्रलय कही जाती है।

४. परीक्षित की परमगति, जन्मेजय का सर्प सत्र

भगवान के शरणागत एवं उनके द्वारा सुरक्षित राजर्षि परीक्षित ने उनका सम्पूर्ण उपदेश बड़े ध्यान से सुना।

अब वे सिर झुकाकर उनके चरणों के तनिक और पास खिसक आए तथा अंजलि बाँधकर उनसे यह प्रार्थना करने लगे।

राजा परीक्षित ने कहा— भगवन! आपने कृपा करके एक रस, सत्य भगवान श्रीहरि के स्वरूप और लीलाओं का वर्णन किया है। मैंने और मेरे साथ बहुत से मनुष्यों ने आपके मुखारविन्द से इस श्रीमद भागवत महापुराण का श्रवण किया है। इस पुराण में पद-पद पर भगवान श्रीहरि के उस स्वरूप और उन लीलाओं का वर्णन हुआ है, जिनके गान में बड़े-बड़े आत्माराम मनुष्य रमते रहते हैं। भगवान! आपने मुझे अभयपद का, ब्रह्म और आत्मा की एकता का साक्षात्कार करा दिया है। अब मुझे तक्षक आदि किसी भी मृत्यु के निमित्त से भय नहीं है। मैं अभय हो गया हूँ। अब आप मुझे आज्ञा दीजिए कि मैं अपनी वाणी बन्द कर लूँ, मौन हो जाऊँ और साथ ही कामनाओं के संस्कार से भी रहित चित्त को इन्द्रियातीत परमात्मा के स्वरूप में विलीन करके अपने प्राणों का त्याग कर दूँ।

उन्होंने गंगा जी के तट पर कुशों को इस प्रकार बिछाया जिससे उनका अग्रभाग पूर्व की ओर हो और उस पर स्वयं उत्तर दिशा में मुँह करके बैठ गए। अब वे ब्रह्म और आत्मा की एक रूपता महायोग में स्थित होकर ब्रह्मस्वरूप हो गए।

अब मुनि कुमार श्रृंगी का भेजा हुआ तक्षक सर्प राजा परीक्षित को डसने के लिए आया। तक्षक स्वयं

ब्राह्मण का रूप धारण कर राजा परीक्षित के पास गया और उन्हें डस लिया। राजर्षि परीक्षित तक्षक के डसने के पहले ही ब्रह्म में लीन हो चुके थे। अब तक्षक के विष की आग से उनका शरीर जलकर भस्म हो गया।

जब जन्मेजय ने सुना कि तक्षक ने मेरे पिताजी को डस लिया है तो वह क्रोधित हो गया। अब वह ब्राह्मणों के साथ विधिपूर्वक सर्पों का अग्निकुण्ड में हवन करने लगा। तक्षक ने देखा कि जन्मेजय के सर्प सत्र की प्रज्जवलित अग्नि में बड़े-बड़े महा सर्प भस्म होते जा रहे हैं। तब वह डरकर देवराज इन्द्र की शरण में गया। बहुत से सर्पों के भस्म होने पर भी तक्षक न आया। जब उसे ज्ञात हुआ कि तक्षक इन्द्र की शरण में चला गया है तो उन्होंने ऋत्विज ब्राह्मणों से कहा— आप लोग तक्षक के साथ इन्द्र को भी अग्नि कुण्ड में गिरा दो। जन्मेजय की बात सुनकर ब्राह्मणों ने उस यज्ञ में इन्द्र के साथ तक्षक का अग्निकुण्ड में आह्वान किया। उन्होंने कहा— रे तक्षक! तू मरुदगण के सहचर इन्द्र के साथ इस अग्निकुण्ड में शीघ्र आ पड़े।

अंगिरानन्दन बृहस्पति जी ने जब देखा कि आकाश से देवराज इन्द्र विमान और तक्षक के साथ ही अग्निकुण्ड में गिर रहे हैं, तब उन्होंने राजा जन्मेजय से कहा— सर्पराज तक्षक को मार डालना आपके योग्य काम नहीं है। यह अमृत पी चुका है। इसलिए यह अजर-अमर है। महर्षि बृहस्पति जी की बात का सम्मान करके जन्मेजय ने कहा— आपकी आज्ञा शिरोधार्य है। उन्होंने

सर्प-सत्र बन्द कर दिया और बृहस्पति जी की विधिपूर्वक पूजा की।

सूत जी ने कहा— जिस समय ब्रह्मा पूर्वसृष्टि का ज्ञान सम्पादन करने के लिए एकाग्रचित हुए, उस समय उनके हृदयाकाश से कण्ठतालु आदि स्थानों के संघर्ष से रहित एक अत्यन्त विलक्षण अनाहत नाद प्रकट हुआ। जब जीव अपनी मनोवृत्तियों को रोक लेता है, तब उसे भी अनाहत का अनुभव होता है। बड़े-बड़े योगी उसी अनाहत की उपासना करते हैं और उसके प्रभाव से अन्तकरण के द्रव्य (अधिभूत), क्रिया (अध्यात्म) और कारक रूप मल को नष्ट करके वह परमगति रूप मोक्ष प्राप्त करते हैं, जिसमें जन्म-मृत्यु रूप संसार चक्र नहीं है। उसी अनाहत नाद से 'अ' कार 'उ' कार और म 'कार' रूप तीन मात्राओं से युक्त ऊँ कार प्रकट हुआ। इस ऊँ कार की शक्ति से ही प्रकृति अव्यक्त से व्यक्त रूप में परिणत हो जाती है। ऊँ कार स्वयं भी अव्यक्त एवं अनादि है और परमात्मस्वरूप होने के कारण स्वयं प्रकार भी है। ऊँ कार अपने आश्रय परमात्मा परब्रह्म का साक्षात् वाचक है और ऊँ कार ही सम्पूर्ण मंत्र, उपनिषद और वेदों का सनातन बीज है।

ऊँ कार के तीन वर्ण हैं— अ, उ और म। ये ही तीनों वर्ण सत्व, रज, तम, इन तीन गुणों, ऋक, यजु, साम, इन तीन नामों, भूः भुवः, स्वः, इन तीन अर्थो और जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति-इन तीन वृत्तियों के रूप में तीन-तीन की संख्या वाले भावों को धारण करते हैं।

इसके बाद ब्रह्माजी ने ॐ कार से ही अन्तस्थ (य, र, ल, व,) ऊष्म (श, ष, स, ह) स्वर (अ से औ तक), स्पर्श (क से म तक) तथा (ह्र स्व) और दीर्घ आदि लक्ष्णों से युक्त अक्षर वर्णमाला की रचना की। उसी वर्णमाला द्वारा उन्होंने अपने चार मुखों से होता, अध्वर्यु, उद्गाता और ब्रह्मा-इन चार ऋत्विजों के कर्म बतलाने के लिए ॐ कार और व्याहृतियों के सहित चार वेद प्रकट किए और अपने पुत्र ब्रह्मर्षि मरीचि आदि को वेदाध्ययन मे कुशल देखकर उन्हें वेदों की शिक्षा प्रदान की। द्वापर के अन्त में महर्षियों ने उनका विभाजन किया। जब ब्रह्मवेत्ता ऋषियों ने देखा कि समय के फेर से लोगों की आयु, शक्ति और बुद्धि क्षीण हो गई है, तब उन्होंने अपने हृदय देश में विराजमान परमात्मा की प्रेरणा से वेदों के अनेकों विभाग कर दिए।



५. मार्कण्डेय जी की तपस्या और वर प्राप्ति

श्री सूत जी कहते हैं— मृकण्ड ऋषि ने अपने पुत्र मार्कण्डेय के सभी संस्कार समय-समय पर किए। मार्कण्डेय जी विधिपूर्वक वेदों का अध्ययन करके तपस्या और स्वाध्याय से सम्पन्न हो गए थे। उन्होंने आजीवन ब्रह्मचर्य का व्रत ले रखा था। वे अपने हाथों से कमण्डलु और दण्ड धारण करते, शरीर पर यज्ञोपवीत

और मेखला शोभायमान रहती। काले मृगचर्म, रुद्राक्षमाला और कुश यही उनकी पूँजी थी। वे गुरु जी की आज्ञा होती तो दिन में एक बार खा लेते अन्यथा उपवास कर जाते।

मार्कण्डेय जी महायोग के द्वारा अपना चित्त भगवान के स्वरूप में जोड़ते रहे। इस प्रकार साधना करते-करते छः मन्वन्तर बीत गए। सातवें मन्वन्तर मे जब इन्द्र को पता चला तो वे उनकी तपस्या से शंकित और भयभीत हो गए। इसलिए उन्होंने उनकी तपस्या में विघ्न डालना प्रारम्भ कर दिया। उनके आश्रम पर गन्धर्व, अप्सराएँ, काम, वसन्त, मलयानिल, लोभ और मद को भेजा।

मार्कण्डेय जी हवन के पश्चात् नेत्र बन्द किए यज्ञशाला के अन्दर शान्त मुद्रा में स्थित थे। अप्सराएँ वहाँ नृत्यगान करने लगीं। एक अप्सरा गेंद खेलती उनके समीप पहुँच गई। कामदेव ने अपने पाँचों कुसुम बाण एक साथ चला दिए। परन्तु उन पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। कामदेव का सिर लज्जा से झुक गया।

मार्कण्डेय मुनि की तपस्या, स्वाध्याय, धारण, ध्यान और समाधि से प्रसन्न होकर नरोतम नर और भगवान नारायण उनके सामने प्रकट हुए। जब मार्कण्डेय मुनि ने देखा कि भगवान के साक्षात् स्वरूप नर नारायण पधारे हैं तो उन्होंने धरती पर दण्डवत् लेटकर उन्हें साष्टांग प्रणाम किया। उनके नेत्रों से आनन्द के अश्रु बहने लगे। वे गदगद वाणी से नमो नमः ही उच्चारण कर सके। उन्हें आसन पर बैठाकर उनकी चन्दन, धूप, दीप और मालाओं से पूजा की।

६. मार्कण्डेय जी का माया दर्शन

जब मार्कण्डेय जी मुनि ने इस प्रकार स्तुति की तब भगवान नर-नारायण ने प्रसन्न होकर मार्कण्डेय जी से कहा—तुम्हारे इस आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत की निष्ठा देखकर हम तुम पर बहुत ही प्रसन्न हुए हैं। तुम्हारा कल्याण हो। मैं समस्त वर देने वालों का स्वामी हूँ। इसलिए तुम अपना अभिष्ठ वर मुझसे माँग सकते हो। मार्कण्डेय मुनि बोले— भगवन! आपके साक्षात् दर्शन हो गए अब मैं क्या माँगू। फिर भी मैं आपकी वह माया देखना चाहता हूँ जिससे मोहित होकर सभी लोक और लोकपाल अद्वितीय वस्तु ब्रह्म में अनेकों प्रकार के भेद-विभेद देखने लगते हैं। तब नर-नारायण ने मुस्कुराते हुए कहा—ठीक है, ऐसा ही होगा। इसके बाद वे अपने आश्रम बदरीवन को चले गए। मार्कण्डेय मुनि अपने आश्रम पर रहकर निरन्तर इस बात का चिन्तन करते रहते कि मुझे भगवान की माया के दर्शन कब होंगे?

एक दिन की बात है। संध्या के समय एकाएक बड़े ज़ोर से आँधी चलने लगी। आँधी के कारण बड़ी भयंकर आवाज़ होने लगी और आकाश में बड़े विकराल बादल मँडराने लगे। बिजली कड़कने लगी और जल की मोटी-मोटी धाराएँ पृथ्वी पर गिरने लगीं। चारों ओर से समुद्र पृथ्वी को डुबोता हुआ दिखाई पड़ने लगा। देखते-देखते तीनों लोक क्षण भर में जलमग्न हो गए। बस उस समय महामुनि मार्कण्डेय मुनि ही बचे रह गए

थे। इस प्रकार मार्कण्डेय मुनि विष्णु भगवान की माया के चक्कर में मोहित हो रहे थे। उस प्रलय के समुद्र में भटकते-भटकते उन्हें लाखों करोड़ों वर्ष बीत गए।

एक बार उन्होंने पृथ्वी के टीले पर एक छोटा सा बरगद का पेड़ देखा। बरगद के पेड़ में ईशान कोण पर एक डाल थी। उसमें एक पत्तों का दोना सा बन गया था। उस पर एक सुन्दर नन्हा सा बालक लेटा हुआ था। उसके शरीर से ऐसी उज्जवल छटा छिटक रही थी जिससे आस-पास का अंधेरा दूर हो रहा था। वह बालक अपने दोनों कर कमलों से एक चरण कमल को मुख में डाल कर चूस रहा था। वह बालक नीलमणि के समान श्याम वर्ण का था।

मार्कण्डेय मुनि यह दृश्य देखकर अचम्भित रह गए। वे उस बालक से कुछ पूछने के लिए उसके सामने गए तो बालक की श्वास के साथ उसके शरीर के भीतर उसी प्रकार घुस गए जैसे कोई मच्छर किसी के पेट में चला जाए। उस बालक के पेट में जाकर सबकी सब वही सृष्टि देखी जैसी प्रलय के पहले उन्होंने देखी थी। उन्होंने उस बालक के उदर में आकाश, अन्तरिक्ष ज्योतिर्मण्डल, पर्वत, समुद्र, द्वीप, देश, नदियाँ, अहीरों की बस्तियाँ सब कुछ देखा। फिर शिशु के निःश्वास से बाहर निकल कर जल में गिर पड़े। वह बालक उनकी तरफ देखकर मुस्करा रहा था। मार्कण्डेय जी ने बालक का आलिंगन करना चाहा परन्तु वह बालक अन्तर्धान हो गया। प्रलय का समस्त दृश्य समाप्त हो गया और मुनि ने देखा कि मैं तो पहले की तरह अपने आश्रम में ही विराजमान हूँ।

७. मार्कण्डेय जी को भगवान शंकर का वरदान

सूत जी कहते हैं कि मार्कण्डेय मुनि ने नारायण निर्मित योगमाया वैभव का अनुभव किया। वे भगवान विष्णु की शरण लेकर आँसू बहाते हुए उन्हीं के ध्यान में मग्न हो रहे थे कि उसी समय भगवान शंकर पार्वती जी के साथ आकाश मार्ग से वहाँ पहुँचे। पार्वती जी ने भगवान शंकर से कहा कि किस प्रकार ऋषि ध्यान में तल्लीन हैं? भगवान शंकर ने उन्हें बताया कि इनको परा भक्ति प्राप्त है। भगवान की माया में तल्लीन होने के कारण इनको किसी और का ध्यान नहीं है।

भगवान शंकर ने अपनी योगमाया से उनके शरीर में प्रवेश किया। मार्कण्डेय ऋषि को अपने हृदय में भगवान शंकर त्रिशूल, डमरू, कपाल आदि लिए दिखाई दिए। मुनि यह दृश्य देखकर चकित रह गए। इससे उनकी समाधि टूट गई। नेत्र खोलने पर उन्होंने अपने समाने शंकर पार्वती को खड़े देखा। वे तुरन्त अपने आसन से खड़े होकर उनके चरणों में गिरकर प्रणाम करने लगे। फिर उनकी विधिवत् पूजा की। भगवान शिव ने उनसे वर माँगने के लिए कहा।

भक्तों के मनोरथ पूरा करने वाले पूर्ण ब्रह्मा आपसे सिर्फ यही वर चाहता हूँ कि नारायण में, उनके रूप आप में अर्थात् आप दोनों के भक्तों में, मेरी सदा निश्चल भक्ति बनी रहे। भगवान शिव ने प्रसन्न होकर कहा—

तथास्तु। कल्पपर्यन्त तक आप इसी प्रकार अजर-अमर बने रहेंगे। इतना कहकर भगवान अन्तर्धान हो गए।

मार्कण्डेय ने जो यह अनेक कल्पों का सृष्टि प्रलयों का अनुभव किया था वह भगवान विष्णु और शिवजी की माया का ही वैभव था। यह मार्कण्डेय जी के लिए ही था। सर्व साधारण के लिए नहीं था।

हरिः ॐ तत्सत्।



८. श्री कमल नेत्र स्तोत्र

श्रीकमल नेत्र कटि पीताम्बर अधर मुरली गिरधरम्।
मुकुट कुण्डल करल कुटिया सावरे राधेवरम्।
कूल यमुना धेनु आगे सकल गोपी मनहरम्।
पीत वस्त्र गरुड़ वाहन चरण सुखनित सागरम्।
करत केल कलोल निशि दिन कुंज भवन उजागरम्।
अचर अमर अडोल निश्चल पुरुषोत्तम अपरापरम्।
दीनानाथ दयालु गिरधर कंस हरणाकुश हरम्।
गल फूल माल विशाल लोचन अधिक सुन्दर कैशवग।
बंशीधर वासुदेव छैय्या बली छल्यो श्रीवामनम्।
जल डूबते गज राख लीहो लंका छेदयो रावणम्।
सप्तद्वीप नव खंड चौदह भुवन कीनो एक कदम्।
द्रोपदी की लाज राखी कहां लो उपमा करम्।
दीनानाथ दयालु पूरण करुणामय करुणा करम्।
कविदत्त दास बिलास निशदिन नाम जप नितनागरम्।
प्रथम गुरु के चरण बन्दो यस्वज्ञान प्रकाशितम्।

आदि विष्णु जुगादि ब्रह्मा सेवित शिव शंकरम्।
श्री कृष्ण केशव कृष्ण केशव कृष्ण यदुपति केशवम्।
श्री राम रघुवर राम रघुवर राम रघुवर राघवम्।
श्री राम कृष्ण गोविन्द माधव वासुदेव श्री बावनम्।
मच्छ कच्छ वाराह नरसिंह पाहिं रघुपति पावनम्।
मथुरा में केशवराय विराजे गोकुल में बाल मुकन्द जी।
श्री वृन्दावन में मदन मोहन गोपी नाथ गोविन्द जी।
धन्य मथुरा धन्य गोकुल जहाँ श्रीपति अवतरे।
धन्य यमुना का नीर निर्मल ग्वाल बाल सखाबरे।
नवनीत नागर करत निरत शिव विरंचि मनमोहितम्।
कालिन्दी तट करत क्रीड़ा बाल अदभुत सुन्दरम्।
वंशी वट तट निकट यमुना मुरली की टेर सुहावनी।
भज राधे रघुवन्स उत्तम् परम राज कुमार जी।
सीता के पति भक्तन के गति जगद आधार जी।
जनक राजा पनक राखी धनुष बान चढ़ा वहीं।
सती सीता नाम जाको श्री रामचन्द्र वर पावहीं।
जन्म मथुरा खेल गोकुल नन्द के हरि नन्दनम्।
बाल लीला पतित पावन देवकी वासुदेवकम्।
श्रीकृष्ण कलिमल हरण जावे जो भजे हरि चरण को।
भक्ति अपनी देव माधव भवसागर के तरण को।
जगन्नाथ जगदीश स्वामी श्री बदरीनाथ विश्वम्भरम्।
द्वारिका के नाथ स्वामी केशव प्रणामम्यहम्।
श्रीकृष्ण अष्टपदों पढ़त निशदिन विष्णु लोक सगच्छतम्।
श्री गुरु रामा नन्द स्वामी कविदत्त दास समाप्तम्॥

ए. श्री कृष्ण चालीसा

दोहा

बंशी शोभित कर मथुरा, नील जलद तन श्याम।
अरुण अधर जनु बिम्ब फल, नयन कमल अभिराम।
पूर्ण इन्द्र अरविन्द मुख, पीताम्बर शुभ साज।
जय मन मोहन मदन छवि, कृष्ण चन्द्र महाराज।

चौपाई

जय जदु नन्दन जय जगवन्दन।
जय वसुदेव देवकी नन्दन॥
जय यशुदा सुत नन्द दुलारे।
जय प्रभु भक्तन के दृग तारे॥
जय नट नागर नाथ नथइया।
कृष्ण कन्हैया धेनु चरइया॥
पुनि नख पर प्रभु गिरिवर धारो।
आओ दीनन कष्ट निवारो॥
बंशी मधुर अधर धरि टेरी।
होवे पूर्ण विनय यह मेरी॥
आओं हरि पुनि माखन चाखो।
आज लाज भारत की राखो॥
गोल कपोल चिबुक अरुणारे।
मृदु मुस्कान मोहिनी डारे॥
राजित राजिव नयन विशाला।
मोर मुकुट वैजयन्ती माला॥

कुण्डल श्रवण पीतपट आछे।
कटिकिकंणी काछन काछे॥
नील जलज सुन्दर तनु सोहै।
छवि लखि सुरनर मुनि मन मोहै॥
मस्तक तिलक, अलक घुंघराले।
आओ कृष्ण बांसुरी वाले॥
करि पयपान पूतनहिं तारयो।
अका बका कागासुर मारयो॥
मधुवन जलत अग्नि जब ज्वाला।
मे शीतल लखतहिं नन्दलाला॥
सुरपति जब ब्रज चढ़यों रिसाई।
मूसर धारि वारि वर्षाई॥
लखत-लखत ब्रज चहन बहायो।
गोवर्धन नखधारि बचायो॥
लखि यसुदा मन श्रम अधिकाई।
मुख महं चौदह भुवन दिखाई॥
दुष्ट कंस अति ऊधम मचायो।
कोटि कमल जब फूल मंगायो॥
नाथि कालियहिं तब तुम लीन्हें।
चरण चिन्ह दे निर्भय कीन्हें॥
करि गोपिन संग रास विलासा।
सबकी पूरण करि अभिलाषा॥
केतिक महाअसुर संहारयो।
कंसहिं केस पकड़ि दै मारयो॥

मात पिता का बन्दि छुड़ाई।
उग्रसेन कहं राज दिलाई॥
महि से मृतक छहों सुत लायो।
मातु देवकी शोक मिटायो॥
भौमासुर मुर दैत्य संहारी।
लाये षट दशा सहस कुमारी॥
दै भीमहिं तृण चीर संहारा।
जरासिंधु राक्षस कहं मारा॥
असुर बकासुर आदिक मारयो।
भक्तन के तब कष्ट निवारियो॥
दीन सुदामा के दुख टारयो।
तंदुल तीन मूंठि मुख डारयो॥
प्रेम के साग विदुर घर मांगे।
दुर्योधन के मेवा त्यागे॥
लखा प्रेम की महिमा भारी।
ऐसे श्य।न दीन हितकारी॥
भारथ के पारथ रथ हाँके।
लिए चक्र कर नहिं बल ताके॥
निज गीता के ज्ञान सुनाए।
भक्तन हृदय सुधा वर्षाये॥
मीरा थी ऐसी मतवाली।
विष पी गई, बजा कर ताली॥
रानी भेजा सांप पिटारी।
शालिग्राम बने बनवारी॥

निज माया तुम विधिहिं दिखायो।
उरते संशय सकल मिटायो॥
तव शत निन्दा करि तत्काला।
जीवन मुक्ति भयो शिशुपाला॥
जबहिं द्रोपदी टेर लगाई।
दीनानाथ लाज अब जाई॥
तुरतहिं बसन बने नन्दलाला।
बढ़े चीर भै अरि मुंह काला॥
अस अनाथ के नाथ कन्हैया।
डूबत भंवर बचावत नइया॥
सुन्दर दास आस उरधारी।
दया दृष्टि कीजै बनवरी॥
नाथ सकल मम कुमति निवारो।
क्षमहु वेगि अपराध हमारो॥
खोलो पट अब दर्शन दीजै।
बोलो कृष्ण कन्हैया की जै॥

॥ दोहा ॥

यह चालीसा कृष्ण का पाठ करे उर धारि।
अष्ट सिद्धि नवनिद्धि फल, लहै पदारथ चारि॥

॥ इति श्रीकृष्ण चालीसा ॥



१०. आरती कुंज बिहारी की

आरती कुंज बिहारी की, गिरधर कृष्ण मुरारी की।
गले में बैजन्ती माला, बजावे मुरली मधुर वाला।
श्रवण में कुण्डल झल काला, नन्द के नन्द आनन्द लाला।
नैनन बिच सुरति उजारी की गिरधर कृष्ण मुरारी की।
आरती कुंज मुरारी की ॥ १ ॥

कनक मय मोर मुकुट बिलसे, देवता दर्शन को तरसे।
गमन से सुमन बहुत बरसे, बजत है चंग और मृदंग।
ग्वालिनी संग लाज रख गोपकुमारी की, गिरधर कृष्ण मुरारी की।
आरती कुंज मुरारी की ॥ २ ॥

जहाँ ते प्रकट भई गंगा, कलुष कलिहरनी श्री गंगा।
बसी शिव शीश जटा के बीच, राधिका गौर श्याम।
पटकी कि छवि निरखे बनवारी की, गिरधर कृष्ण मुरारी की।
आरती कुंज मुरारी की ॥ ३ ॥

चहुं दिशि गोप ग्वाल धेनु, बाज रही यमुना तट बेनू।
हंसत सुख्या मन्द, ब्ररद सुख्या कंद वृन्दावन चन्द
टेर सुनि लेउ भिखारी की ॥
आरती कुंज मुरारी की ॥ ४ ॥



११. श्री कृष्ण स्तुति

भये प्रकट गुपाला, दीन दयाला, यशुमति के हितकारी।
हर्षित महतारी, रूप निहारी, मोहन मदन मुरारी॥
कंसासुर जाना, मन अनुमाना, पूतना वेगि पठाई।
ते हर्षित धाई मन मुसकाई, गई जहाँ यदुराई॥
ते जाय पठाये, हृदय लगाये, पयोदर मुख में दीना।
तब कृष्ण कन्हाई, मन मुसकाई, प्राण तासु हर लीना॥
जब इन्द्र रिसाई, मेघ पठाई, वस करि ताहि मुरारी।
गऊअन हितकारी, सुर मुनि जारी, नख पर गिरवर धारी॥
कंसासुर मारेउ, आनि अहंकारेउ, वत्सासुर संहारेउ।
वकासुर आयेउ, बहुत डरायेउ, ताकर बदन विनासेउ॥
ब्रह्मा सुरराई अनि सुख पाई, मगन भयेउ तह आवे।
यह छन्द अनूपा है रस रूपा, जो नर ताको गावे॥
तेहि सम नहिं कोई, त्रिभुवन होई, मन वांछित फल पावे॥

॥ दोहा॥

नन्द यशोदा तप कियो, मोहन सो चित्त लाय।
देखन चाहत बाल सुख, रहो कछुक दिन जाय।
जिय नक्षत्र मोहन भये, सो नक्षत्र पड़े आय।
चारू बधाई रीति को, कहत यशोदा माय॥



१२. आरती श्री लक्ष्मी जी की

ॐ जय लक्ष्मी माता, जय मैया लक्ष्मी माता।
तुमको निशदिन सेवत, हरि विष्णु दाता॥ ॐ
उमा रमा ब्रह्माणी, तुम ही हो जग माता।
सूर्य चन्द्रमा ध्याता, नारद ऋषि गाता॥ ॐ
दुर्गा रूप निरंजनि, सुख सम्पत्ति दाता।
जो कोई तुमको ध्यावत, ऋद्धि सिद्धि पाता॥ ॐ
तुम पाताल निवासिन, तुम ही शुभ दाता।
कर्म प्रभवव प्रकाशिनी, भव निधि की त्राता॥ ॐ
जिस घर में तुम रहतीं, सब सद्गुण आता।
सब संभव हो जाता, मन नहीं घबराता ॥ ॐ
तुम बिन यज्ञ न होवे, वस्त्र न कोई दाता ।
खान पान का वैभव, सब तुमसे आता॥ ॐ
शुभ गुण मंदिर सुन्दर, क्षीरोदधि जाता।
रत्न चतुर्दश तुम बिन, कोई नहीं पाता॥ ॐ
महालक्ष्मी जी की आरती को कोई नर माता।
उर आनन्द समाता, पाप उतर जाता॥ ॐ
स्थिर चर जगत बचाये शुभ कर्म नर लाता।
राम प्रताप मैया की शुभ दृष्टि चाहता॥ ॐ



१३. श्रीमद् भागवत स्तुति

जय भगवती भागवत माता।

व्यास विनिर्मित -भगवद्वाणी, ब्रह्मानन्द प्रदाता।

परमानन्द सुधारस धारा, विमल-विराम विवेक विचारा।

भगवतत्व रहस्य अपारा, ज्ञानमयी विज्ञान विधाता।

जय भगवती भागवत-माता ॥१ ॥

शुक्र आनन, विगलित सुखखानी, ताप त्रय नाशिनी भवानी।

कामधेनु दुख हर कल्याणी, जन्म-मृत्यु भय हर सुखदाता।

जय भगवती भागवत-माता ॥ २ ॥

विषय-विलास मोह मद हरनी, अति पावन मंगल मदु करनी।

कलिमल कलुषहरा भव तरनी, रसिक -हृदय-पीयूष, प्रदाता ॥

जय भगवती भागवत-माता ॥ ३ ॥

सुर नर मुनि मन मानष तोषिणि, धर्ममयी सन्तन तन पोषिणी।

शोक-कोप विभ्रम भय-शोषिणी, भुक्ति मुक्ति तब-सेवकपाता ॥

जय भगवती भागवत-माता ॥ ४ ॥

सद्गति-सत्संगति-मति, दैनी, ज्ञान-भक्ति-सत्कर्म त्रिवेनी।

अमर मोक्षदा-सर्व नसैनी, अमर, उभय लौकिक-तुम माता ॥

जय भगवती भागवत-माता ॥ ५ ॥



१४. भजन - संध्या

आसरा इस जहाँ का मिले ना मिले
मुझको तेरा सहारा सदा चाहिए।
आसरा इस जहां का.....

चांद तारे पलक पर दिखें न दिखें
मुझको तेरा नजारा सदा चाहिए
आसरा इस जहां का.....

यहाँ खुशियां हैं कम और ज्यादा है गम
मेरी महफिल में शमां जले ना जले
मेरे दिल मे उजाला तेरा चाहिए।
आसरा इस जहां का.....

कभी वैराग्य है कभी अनुराग है
यहां बदलते है माली वहीं बाम है
मेरी चाहत की दुनिया बसे ना बसे
मेरे दिल में बसेरा तेरा चाहिए
आसरा इस जहां का.....

मेरी धीमी है चाल और पथ है विशाल
हर कदम पर मुसीबत है अब तो संभाल
पैर मेरे थके चल ना चले
मेरे दिल में इशारा तेरा चाहिए
आसरा इस जहां का.....



१५. भजन चेतना

मान मेरा कहना, नहीं तो पछतायेगा।

मिट्टी का खिलौना, मिट्टी में मिल जायेगा।

तू कहता है मेरा ये तेरा, एक दिन मेरा तेरा रह जायेगा।

मिट्टी का खिलौना, मिट्टी में मिल जायेगा।

तू कहता है लड़का है मेरा एक दिन लड़का पड़ौसी बन जायेगा।

मिट्टी का खिलौना, मिट्टी में मिल जायेगा

तू कहता है लड़की है मेरी, एक दिन लड़की पराई हो जायेगी।

मिट्टी का खिलौना, मिट्टी में मिल जायेगा

तू कहता है माता है मेरी, एक दिन माता रोती रह जायेगी।

मिट्टी का खिलौना, मिट्टी में मिल जायेगा

तू कहता है कि पत्नी है मेरी, एक दिन पत्नी मिट जायेगी।

मिट्टी का खिलौना, मिट्टी में मिल जायेगा

तू कहता है सम्पत्ति है मेरी, एक दिन सम्पत्ति यहीं रह जायेगी।

मिट्टी का खिलौना, मिट्टी में मिल जायेगा

तू कहता है काया है मेरी, एक दिन काया राख बन जायेगी।

मिट्टी का खिलौना, मिट्टी में मिल जायेगा

चेत रे नर चेत प्यारे, फिर पीछे पछताएगा।

मिट्टी का खिलौना, मिट्टी में मिल जायेगा

भजन कर बन्दे नहीं तो पछताएगा।

मिट्टी का खिलौना, मिट्टी में मिल जायेगा



१६. श्रीमद भागवत की आरती

आरति अतिपावन पुरान की।
धर्म भक्ति विज्ञान खान की।
महापुरान भागवत निरमल।
शुक मुख विगलित निगम कल्प फल।
परमानन्द सुधा रसमय कल।
लीला रति रस रसविधान की॥ आरती॥

कलिमलमथनि त्रिताप निवारिनि।
जन्म - मृत्युमय भव-भय-हरिनि
सेवत सतत सकल सुख कारिनी।
सुमहौषधि हरि चरित गान की॥ आरती॥

विषय-विलास-विमोह-विनाशिनी।
विमल-विराग-विवेक-विकाशिनी।
भगवत्तत्व-रहस्यमय प्रकाशिनी।
परम ज्योति परमात्म-ज्ञान की॥ आरती॥

परमहंस - मुनि - मन - उल्लासिनी।
रसिक-हृदय रस-रस विलासिनी।
भक्ति, मुक्ति, रति, प्रेम, सुदासिनी।
कथा अकिञ्चनप्रिय सुजान की॥ आरती॥



१७. आरती ॐ जय जगदीश हरे

ओ३म जय जगदीश' हरे, स्वामी जय जगदीश हरे
भक्तजनों के संकट क्षण में दूर करे॥ ॐ॥

जो ध्यावे फल पावे दुख विनशे मन का।
सुख सम्पत्ति घर आवे, कष्ट मिटे तन का॥ ॐ॥

मात पिता तुम मेरे, शरण गहूं किसकी।
तुम बिन और न दूजा आस करूं जिसकी॥ ॐ॥

तुम पूरण परमात्मा तुम अन्तर्यामी।
परब्रह्म परमेश्वर तुम सबके स्वामी ॥ ॐ॥

तुम करुणा के सागर तुम पालन कर्त्ता।
मैं मूरख खलकामी कृपा करो भर्त्ता॥ ॐ॥

तुम हो एक अगोचर सबके प्राणपति।
किस विधि मिलूं गोसाईं तुमको मैं कुमति॥ ॐ॥

दीन बन्धु दुख हर्त्ता तुम ठाकुर मेरे।
अपने हाथ उठाओ द्वार पड़ा तेरे॥ ॐ॥

विषय विकार मिटाओ पाप हरो देवा।
श्रद्धा भक्ति बढ़ाओ सन्तन की सेवा॥ ॐ॥

तन मन धन सब कुछ है तेरा प्रभु।
तेरा तुझको अर्पण क्या लागे मेरा॥ ॐ॥



१८. गीता सार

क्यों व्यर्थ चिन्ता करते हो? किससे व्यर्थ डरते हो? कौन तुम्हें मार सकता है? आत्मा न पैदा होती है न मरती है।

जो हुआ, वह अच्छा हुआ, जो हो रहा है वह अच्छा हो रहा है। जो होगा, वह भी अच्छा होगा, तुम भूत का पश्चाताप न करो। भविष्य की चिन्ता न करो। वर्तमान चल रहा है।

तुम्हारा क्या गया, जो तुम रोते है? तुम क्या लाये थे, जो तुमने खो दिया? तुमने क्या पैदा किया था, जो नष्ट हो गया? न तुम लेकर आये, जो लिया यहीं से लिया, जो दिया यहीं पर दिया। जो लिया इसी (भगवान) से लिया। जो दिया इसी को दिया। जो आज तुम्हारा है, कल किसी और का था, परसों किसी और का होगा? तुम जिसे अपना समझकर मग्न हो रहे हो। बस यह प्रसन्नता तुम्हारे दुःखों का कारण है।

परिवर्तन संसार का नियम है। जिसे तुम समझते हो, वही तो जीवन है। एक क्षण में तुम करोड़ों के स्वामी बन जाते हो, दूसरे क्षण में तुम दरिद्र हो जाते हो।

मेरा-तेरा, छोटा-बड़ा, अपना-पराया मन से मिटा दो, विचार से हटा दो, फिर सब तुम्हारा है, तुम सबके हो।

न यह शरीर तुम्हारा है, न तुम शरीर के हो। यह अग्नि, जल, वायु, पृथ्वी, आकाश से बना है और इसी से मिल जाएगा। परन्तु आत्मा स्थिर है, फिर तुम क्या हो? तुम अपने को भगवान को अर्पित करो। यही सबसे उत्तम सहारा है। जो इसके सहारे को जानता है, वह भय, चिन्ता, शोक से सर्वदा मुक्त हो जाता है।

जो कुछ भी तू करता है, उसे भगवान को अर्पण करता चल। इसी से तू सदा जीवन मुक्त आनन्द अनुभव करेगा।

॥ इति समाप्त ॥

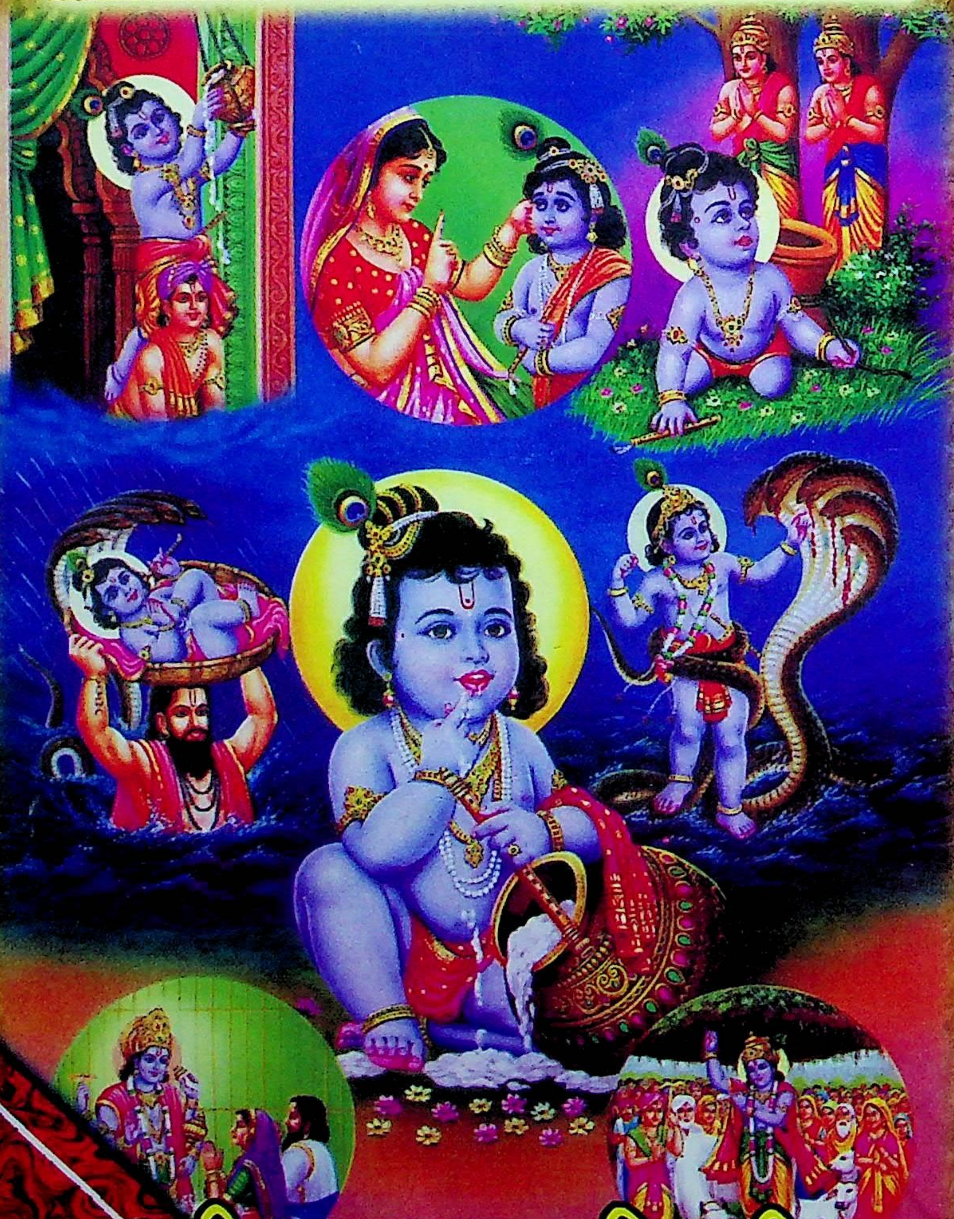
प्रकाशक :

लक्ष्मी प्रकाशन

4734, बल्लीमारान, दिल्ली-110006

दूरभाष : 23917707, 23974978

भेंट कर्ता :-



लक्ष्मी प्रकाशन, दिल्ली - 6